बालाबख्श राजपूत चारण पुस्तकमाला

ब्रजनिधि-ग्रंथावली

संकलनकर्ता

पुरोहित हरिनारायण शर्म्मा, बी० ए०

प्रकाशक

काशी-नागरीप्रचारिणी सभा

मुद्रक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

प्रथमावृत्ति] सं० १९९० [मूल्य ३)

निवेदन

जयपुर राज्य के अंतर्गत हणोतिया ग्राम के रहनेवाले बारहट नृसिंहदासजी के पुत्र बारहट बालावख्शजी की बहुत दिनों से इच्छा थी कि राजपूतों और चारणों की रची हुई ऐतिहासिक और (डिंगल तथा पिंगल) कविता की पुस्तकें प्रकाशित की जायँ जिससे हिंदी-साहित्य के भांडार की पूर्ति हो और ये ग्रंथ सदा के लिये रक्षित हो जायँ। इस इच्छा से प्रेरित होकर उन्होंने नवंबर सन् १९२२ में ५०००) काशी-नागरीप्रचारिणी सभा को दिए और सन् १९२३ में २०००) और दिए। इन ७०००) से ३।।) वार्षिक सूद के १२०००) के अंकित मूल्य के गवर्मेंट प्रामिसरी नोट खरीद लिए गए हैं। इनकी वार्षिक आय ४२०) होगी। बारहट बालावख्शजी ने यह निश्चय किया है कि इस आय से तथा साधारण व्यय के अनंतर पुस्तकों की बिक्री से जो आय हो अथवा जो कुछ सहायतार्थ और कहीं से मिले उससे "बालावख्श राजपूत चारण पुस्तकमाला" नाम की एक ग्रंथावली प्रकाशित की जाय जिसमें पहले राजपूतों और चारणों के रचित प्राचीन ऐतिहासिक तथा काव्य-ग्रंथ प्रकाशित किए जायँ और उनके छप जाने अथवा अभाव में किसी जातीय संप्रदाय के किसी व्यक्ति के लिखे ऐसे प्राचीन ऐतिहासिक ग्रंथ, ख्यात आदि छापे जायँ जिनका संबंध राजपूतों अथवा चारणों से हो। बारहट बालावख्शजी का दानपत्र काशी-नागरीप्रचारिणी सभा के तीसवें वार्षिक विवरण में अविकल प्रकाशित कर दिया गया है। उसकी धाराओं के अनुकूल काशी-नागरीप्रचारिणी सभा इस पुस्तकमाला को प्रकाशित करती है।
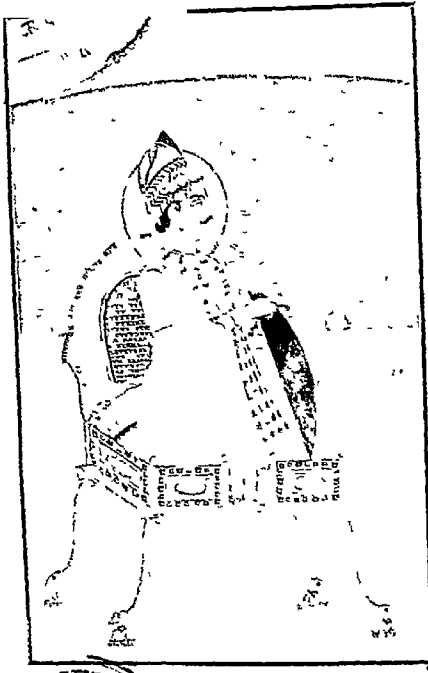
कविवर श्री "ब्रजनिधि" जी
जयपुराधीश्वर महाराजाधिराज राजराजेंद्र
श्रीसवाई प्रतापसिंहजी देव
जन्म-संवत् १८२१ वि०] [गोलोकवास-संवत् १८६० वि०

प्रस्तावना

यह "व्रजनिधि-ग्रंथावली" कविवर महाराजाधिराज राजराजेंद्र जयपुराधीश श्री सवाई प्रतापसिंहजी देव उपनाम 'व्रजनिधि'-रचित कुछ ग्रंथों का संग्रह है। उक्त महाराज ने महामति महाकवि राजर्षि श्री भर्तृहरि-विरचित शतक-त्रय का छंदोऽनुवाद किया था, जो नीति-मंजरी, श्रृंगार-मंजरी और वैराग्य-मंजरी के नाम से, अपनी छटा के कारण, हिंदी-साहित्य के सुंदर रत्न, विख्यात हैं। ये तीनों मंजरियाँ दो-तीन बार छप भी चुकी हैं, मूल के साथ गद्यार्थ के अनंतर समाविष्ट होकर भी छपी हैं; परंतु महाराज के अन्य ग्रंथ मुद्रण का भूषण पाए हुए कहीं दृष्टि नहीं आए थे। बहुत वर्षों से अर्थात् सन् १८९० ई० के पूर्व ही से हमारा विचार इन महाराज की सुललित कविता का संग्रह करके प्रकाशित करने का था। कुछ ग्रंथ तो हमारे पूज्य स्वर्गीय पिताजी के पुस्तकालय में ही थे, अन्य ग्रंथ आदि जयपुर के कवियों और विद्वानों से हमको प्राप्त हुए। इस उपलब्धि का विवरण आगे दिया जाता है।

(१) हमारे घरू संग्रह में नीति-मंजरी, श्रृंगार-मंजरी, वैराग्य-मंजरी, फाग-रंग और सनेह-संग्राम विद्यमान हैं।

(२) महाकवि कुलपति मिश्र के वंशज कवि प्यारेलालजी (वर्त्तमान) के यहाँ से उक्त पाँचों ग्रंथ तथा प्रीतिलता, प्रेम-प्रकास, विरह-सलिता, स्नेह-बहार, मुरली-विहार, रमक-जमक-बतीसी,

रास का रेखता, सुहाग-रैनि, प्रीति-पचीसी, रंग-चौपड़, प्रेम-पंथ, व्रज-शृंगार, सोरठ ख्याल और दुःखहरन-बेलि, ये १६ ग्रंथ मिले।

(३) गुरुवर पंडित त्र्यंबकरामजी भट्ट के यहाँ से फाग-रंग, प्रीतिलता, प्रेम-प्रकास, विरह-सलिता, स्नेह-बहार, मुरली-बिहार, रमक-जमक-बतीसी, रास का रेखता और सुहाग-रैनि—ये ६ ग्रंथ प्राप्त हुए।

(४) महाकवि गणपतिजी उपनाम 'भारती' के वंशज कवि फतह-नाथजी से प्रीति-पचीसी और रंग-चौपड़—ये दो ग्रंथ आए। इन्हीं से "प्रताप-वीर-हजारा" के कवित्त मिले जिनका जिक्र आगे चल-कर होगा।

(५) श्रीठाकुर व्रजनिधिजी के पुजारी परम प्रवीण स्वर्गीय मिश्र श्रीनाथजी डोभा गोत्र के दाधीच विप्रवर से तथा उक्त मंदिर के कीर्त्तनियों (गायक वादक) से व्रजनिधिजी के पद अर्थात् मुद्रित का 'हरि-पद-संग्रह' तथा 'रेखता-संग्रह' के दो ग्रंथ—यों तीन ग्रंथ संगृहीत हुए।

(६) भगवद्भक्त संगीत-धुरंधर दारोगा श्री घनश्यामजी पल्लीवाल-कुल-भूषण से व्रजनिधिजी की मुक्तावली से पदसंग्रह के पुराने खर्रे मिले। यही मुद्रित की "श्रीव्रजनिधि-मुक्तावली" है।

(७) परम प्रवीण चातुर्यशील महाराज के सेवक चेला गौरी-शंकरजी की एक पुस्तक में व्रजनिधिजी के ३१६ पद मिले। उसमें के आदि के पत्रे नष्ट होने से ४३ पद नहीं हैं। अवशिष्ट पदों में से 'श्रीव्रजनिधि-मुक्तावली' में ३८ पद आ जाने के कारण और एक पद की कमी गणना में रहने से २३४ पद रहे। इसके सिवा ११ पद हमको फुटकर मिले, वे भी इनमें शामिल किए गए। इस प्रकार मुद्रित के 'व्रजनिधि-पद संग्रह' में २४५

पद हुए। उन्हीं गौरीशंकरजी की उक्त पुस्तक में 'प्रताप-शृंगार-हजारा' मिला जिसका वर्णन आगे किया जायगा।

'ब्रजनिधि-मुक्तावली' के संबंध में स्वर्गीय पुजारी श्रीनाथजी तथा उक्त मंदिर के कीर्त्तनियों से जाना गया था कि यह संपूर्ण संग्रह पाँच हज़ार से अधिक पदों का है जिसमे महाराज ब्रजनिधिजी की गायन की समस्त रचनाएँ एकत्र हैं। इस ग्रंथ का विद्यमान होना खासा पोथीखाना (His Highness' Private Library) और हलदियों के यहाँ बताया गया था। (ये हलदिए महाराज से तथा ठाकुर श्री ब्रजनिधिजी से घनिष्ठ संबंध रखते थे और कुछ अब भी रखते हैं तथा उनके बड़े पुरषा परमभागवत इतिहास-प्रसिद्ध राव दौलतरामजी हलदिया हुए हैं।) परंतु यह ग्रंथ अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ। सूची मे संख्या १८ से २३ तक जो ग्रंथ दिए गए हैं—अर्थात् 'श्रीब्रजनिधि-मुक्तावली,' 'दुःखहरन-बेलि,' 'सोरठ ख्याल,' 'ब्रजनिधि-पद-संग्रह,' 'हरि-पद-संग्रह' और 'रेखता-संग्रह'—वे हमारे विचार में संभवतः उक्त ग्रंथ 'ब्रजनिधि-मुक्तावली' ही से छाँटकर लिए हुए हैं। 'ब्रजनिधि-मुक्तावली' के खर्रों मे जो पदों के साथ संख्याएँ दी हुई हैं उनसे यह बात स्पष्ट हो जाती है; क्योंकि वहाँ पदों की नकल में सैकड़ों की, अर्थात् ६२१ तक की, संख्या है। जिस मूल ग्रंथ से खर्रों में पद उतारे गए उसी के पदों का संख्याक्रम, प्रायः प्रत्येक पद के साथ, नकल करनेवाले ने खर्रों में लिखा है। परंतु हमने, अनावश्यक जानकर, वे संख्याएँ नहीं दी हैं।

हमारा विचार तो यह था कि संग्रह करके, और अवशिष्ट ग्रंथों को भी प्राप्त करके, भली भाँति संपादन करने के अनंतर, काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा के द्वारा प्रकाशित करावेंगे। परंतु हुआ यों कि बीच ही में, काशी-नागरीप्रचारिणी सभा के तत्कालीन मंत्री परमविद्यानुरागी

बाबू श्यामसुंदरदासजी जयपुर पधारे और उन्होंने अपूर्ण संग्रह को देखकर उसी अवस्था में उसको तुरंत अपने कब्जे में कर लिया। बड़े अनुराग और प्रेम से वे उसको यह कहकर काशी ले गए कि पीछे से सब कुछ ठीक हो जायगा, मानों उनको एक अलभ्य अमूल्य पदार्थ मिल गया हो। इसके अनंतर यथासमय जैसे जैसे ग्रंथ मिले वा लिखे जा चुके, 'दु.खहरन-बेलि,' 'रेखता-संग्रह', 'ब्रजनिधि-मुक्तावली', 'हरि-पद-संग्रह' और सबसे पीछे 'ब्रजनिधि-पद-संग्रह' काशी भेजे गए। इस प्रकार यह संग्रह काशी-नागरीप्रचारिणी सभा के अधिकार में दिया गया। सभा ने विद्वदग्रगण्य स्वर्गीय गोस्वामी किशोरीलालजी आदि से, यथासंभव उत्तमता-पूर्वक, इसका संपादन कराया। परंतु वहाँ भी यह काम एक हाथ से नहीं हुआ और पदों के क्रम में भी परिवर्तन किया गया। इसके सिवा अन्य प्रतियों से मिलान करने का अवसर भी नहीं मिला। हमारे पास भी थोड़े से मूल ग्रंथों को छोड़कर ग्रंथ नहीं रहे, यदि रहते तो सभा को भेज देते। सभा को भी और कहीं से सब ग्रंथ नहीं मिले। इस कारण बहुत स्थलों पर पाठ चिंत्य वा अधूरे और संशोधन के योग्य रह गए जिनका संशोधन वा पूर्त्ति किसी समय दूसरे संस्करण में हो सकी तो की जायगी। इतना विवरण संग्रह-संबंधी हुआ। कथा तो इसकी बहुत है, परंतु उसके उल्लेख का यहाँ प्रयोजन नहीं।

सभा ने ग्रंथों को रचना के काल-क्रम से रखने को हमसे पूछा तो हमने उसकी सूची भेज दी। अनेक ग्रंथों में समय नहीं लिखा है। अत: जो कुछ लब्ध हुआ उसे नीचे दिया जाता है। यह सूची हमने २५ जनवरी सन् १९२७ ई० को तैयार की थी। उसके अनंतर भी कुछ ग्रंथ मिले हैं। वे भी दर्ज कर दिए गए हैं—

संख्या	ग्रंथ-नाम	रचना का संवत्	रचना की मिती	विशेष
१	प्रेम-प्रकास	१८४८	फागुन वदी ६ गुरुवार	
२	फाग रंग	१८४८	फागुन सुदी ७ बुधवार	
३	प्रीतिलता	१८४८	चैत वदी १३ मंगलवार	एक प्रति में ११ दी हुई है। परंतु शतवर्षीय पंचांग के अनुसार १३ होती है। अत: १३ ही लिखी गई। कदाचित् लेखक का दोष हो *
४	मुरली विहार	१८४६	फागुन वदी ७ रविवार	
५	सुहाग-रैनि	१८४६	फागुन सुदी १० बुधवार	
६	विरह-सलिता	१८५०	माघ वदी २ शनिवार	

* महामहोपाध्याय रायबहादुर श्री गौरीशंकरजी ओझा ने शतवर्षीय पंचांग आदि से तथा जयपुर के राज-ज्योतिषी श्री नारायणजी ने कृपा कर पुराने पंचांगों से वार, पक्ष, तिथि को ठीक करा दिया। तदर्थ धन्यवाद।

सख्या	ग्रंथ-नाम	रचना का संवत	रचना की मिती	विशेष
७	रेखता-संग्रह	१८५०	माघ वदी २ शनिवार	'रेखता-संग्रह' के दो भाग थे। प्रथम के अंत मे यह संवत् मिती दी हुई है। वार वहाँ नहीं दिया हुआ था इसलिये उपर्युक्त सं० ६ का वार ही लगाया गया।
८	स्नेह-विहार	१८५०	माघ सुदी २ रविवार	
९	रमक-जमक-बतीसी	१८५१	आषाढ़ सुदी १२ बुधवार	
१०	प्रीति-पचीसी	१८५१	कार्तिक सुदी ५ बुधवार	
११	व्रज-शृंगार	१८५१	माघ वदी ६ रविवार	
१२	सनेह-संग्राम	१८५२	जेठ सुदी ७ शनिवार	

१३	नीति-मंजरी	१८५२	भाद्र वदी ५ गुरुवार	तीसरी मंजरी के अंत में यह समय दिया हुआ है। परंतु वार वहाँ नहीं दिया हुआ है। अतः शतवर्षीय पंचांग से गुरुवार (जो मि० भाद्र वदी ५ सं० १८५२ को था) लिखा गया *।
१४	शृंगार-मंजरी			
१५	वैराग्य-मंजरी			

* महामहोपाध्याय रायबहादुर श्री गौरीशंकरजी ओझा ने खोज और विचार से समय-संशोधन-संबंधी जो उत्तर भेजा
है उसको यहाँ उद्धृत किए देते हैं, क्योंकि पत्र महत्त्व का है और प्रकृत विषय से नितांत संबद्ध है—
"अजमेर। ता० ३—२—१९२७ ई०। विक्रम संवत् १८५३ में आश्विन वदी २ और ३ शामिल थीं तथा उस दिन
सोमवार था, ऐसा उक्त संवत् के हस्त-लिखित चंडू पंचांग से पाया जाता है। दक्षिणी पंचांगों में भाद्र वदी १ को
रविवार दिया है, तीज चौथ शामिल है। पंचांगों में, देशांतर-भेद से, घड़ियों के अनुसार, क्षयतिथियाँ कभी कभी
आगे पीछे हो जाती हैं। इसलिये चंडू के पंचांग और दक्षिणी पंचांग दोनों में आश्विन सुदी १ को रविवार है।
सिद्धांत के अनुसार बने हुए ईफीमीरिस (Ephemeris) में उक्त संवत् की आश्विन वदी १ और आश्विन
सुदी २ को किसी गणना से रविवार नहीं पड़ता; हाँ, उक्त संवत् की आश्विन वदी १, २ को शामिल मान लें तो दूज को
रविवार आ सकता है। भिन्न भिन्न सारिणियों के अनुसार आसपास की भिन्न तिथियाँ प्राप्त होती हैं।"

संख्या	ग्रंथ-नाम	रचना का संवत्	रचना की मिती	विशेष
१६	रंग-चौपड़	१८५३	आश्विन सुदि १ रविवार	पुस्तक में पत्र नहीं दिया हुआ था। पंचांग से लगाया गया, जिसे श्री ओझाजी ने निर्णीत कर दिया।
१७	प्रेम-पंथ	—	समय नहीं दिया	इन सात ग्रंथों (संख्या १७ से २३ तक) में निर्माण का समय लिखा नहीं मिला। इनमें के चार ग्रंथ—१७ से २० तक—तो इतने छोटे हैं कि इनको किन्हीं ग्रंथों का अंश माना जा सकता है। परंतु ये पृथक् रूप में ही मिले, इसलिये पृथक् ही रखे गए हैं। परंतु तीन ग्रंथ (२१, २२, २३) पदों आदि के संग्रह हैं। इनमें रचना-काल कैसे होता, क्योंकि पद तो समय समय पर बने हैं और संग्रह या संकलन पीछे से हुआ है।
१८	दु.खहरन वेलि	—		
१९	सोरठ ख्याल	—		
२०	रास का रेखता	—		
२१	श्रीव्रजनिधि-मुक्तावली	—		
२२	व्रजनिधि-पद-संग्रह	—		
२३	हरि-पद-संग्रह	—		

इस कोष्ठक (नकशे) में ग्रंथों को समयानुक्रम से रखा गया है। जिनमें समय दिया है उनको ऊपर और बिना समय-वालों को नीचे रखा गया है।

'बिरह-सलिता', 'दु:खहरन-बेलि', 'सोरठ ख्याल' और 'ब्रजनिधि-पद-संग्रह' (जिसको पहले हमने श्रीब्रजनिधि-मुक्तावली का दूसरा भाग लिखा था, परंतु संमिश्रणरूप से नाम बदल गया) काशी को पीछे से भेजे गए थे। रेखतों की दो पुस्तकें (वा विभाग) पृथक् पृथक् थीं; दोनों को एकत्र करने के लिये लिखे जाने पर एक कर दी गईं। उक्त छोटे ग्रंथों को 'श्रीब्रजनिधि-मुक्तावली' में सम्मिलित करने का विचार हो गया था; परंतु सभा ने पृथक् ही रखना उचित समझा, जो ठीक ही हुआ। 'श्रीब्रजनिधि-मुक्तावली' सबसे पीछे अर्थात् ता० ६ मई सन् १९३२ को भेजी गई, क्योंकि इसके खर्रे दारोगा श्री घनश्यामजी ने दिए तब नकल हुई थी। इन्हीं खर्रों से असल ग्रंथ 'ब्रजनिधि-मुक्तावली' का एक बृहत्काय संग्रह होना निश्चित हुआ परंतु वह समग्र संग्रह प्राप्त नहीं हुआ अतः इन्हीं पदों के संग्रह का यह नाम दिया गया और इसी पद-संग्रह को (पद-विभाग में) प्रथम रखा गया। 'ब्रजनिधि-पद-संग्रह', 'हरि-पद-संग्रह' और 'रेखता संग्रह'—ये नाम स्वयं हमने इन संग्रहों के लक्षणों के अनुसार रखे हैं जिससे इनका पार्थक्य जाना जा सके।

ग्रंथों के समयानुक्रम की उक्त सूची इसलिये दे दी गई है कि इससे उनका रचना-काल सहज में ज्ञात हो जाय और पाठकों को इधर-उधर देखना न पड़े। मुद्रित ग्रंथावली में ग्रंथ काल-क्रमानुसार नहीं रह सके हैं। 'रेखता-संग्रह' गायन के ग्रंथों में अंत में रखा गया; सो उपयुक्त ही है।

यह बात सहज में समझी जा सकती है कि अन्य ग्रंथों की तरह 'ब्रजनिधि-मुक्तावली' अर्थात् पदों का संग्रह अथवा रेखते एक

साथ एक ही समय में नहीं बने थे। महाराज परम भागवत थे। कहा जाता है कि भक्तिरस-तरंग वा मन की उमंग में वे जो पद, रेखते वा छंद बनाते थे, उन्हें उसी दिन वा दूसरे दिन अपने इष्टदेव श्री गोविंदजी महाराज को वा पीछे ठाकुर श्री ब्रजनिधिजी महाराज को आप अर्पण करते थे। यह प्रायः नित्य का नियम था। राज-कार्यों अथवा युद्ध आदि के कारण यदि इस क्रम में विघ्न हो जाता तो उसका प्रायश्चित्त पीछे से, अधिक पद बनाकर, किया जाता था। प्रसिद्ध है कि पाँच पद प्राय. नित्य भेट किए जाते थे। पदों के समर्पण के समय उनकी गांधर्व मंडली वा कवि-समाज में से चुने हुए पुरुष ही रहते थे और समर्पित किए जाने के पीछे वे रचनाएँ पुस्तक में शुद्ध लिखा दी जाती थीं। किंतु ये पद पहले तो खर्रों (ओलियों) में ही लिखे रहते थे। इससे यह बात सिद्ध हुई कि पद वा रेखता-संग्रह का एक समय नहीं रहा। 'रेखता' में जो संवत् दिया हुआ मिला, यह कहीं लिख दिया गया होगा। वैसे ही मूल संग्रह का ग्रंथ 'ब्रजनिधि-मुक्तावली' मिलने पर उसमें भी रचना की वा लिखे जाने की संवत्-मिती होगी तो मिलेगी। समय समय के उत्सव, विवाह, पाटोत्सव वा विशेष सुख-दुःख के समय बनाए हुए पद आदि में वे भाव वा विषय आपही विदित हो रहे हैं।

जितने ग्रंथ हमें उपलब्ध हुए हैं उनके अवलोकन से स्पष्ट प्रकट होता है कि समग्र रचना-समूह एक अटल अनन्य भगवद्भक्ति, प्रभु-प्रेम और सच्चे गहरे हरिरस का तरंगमय समुद्र है। उसमें आद्योपांत शांतरस का शांत समुद्र (Pacific Ocean) है जिसकी गंभीर, धीमी, अनुद्विग्न, लीला-लोलित तरंग-मालाएँ मनरूपी जहाज को सुमधुर गति से भगवच्चरणारविंदों में बहाए हुए ले जा रही हैं। कहीं शुद्ध पावन शृंगाररस अकेला ही विहार करता है तो कहीं वीररस भी, सिद्धांतियों के निषेध को विलीन करता हुआ, शृंगार-

रस से ऐसा मिलता है, जैसे पीत रंग श्याम रंग से मिलकर—'जा तन की झाँईं परैं स्यामु हरित-दुति होइ'—मनोमुग्धकारी निराला रूप दिखाता और रंजक रंग जमाता है। महाराज नागरीदासजी का मानों दूसरा और निराला परंतु कई बातों मे मिलता-जुलता सर्वांगसुंदर ठाट-बाट है। यद्यपि ये दोनों कवि सम-कालीन नहीं थे तो भी ऐसे प्रतीत होते हैं मानों अभिन्नहृदय मित्र थे। फिर भक्ति के मैदान में ऐसे रसिकों का इकरंगी होना स्वाभाविक है। यह 'ब्रजनिधि-समुच्चय' (ब्रजनिधि-ग्रंथावली) 'नागर-समुच्चय' के साथ विराजने से ऐसा भान होता है कि मानो दो एकमन एकरूप मित्रों की सुंदर जोड़ी है।

महाराजाओं की रचना महाराजाओं के ही योग्य उच्च कोटि के भावों, रसों, अलंकारों और भाषा-वैभव से सजी हुई होती है। दोनों महापुरुषों के ग्रंथों को पढ़ने से हमारी निर्धारित उक्ति, पाठकों को, यथार्थ प्रतीत होगी। यहाँ न तो उस अलौकिकता का निदर्शन करने को स्थान है और न समय ही। पाठक महोदय इतना श्रम स्वयं करेंगे तो उन्हें श्रम-साध्य सुख का आधिक्य भी प्राप्त होगा। पहले 'नागर-समुच्चय' तो मुद्रण रूप में प्रकाशित हो ही चुका है*। अब यह 'ब्रजनिधि-ग्रंथावली' भी वही रूप धारण करके दर्शन देती है। दोनों की तुलना कर आनंद प्राप्त करना जौहरियों का काम है। इसमें संदेह नहीं कि नागरीदासजी की कविता में कुछ प्रौढ़ता और शब्दों तथा भावों की जड़ाई सी प्रतीत होती है। यह ब्रजनिधिजी

---

* किशनगढ़ के महाराज परम भगवद्भक्त नागरीदासजी की समस्त रचनाओं का संग्रह 'नागर-समुच्चय' के नाम से—संवत् १९५५ (सन् १८९८ ई०) में—'ज्ञानसागर प्रेस' बंबई में छपा था। नागरीदासजी का नाम सावंतसिंहजी था। उनका जन्म संवत् १७५६ वि० में हुआ था और गोलोकवास सं० १८२१ में, यही महाराज प्रतापसिंहजी (ब्रजनिधिजी) का जन्म-संवत् है।

की कविता उक्त सब गुणों को अपने ढंग पर धारण करती हुई स्फीत, निरामय और शुद्ध-स्नात भावों को रसीले-चटकीले-नुकीले-पन से सीधा-सादा रूप प्रदान करती है। परंतु ब्रजनिधिजी के भावों का अनूठापन हमें कुछ बढ़कर जँचता है। दोनों कवियों में बहुत दृढ़मूल भावुकता, भक्ति की अनन्यता, मनोभावों की सत्यता और गंभीरता अलौकिक है। दोनों के समान इष्ट श्री राधा-कृष्ण, वा और निकट जाने पर, श्री नागरी गुण-आगरी राधिकाजी ही हैं।

इन दोनों राजस कवियों के ग्रंथों में जो आनंद भरा हुआ है उससे कहीं बढ़कर आनद उनके पदों और गायन-निबंधों में है। दोनों के पद प्रायः टकसाली और रसीले हैं जिनको गायन-मगाजी और वैष्णव-भक्त बड़े चाव और मनोयोग से गाते तथा याद रखते हैं।

किसी समय महाराज नागरीदासजी के एक सत्संगी मित्र महा-राज ब्रजनिधिजी के पास जयपुर में थे। एक दिन ब्रजनिधिजी श्रीभग-वान् को पद समर्पित कर रहे थे*। पहले तो उन्होंने यह पद कहा—

"सुरति लगी रहै नित मेरी श्री जमुना वृंदावन सों।
निस-दिन जाइ रहौं उतही हौं सोवत सपने मन सों॥
बिना कृपा वृपभान-नंदिनी बनत न वास कोटिहू धन सों।
"ब्रजनिधि" कब ह्वैहै वह औसर ब्रज-रज लोटौं या तन सों॥ २३॥"

—ब्रजनिधि-पद-संग्रह

फिर दूसरा पद कहा—

"हम ब्रजबासी क्यौं कहाइहैं।
प्रेम-मगन ह्वै फिरैं निरंतर राधा-मोहन गाइहैं॥
मुद्रा तिलक माल तुलसी की तन सिंगार कराइहै।
श्रीजमुना-जल रुचि सों अचवैं महाप्रसादहि पाइहैं॥

---

* किसी किसी के मत से जोधपुर के महाराज थे।

कुंज कुंज सुख-पुंज निरखि कै फूले अंग न समाइहै।
कृपा पाइ प्यारे "ब्रजनिधि" की विमुखन भले हँसाइहैं ॥ १२ ॥"

—ब्रजनिधि-पद-संग्रह

फिर तीसरा पद कहा—

"लगनि लगी तब लाज कहा री।
गौर-स्याम सैं जब दग अटके तब औरन सैं काज कहा री ॥
पीयो प्रेम-पियालो तिनकैा तुच्छ अमल कैा साज कहा री।
"ब्रजनिधि" ब्रज-रस चाख्यो जानैं ता सुख आगे राज कहा री ॥ ७३ ॥"

—ब्रजनिधि-पद-संग्रह

तीसरे पद के अंतिम चरण के "ता सुख आगे राज कहा री" का कहना (या गाना) था कि नागरीदासजी के सत्संगी मित्र ने ब्रजनिधिजी की प्रेम से बाँह पकड़कर कहा कि अब देर क्या है, पधारिए। इस पर ब्रजनिधिजी ने विरह-कातरता से विनय-पूर्वक कहा कि श्री प्रियाजी ने वह विभूति आपको तो प्रदान कर दी परंतु मैं अभी उसके योग्य नहीं समझा गया। तदनंतर उन्होंने यह रेखता (गजल) कहा—

"जहाँ कोई दर्द न बूझे तहाँ फर्याद क्या कीजे।
रहा लग जिसके दामन से तिसे कहो याद क्या कीजे ॥
जु महरम दिल का।हो करके रुखाई दे।तो क्या कीजे।
यह "ब्रज,की निधि" कहा करके न ब्रज रज दे तो क्या कीजे ॥ २२ ॥"

—हरि-पद-संग्रह

दोनों के पदों में कई जगह साम्य है। जयपुरी बोली में दोनों ही के कितने बढ़िया और नुकीले पद हैं। यथा—

"नैणाँरी हो पड़ि गई याही बाँण।
अलबेली री छवि बिन देख्याँ जिय नहिं लागे आँण ॥

मगज भरी अति तीखी चितवनि चढी रूप-खर-सांण ।
मनढो वेधि कियो बस सुंदर ब्रजनिधि रसिक सुजांण ॥ ६० ॥"

—श्रीब्रजनिधि-मुक्तावली

"कानांजी कामणगाराहो थे तो म्हांहें वाला लागाजी राज ।
खरी दुपेरी कुजां मांहीं थांसूँ म्हारो काज ॥
रँगरा भीना छैल छबीला केसरियां कियां साज ।
ब्रजनिधि म्हारे मन मे बसैया आधा आवो आज ॥ ४२ ॥"

—श्रीब्रजनिधि-मुक्तावली

"जी मोही छूँ हँसि चितवनि मन लेयाँ ।
मोही हसनि लसनि दमनावलि रस बरसें सुखदेयाँ ॥
लोक-वेद-कुल-कानि तजी चित चढि गयो नेह-निसेयाँ ।
ब्रजनिधि हाथ निभाछै म्हारो हूँ तो रँगी दृगरी हित रेयाँ ॥ ६२ ॥"

—श्रीब्रजनिधि-मुक्तावली

"थांरी ब्रजराज हो नैणां री सैन बांकी छै ।
मोर मुकट छबि अद्भुत राजे रूप ठगौरी नांकी छै ॥
बिन देख्यां कल पल न परे जी औचक लागी थांकी छै ।
ब्रजनिधि प्रांणपीवरी चितवन निपट सनेह ग्रदां की छै ॥ ७१ ॥"

—श्रीब्रजनिधि-मुक्तावली

"मोहन मोह्यो छै किसोरीजीरी झूलनि में ।
झलके गजमोत्यांरा गहणां गल के अग दुकूलणि में ॥
लचके लंक मंचयो मचकीरी ज्यों मनमथ गज हूलणि में ।
ब्रजनिधि छैल रूपरा लोभी नैन सैन रस फूलणि में ॥ ७३ ॥"

—श्रीब्रजनिधि-मुक्तावली

"हेली हे नहिं छूटें म्हारी कांण ।
क्यूँ चोर्यां सांवलिया सामां दाजीरी म्हांहें आंण ॥

चांसें क्यूँ लागी तू म्हांरे गोठँयि भूँहाँ तांण।
कुण चाले ब्रजनिधिरी सेजाँ मत तांणे पलोदे जांण॥ ८७॥"

—श्रीब्रजनिधि-मुक्तावली

"वनी जी थांरो बनडो ललितकिसोर।
अलबेलो उदमाद्यो अड़ीलो आँखडियारो चोर॥
होसी आज उछाह व्याहरो जोसी लेसी लाख करोर।
थांरी अरु बांका ब्रजनिधिरी जोडी बणसी जोर॥ ६०॥"

—श्रीब्रजनिधि-मुक्तावली

"होजी म्हांसूँ बोलो क्योंने राज अणबोले नहीं बणसी।
चूक पड़ी काईं सोही कहो जी सांच झूठ यों छणसी॥
सो क्यांरा सिखलाया खिजोता प्रीत-रीत कुण गणसी।
ब्रजनिधि कपट-लपटरी झपटाँ सीखणहारो थांसों भणसी॥१०३॥"

—श्रीब्रजनिधि-मुक्तावली

इत्यादि बीसों पद बड़े रसीले और सुंदर हैं जिनको पढ़ने और गाने से मन मस्त हो जाता है। इसी प्रकार पंजाबी बोली में अनेक अनूठे पद हैं जिनको गवैए लोग बहुत सराह सराहकर गाते हैं।

अब महाराज नागरीदासजी के जयपुरी बोली के दो-एक पद देते हैं जिससे उनके रसभरे वचन का भी आनंद मिले—

राग सोरठ

"हो झालो देछै रसिया नागरपनाँ।
सारा देखै लाज मराँ छाँ आँवाँ किँण जतनाँ॥
छैल अनोसो कह्यो न मानैं लोभी रूप सनाँ।
रसिकबिहारी नणद बुरी छै हो ऊँसूँ लाग्यो छै म्हारो मनाँ॥ १॥"

"लाडी हठ मांड्यो मांझल रात।
तिरछी लखै लजीला नैंणाँ बैंणाँ बांकी बात॥

छिपी सोहि सुधि भौंहाँ झिझकैं चिझकि दुरावैं गात।

नागरिदास आस उमँगी पिय, दिए ऊपलापात ॥ २ ॥"

नागरीदासजी की बहुत सी रचनाओं के बीच वा अंत में तथा 'नागर-समुच्चय' के अंत में 'रसिक-विहारी'* के आभोग (उपनाम) से जयपुरी बोली के बहुत से अनोखे पद हैं जिनकी रचना बहुत मँजी हुई, स्वच्छ और मनोरंजक है। जिन रसिकों को इस बोली के उत्तम पदों का संग्रह करने की इच्छा हो वे सहज ही इस "नागर-समुच्चय" से तथा ब्रजनिधिजी के पदों से, जो इस (ब्रजनिधि-ग्रंथावली) ग्रंथ में छपे हैं, ले सकते हैं।

ब्रजनिधिजी और नागरीदासजी के ग्रंथ-नामों में भी कहीं कहीं साम्य है। उदाहरणार्थ इनकी 'श्रीब्रजनिधि-मुक्तावली' है तो उनकी "पद-मुक्तावली"। इन्होंने 'फाग-रंग' बनाया है तो उन्होंने 'फाग-विलास' वा 'फाग-विहार'। इनका 'रास का रेखता' वा 'सोरठ ख्याल' है तो उनका 'रास-रस-लता' इत्यादि।

पिछले वर्षों में श्री नागरीदासजी का जीवन-पर्यंत श्री वृंदावन में सतत निवास रहा। इन दिनों वे पूर्ण त्यागी थे। इससे और गहरे सत्संग से उन्हें ब्रजभाषा का बढ़ा हुआ अभ्यास था और अच्छे अच्छे कवियों का नित्य सग था। अतः उनको प्रसादश्री कविता का बहुत अवसर मिला था। परंतु ब्रजनिधिजी को जन्म भर (राजत्वकाल) में, राजकाज और युद्ध आदि से इतनी फुर्सत कहाँ थी। फिर भी उनकी भक्ति और सत्संगति को धन्य है जिसके कारण, अवकाश की संकीर्णता में भी, उन्होंने काव्य-रचना का इतना महत्तर कार्य्य किया और कराया।

---

* 'रसिक-विहारी' महाराज नागरीदासजी की पासवान परम भागवत बनीठनीजी थीं। ये सदा महाराज के साथ ही रहती थीं और रसीली एवं सुमधुर कविता करती थीं। इनकी रचना में महाराज का भी हाथ रहता था। इससे यहाँ उदाहरण दिया गया है।

हमको ज्ञात हुआ था कि महाराज व्रजनिधिजी ने २२ ग्रंथ बनाए थे और यह ग्रंथावली उनकी "ग्रंथ-बाईसी" कहाती थी। परंतु अभी तक यह ज्ञात नहीं हुआ कि वे बाईस ग्रंथ कौन कौन से थे। संभव है कि हमारे संगृहीत ग्रंथ, सब वा कुछ, उन बाईस ग्रंथों में से अवश्य होंगे। महाराज को बाईस के अंक से मानों कुछ प्रेम सा था। उनके पास 'कवि-बाईसी', 'वीर-बाईसी', 'गांधर्व-बाईसी', 'वैद्य-बाईसी', 'पंडित-बाईसी' ऐसी कई बाईसियाँ थीं, जिनमें उस विद्या वा गुण के पारंगत बाईस प्रधान व्यक्ति होते थे। किसी दल में बाईस से अधिक व्यक्ति भी होते थे तो भी उनका समूह बाईसी ही कहलाता था। 'बाईसी' शब्द प्रायः फौज के लिये प्रयुक्त होता था, परंतु यहाँ अन्य अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ था। उक्त 'ग्रंथ-बाईसी' में अवश्य ही 'व्रजनिधि-मुक्तावली' रही होगी। इसके अंतर्गत, जैसा कि ऊपर कहा गया है, पाँच हजार से भी अधिक पद बताए जाते हैं। हमारे संग्रह में पदों के चार टुकड़े (खंड) आए हैं—(१) श्रीव्रजनिधि-मुक्तावली—यह व्रजनिधि-मुक्तावली का कोई अंश प्रतीत होता है। इसमें सभी पद व्रजनिधिजी के हैं। (२) 'व्रजनिधि-पद-संग्रह'—इसमें महाराज के पदों के साथ साथ अन्य कवियों के भी कुछ पद हैं तथा अधूरी 'चीजें' भी हैं। कहा जाता है कि इसको महाराज के सामने किसी ने उनकी मर्जी से छाँटकर संग्रह कर लिया था। जैसा पहले कहा जा चुका है, यह संग्रह चेला गौरीशंकरजी से प्राप्त हुआ था। (३) 'हरि-पद-संग्रह'—यह भी इसी ढंग का संग्रह है, परंतु इसमें विशेषता यह है कि इसमें भक्ति के नाते से संग्रह हुआ है और बहुत अनूठे और सुंदर पद आए हैं। (४) 'रेखता-संग्रह'—इसमें के सब रेखते महाराज के बनाए हुए हैं। रेखतों के कहने और गाने का उस जमाने में चलन था। महाराज की सभा में अनेक कवि इस ढंग की कविता करने में प्रवीण थे।

उनमें 'रसरास' जी तथा 'रसपुंज' जी गुसाईं बहुत बढ़े-चढ़े थे। उनके रेखते जयपुर में बहुत प्रसिद्ध हैं और उनके वंशज, जो जाट के कुवे वा पुरानी बस्ती मे रहते हैं, अब तक उनकी रचना को गाते और रक्षित रखते हैं।

विज्ञ पाठकों को विदित होगा कि 'रेखता' के तर्ज की कविता का प्रचलन उर्दू भाषा की कविता के साथ बताया जाता है। बादशाह शाहजहाँ के जमाने में, उसके लश्कर (शाहजहानाबाद) मे, नाना देश और नाना जाति के पुरुषों की बोलियों (फारसी, अरबी, तुर्की, संस्कृत आदि) के शब्द हिंदी में मिलने से और लश्करवालों मे बोले जाने से हिंदी का जो रूपांतर हुआ वह, फारसी के अक्षरों में लिखा जाने के कारण, 'उर्दू' कहा गया था। 'उर्दू' शब्द फारसी भाषा में लश्कर का अर्थ रखता है। 'रेखता' भी उर्दू ही का नाम है। उर्दू भाषा मे सुढाल और सुंदर गजलों तथा शेरों की रचना हुई तो उनको 'रेखता गजल' या 'रेखता शेर' कहने लगे। फिर परवर्ती 'गजल' या 'शेर' शब्द प्रयोग-प्रवाह से छूट गया तो गजल या शेर को ही रेखता कहने लग गए। 'रेखता' शब्द फारसी के 'रेखतन्' मसदर (धातु) से बना है जिसका अर्थ 'ढालना' या 'ठीक विठाना' है। जैसे 'रेखता-पा' यदि किसी घोड़े का विशेषण हो तो उससे यह अभिप्राय है कि उस घोड़े के अंग सुंदर और सुडौल हैं, मानों साँचे ही में ढाले गए हैं। यों उर्दू में कही हुई गजलों को रेखता कहने में यह भी लक्ष्य है कि वे सुंदर और सुडौल भाषा में रचित हैं। 'गजल' अरबी शब्द है। इसका वास्तविक अर्थ युवतियों के साथ बातचीत या प्रेमालाप करना है। परंतु यौगिक अर्थ में इश्क या प्रेम, स्त्रियों के रूप-यौवन आदि का वर्णन, नायिका के शृंगार वा हाव-भाव का निरूपण, उससे चुहल-चोचले की बातें, प्रिया का विरह, विरह वेदना की पुकार, शिकायत, उलाहना इत्यादि का वर्णन

ही अभिप्रेत है। फिर गजल में अन्य विषय भी बाँधे जाने लगे। उर्दू मे फारसी के छंदों का ही अधिक प्रयोग रहा। जब हिंदीवालों ने इस तर्ज का अनुकरण किया तब प्रायः उन्होंने भी प्रचलित फारसी छंदों को ही ग्रहण किया। हमारे छंदःशास्त्र ने, फारसी छंदों का भी, वर्ण वा मात्रा के अनुसार परिमाण करके, बता दिया है कि फारसी (या अरबी) का, प्रत्येक छंद हमारे पिंगल की कसौटी मे कसे जाने पर, कोई न कोई नियम, लक्षण वा नाम पाने के योग्य हो जायगा* ।

महाराज प्रतापसिंहजी की सभा में जहाँ संस्कृत और हिंदी के कवि थे वहाँ उर्दू (रेखता) के शायर भी थे और हिंदी मे उर्दू के तर्ज पर कविता करनेवालों—'रसरास','रसपुंज' आदि कवियों—की कमी नहीं थी। गवैए भी रेखतों को गाते थे। इनके आकर्षण ने हिंदी में भी, लोगों की रुचि के अनुसार, रेखतों की रचना का प्रचार करा दिया। महाराज ब्रजनिधिजी को भी यह तर्ज पसंद आया और आपने भी इसमें प्रचुर रचना कर डाली। आपके रेखते सुंदर और मनोहर बने। वे इतने अच्छे हुए कि उन्होंने भक्त जनों के मन को मुग्ध कर दिया; और, इस प्रकार आज से कोई १०० वर्ष पहले राजस्थान में भी 'खड़ी बोली' (हिंदी-मिश्रित उर्दू) में अच्छी कविता होती थी।

ब्रजनिधिजी के रेखतों के रचना-क्रम पर दृष्टि डालने से इस बात के लिखने की भी आवश्यकता है कि गजल कैसी और कितने शेरों की होनी चाहिए। फारसी शायरी के नियमानुसार गजल (रेखता)

---

* यह बात 'रणपिंगल' आदि ग्रंथों से स्पष्ट है कि फारसी-अरबी के छंद पिंगल के नियमों से अनुशासित होने पर कोई न कोई नाम वा लक्षण पा सकते हैं, यद्यपि उनके छंद "औजाने-हफ्तगाना" और उन वजनों के विकारों के परिमाणों के अनुसार बनते हैं।

में तीन शेरों से कम और पचीस से अधिक न होना चाहिए। परंतु उर्दूवालों ने सौ से भी अधिक शेरों की गजलें लिख डाली हैं। गजल का प्रथम शेर 'मतला' और अंतिम 'मकता' कहा जाता है जिसमें कवि का आभोग (उपनाम) भी हो। परंतु इस ब्रजनिधिजी के रेखतों में दो दो शेरों (चार मिसरों) के रेखतों की संख्या अधिक देखते हैं। इस प्रकार ऐसे रेखतों का पहला शेर मतला और दूसरा ही मकता हुआ। चार मिसरों की कविता को 'रुबाई', पाँच मिसरों की कविता को 'मुखम्मस' और छः मिसरों की कविता को 'मुसद्दस' कहते हैं इसी तरह और नाम भी हैं; परंतु उनके तर्ज भिन्न हैं। रेखते के संबंध में ब्रजनिधिजी ने एक रेखता ही कहा है—

"यह रेखता है यारो है रेखता।
यह देखता है दिलवर यह देखता॥
यह सच कहै पता है हैगा यह पता।
"ब्रजनिधि" मिलन-मता है सुनो यह मता॥ ६१॥"

—रेखता-संग्रह

इसमें महाराज ने रेखता के ढंग की कविता की प्रशंसा की है और यह बताया है कि यह रेखता मैंने भी परम सुढार बनाया है, जिसको दिलवर (अपने प्यारे इष्टदेव) भी पसंद करते हैं तथा इसके गुण वा प्रभाव का निश्चय 'ब्रजनिधि' कवि को इतना हो चुका है (पता = पुख्ता; ठीक। पता = प्रतापसिंह) कि ब्रजनिधि (अपने इष्टदेव) की प्राप्ति का जो दृढ़ संकल्प है वह इस रेखते के द्वारा स्तुति करने से सिद्ध हो जायगा।

'रेखता सग्रह' में सगृहीत रेखतों के अतिरिक्त इस ग्रंथावली के 'हरिपद-संग्रह' में और भी रेखते आए हैं। यथा—

(१) गजल सं० २२; पृ० २५५।

(२) रेखता सं० २७; पृ० २५७।

(३) शेर सं० ११७; पृ० २८२-८३।

(४) रेखता सं० १३२; पृ० २८७–८८।

(५) रेखता सं० १३७; पृ० २८९।

(६) रेखता सं० १६२; पृ० २९६।

(७) रेखता (कलिंगड़ा) पृ० १९२; पृ० ३०३।

(८) रेखता सं० १९३; पृ० ३०३।

(९) राग ईमन (यह रेखता है) सं० १९४; पृ० ३०३-०४।

(१०) रेखता सं० १९५; पृ० ३०४।

(११) रेखता सं० १९६, पृ० ३०४-०५।

(१२) रेखता सं० १९७; पृ० ३०५-०६।

(१३) रेखता (कलिंगड़ा) सं० १९८। पृ० ३०६-०७।

(१४) रेखता सं० २०२; पृ० ३०७-०८।

इस प्रकार १४ रेखते उक्त ग्रंथ में आए हैं जिनमें से उक्त एक तो रेखता-संग्रह ही में आ चुका है। इनके सिवा, जैसा पहले कहा जा चुका है, 'बिरह-सलिता', 'रास का रेखता' और 'दुःख-हरन-बेलि' तो स्वयं रेखते हैं ही।

"ब्रजनिधि-ग्रंथावली" के छंदों और पदों आदि की संख्या

सं०	ग्रंथ नाम	दोहा	सोरठा	कवित्त	सवैया	कुंडलिया	छप्पै	छंद चौपाई बरवै	पद	रेखता	गज़ल	सब जोड़	
१	प्रीतिलता	६५	१६					बरवै १				८२	
२	सनेह-संग्राम					२६						२६	
३	फाग-रंग	२८	६	१२	६							५३	
४	प्रेम-प्रकास	२५	१०	१								५६	
५	विरह-सलिता	१								१		२	
६	स्नेह-बहार	४१	३									४४	
७	मुरली-बिहार	३१	२									३३	
८	रमक-जमक-बत्तीसी	३१	१									३२	
९	रास का रेखता									१		१	
१०	सुहाग-रेनि	२१	३									२४	
११	रंग-चौपड़	२४	१									२५	
१२	नीति-मंजरी	४६	५			२०	२७					१०१	३०६
१३	शृंगार-मंजरी	६४	३			६	२९					१०२	
१४	वैराग्य मंजरी	४९	६			६	५२					१०३	
१५	प्रीति-पचीसी	१		२५	३							२९	
१६	प्रेम-पंथ	४	२३									२७	
१७	ब्रज-शृंगार	४३		२२								६५	

१८	श्रीब्रजनिधि-वली								११७			११७
१९	दुःखहरन-वेलि									१		१
२०	सोरठ ख्याल								१			१
२१	ब्रजनिधि-पद-संग्रह								२४५			२४५
२२	हरि-पद-संग्रह	२४		४४	१६	१	३	छं० चौ० ५ + ३	८७	रे० शेर १३ + १	१	२०३
२३	रेखता-संग्रह									१९८		१९८
	जोड़	४६१	६६	११०	२५	५६	१११	८ / ५+२+१	४५०	२१५ / २१४+१	१	१५७०

नोट—'रास का रेखता', 'दुःखहरन-वेलि' और 'सोरठ ख्याल'—इन तीनों के अंतर्गत पदों की पृथक् संख्या दी है—परंतु रेखता वा पद होने के कारण इनकी संख्याएँ एक एक ही ली गई हैं।

विगत ब्योरा	दोहा	सोरठा	बरवै	चौपाई	कवित्त	सवैया	छप्पै	कुंड०	छंद	पद	रेखता	गजल	शेर
	४६१	६६	१	३	११०	२५	१११	५६	५	४५०	२१४	१	१

९०४   ६६६

सब १५७०

अब यहाँ इस व्रजनिधि-ग्रंथावली में संगृहीत ग्रंथों का संक्षेप में दिग्दर्शन कराते हैं। इनकी संख्या २३ है, जिनमें पहले छंदों के ग्रंथ हैं फिर पदों के। छंदों के ग्रंथों को हम "ग्रंथ-विभाग" कहेंगे और पदों के ग्रंथों को "पद-विभाग" कहेंगे। ग्रंथों में सं० ९ (रास का रेखता) स्वयं एक गायन की चीज़ (अर्थात् रेखता) है, छंद का ग्रंथ नहीं है। इसी तरह सं० १९ और २० भी हैं, परंतु वे गायन के स्वतंत्र ग्रंथ माने गए हैं।

(१) ग्रंथ-विभाग

सं० १ से १७ तक को हम ग्रंथ कहते हैं और इनका थोड़ा थोड़ा विवरण देते हैं, जिससे उनके विषय और प्रयोजन आदि पहले से हो जाने जा सकें। यह विवरण सं० १ से १७ तक के ग्रंथों का लगातार है। "पद-विभाग" (अर्थात् सं० १८ से २३ तक के ग्रंथों) का कुछ नोट इस "ग्रंथ-विभाग" के आगे दिया गया है।

(१) प्रीतिलता—यह ८२ दोहे-सोरठों का ग्रंथ है जिसमें राधा-कृष्ण के परस्पर प्रेम की उत्पत्ति, परस्पर की मनोलग्नता, परस्पर की चाह, मान, मानभंग, पुनः प्रेम-प्रवाह और दंपति-विलास का अनूठा विवरण है। इसमें बीच बीच में शुद्ध मनोरम व्रजभाषा में प्रसंग-द्योतक वचनिका (गद्य) है। दोहे ऐसे सुंदर और सालंकार बने हैं कि उनसे **बिहारी** आदि महाकवियों की उच्च कोटि की रचना का आनंद प्राप्त होता है।

"परसनि सरसनि अग की, हुलसनि हिय दुहुँ ओर।
नैन बैन अँग माधुरी, लए चित्त चित चोर॥ ६७॥
प्रिया बदन-विधु तन लखे, पिय के नैन-चकोर।
× × × × ॥ ६८॥
× × × ×
निपट विकट जे जुटि रहे, मो मन कपट-कपाट।
जब खूटैं तब आपहीं, दरसैं रस की बाट॥ ७०॥

× × × ×

प्रानति तें प्यारो लगै, दंपति-सुजस-बखान।
अधिकारी विरलो अवनि, रुचै न रस बिन आन॥ ७२॥

× × × ×

गुन को ओर न तुम लिखैं, औगुन को मो माहिं।
होड़ परसपर यह परी, छोड़ बदी है नाहिं॥ ७७॥

× × × ×

प्रीतिलता यह ग्रंथ, प्रेम-पंथ चित परन को।
लाभ होत अतिश्रंत, कृष्न-किसोरी-चरन को॥ ७८॥"

(२) सनेह-संग्राम—इसमे २६ कुंडलिया छंदों में राधिका-कृष्ण के स्नेह-संग्राम का रूपक है। १ से १२ छंदों तक राधिकाजी के नेत्रों को गोली, बाण, गुप्ती, तलवार, कटार, करद, बाँक, तमंचा (मृदु मुसक्यान का), नेजा, गिलोल (भौंह), नावक के बान और खंजर कहा गया है। १३वे में सुरीली आवाज को बारूद का बाण बताया गया है। १४वें मे कुच को गुरज कहा गया है। १५वें में नृत्य को व्यूह-रचना वर्णित किया गया है। १६वें में गुलाब की पाँखुरी को छर्रा कहा गया है। १७वे में वस्त्र को ब्रह्मास्त्र निदर्शित किया गया है। १८वे में चकरी को चक्र अनुमित किया गया है। १९वें में लटुवा (लट्टू) को मुद्गर (गदा) निदर्शित किया गया है। २०वे में राधिकाजी के नख-शिख साज-सिंगार की समता मदन महारथी से की गई है। २१वें में वस्त्र उघड़ जाने से अंग की ओप को फिरंगी की तोपों का छूटना कल्पित किया गया है। २२वें में हाथ से कदंब की डाली पकड़ने से जो अंगों का दृश्य हुआ उस पर परिघ शस्त्र की उद्भावना की गई है। २३वे में जलक्रीड़ा के समय उछलनेवाले छींटों की गराब से उपमा दी गई है। २४वें में गुमान को गढ़ कहा गया है और उसे उड़ाने को 'सुरंग' की सुरंग

लगाई है जिससे 'पन-पाहन' (ऐंठ-मरोड़-रूपी पत्थर) उड़ गए। यह कुंडलिया सर्वोत्कृष्ट है—

"राधे सज्यौ गुमान-गढ रूपी रूप की फौज।
ताकि ताकि चोटैं करत उद्भट सुभट मनोज॥
उद्भट सुभट मनोज फौज अपनौ विस्तारयौ।
ब्रजनिधि बुद्धि-निधान कान्ह अपमान सँवारयौ॥
सनमुख दियौ सुरंग उड़े पन-पाहन आधे।
निकसी खोलि किवारि रारि करिवे को राधे॥ २४॥"

उक्त अस्त्र-शस्त्र लगने से श्रीकृष्ण घायल हुए, घबराए, उनका चित्त चूर्ण हो गया, वे घूमने लगे, आह-कराह करने लगे इत्यादि। दोनों ही हेत-खेत (प्रेम-समरभूमि) में घने धीर वीर हैं; उसमें डटकर लड़नेवाले हैं। ऐसे दाँव-घात करते हैं, ऐसे हाथ-बाथ भर जुट गए हैं कि अलग ही नहीं होते। इसके 'पते' की बात को 'सुघर सनेही' ही जान सकते हैं।

(३) फाग-रंग—यह दोहा, सोरठा, कवित्त, सवैया (सब मिलाकर ५३) छंदो में प्रणीत सरस सुंदर ग्रंथ है। इसमें दोहे या सोरठे के पीछे कवित्त वा सवैया दिया है और फाग-अनुराग की लीला वर्णित है। अंत में ब्रज-भूमि के फाग की महिमा का सुंदर वर्णन है। यथा—

"बिधि वेद-भेदन बतावत अखिल बिस्व,
पुरुष पुरान आप धारयौ कैसो स्वाँग घर।
कइलासवासी उमा करति खवासी दासी,
मुक्ति तजि कासी नाच्यौ राच्यौ कैसे राग पर॥
निज लोक छाँड्यौ ब्रजनिधि जान्यौ ब्रजनिधि,
रंग रस बोरी सी किसोरी अनुराग पर।
ब्रह्मलोक वारौं पुनि शिवलोक वारौं और,
विष्णुलोक वारि डारौ होरी ब्रज-फाग पर॥ ४७॥"

(४) प्रेम-प्रकास—इसमें श्री राधिकाजी का श्री कृष्णजी के प्रति अगाध प्रेम और न मिल सकने से विरह-वेदना, विह्वलता और मिलन की परम उत्कंठा का निरूपण है—

"प्रीतम तुमरे हेत खेल न तजिहै प्रीति कौ।
प्रान काढ़ि किन लेत तजिहैं पै भजिहैं नहीं ॥ ३४ ॥"

—कितनी सुंदर उक्ति है! इस व्यथा को एक सखी ने जाकर श्रीकृष्णजी से कहा तो परम कृपालु ने कुंज-भवन मे राधिकाजी से भेंट की। इसी सुख का वर्णन निम्न-लिखित दोहे मे किया गया है—

"कछुक लाज करि लाड़िली, अधो दृष्टि करि देत।
सो सुख मो मन सुमिरिकै, लूटि तुरत किन लेत ॥ ४१ ॥"

ऐसे ऐसे ५६ दोहे-सोरठों में इस प्रेम का प्रकाशन हुआ है।

(५) बिरह-सलिता—इसमें ५१ शेरों का एक रेखता और अंत में एक दोहा देकर कवि ने विरह-व्यथा की नदी का प्रवाह सा बहा दिया है। गोपियों ने ऊधोजी द्वारा अपनी फर्याद कहलाई है—

"जीवन-जड़ी लै आवौ, अमृत अधर का प्यावौ।
रँग-संग अँग मिलावौ, जियदान यों दिवावौ ॥ ४८ ॥"

(६) स्नेह-बहार—यह देखने में छोटा परंतु अर्थ मे विशद, स्नेह (इश्क) की हकीकत को ऐसे सुंदर दोहों में वर्णन करनेवाला ग्रंथ है कि जिसे पढ़ने ही से आनंद आवेगा। यह ४० दोहों और फल-स्तुति के चार सोरठों में विरचित है—

"और इस्क सब खिस्क है, खल्क ख्याल के फंद।
सच्चा मन रच्चा रहै, लखि राधे ब्रजचंद ॥ ३६ ॥"

(७) मुरली-विहार—३३ दोहे सोरठों का यह सुकुमार नन्हा सा ग्रंथ 'बाँस की टुकरिया' के साथ गोपियों का झगड़ा और साथ ही मुरली-महिमा गाता है—

"जोग ध्यान जप तप करें, नहिं पावत यह थान।
अधर-मधुर-अमृत चुवत, सोहि करत है पान॥ २१॥"

(८) रमक-जमक-बतीसी—"लाल-लाड़िली-रमक की, जमक बनी अतिजोर" की बतीसी (बत्तीस दोहों की रचना) (भक्तों के मुख की) बतीसी में रमकर संसार के त्रिविध-वर्त्ती दुःखों की बारूद पर बतीसा (पलीता) है। इसमें यमकों से भरे हुए सुंदर सरस प्रेम-सने रसगुल्ले हैं—

"बानी सी बानी सुनी, बानी बारह देह।
बनी बनी सी पै बनी, नजर बना की नेह॥ २१॥"

(९) रास का रेखता—इस ग्रंथ मे रेखता (उर्दू-मिश्रित) खड़ी बोली में रास का सुंदर वर्णन है। श्रीकृष्ण के शृंगार, नृत्य, ताल, गान और वादित्रों आदि का अनोखा रसीला वर्णन है। दंपति-रस-रास-विलास, सखियों का और देवाधिदेव शिवजी तथा देवताओं का आना भी कथित है।

(१०) सुहाग-रैनि—यह दंपति-रस-रहस्यानंद-वर्णन—श्रीराधा-कृष्ण-प्रेमकेलि-निरूपण—सखी-भावुक भक्तों के मनों को परमानंद-प्राप्ति का हेतु है। इसको महाराज ने अपने आंतरिक प्रेमभाव से सुंदर कविता में रचा है। केवल २४ दोहे-सोरठों में ही इस गहन विषय को—सागर को गागर में भरने के समान—बड़ी चतुराई और कारीगरी से कविता-वेष पहराया गया है—

"नवल बिहारी नवल तिय, नवऊ कुंज रसकेल।
सब निसि सुरत-सुहाग मिलि, दंपति आनँद-रेल॥ २॥

× × × ×

सुरत-स्रमित सब निस जगे, रगमग रही खुमार।
छके नैन घूमत झुकत, प्रीतम रहे निहार॥ ४॥"

(११) रंग-चौपड़—"दंपति-हित-संपति-सहित, खेलत चौपरि-रंग।" श्री राधा कृष्ण चौपड़ खेलते हैं। मणियों की सार और हीरों के पासे हैं। दोनों ओर सखियाँ खेलानेवाली हैं। श्रीकृष्ण हार गए और राधिकाजी की जीत हुई। इससे श्रीकृष्ण प्रसन्न हुए। चौपड़ के खेल का, अत्यंत काव्य-माधुरी और शब्दार्थ-चातुरी से, २५ दोहे-सोरठों में परमानंददायक वर्णन किया गया है, जिसे पढ़कर समझने ही से आनंद मिलेगा।

(१२, १३, १४) 'नीति-मंजरी' भर्त्तृहरिजी के नीति-शतक के श्लोकों का, 'शृंगार-मंजरी' उनके शृंगार-शतक का और 'वैराग्य-मंजरी' वैराग्य-शतक का सरस, सुललित, सुमधुर और यथार्थ छंदोऽनुवाद है। हिंदी में इनकी टक्कर का अन्य कोई भी छंदोऽनुवाद नहीं है, यद्यपि अनेक कवियों ने भर्त्तृहरि के शतक-त्रय के पद्यानुवाद की पूर्ण चेष्टा की है। ये बहुमूल्य ग्रंथ-रत्न हैं*।

(१५) प्रीति-पचीसी—यह २८ कवित्त-सवैए और एक दोहे में मनोरंजक, उपदेशमय और सुंदर, सरस उद्धव-गोपी-संवाद है। इसमें के प्रायः सभी छंद बहुत उत्तम और चोज से भरे हैं। उदाहरणार्थ—

"आयौ हो अक्रूर सो तौ महा मति-क्रूर हुतो,
आँखिन मैं धूरि दैकै कर दीबौ परदै।
अब तुम आए ऊधो जोग सोग-रोग लाए,
लागत अभाए अब काहि कौ जु डर दै॥
ब्रजनिधि कही सो तौ सब बात सुनी है,
कहै हम सो भी तू धरम-काज कर दै।

* इस अनुवाद पर रीझकर जोधपुर के महाराज मानसिंहजी ने, जो कवि थे, यह दोहा कहा था—"भानुदत्त रसमंजरी, माधव श्रुति पर ग्रंथ। ब्रजनिधि शतक-त्रय किए, ऐहो माया-कंथ॥"

पचागनि कहा साधैं पंचैबान हमैं दाधैं,

हृदै वेदरद होय अविन भक्ति धर दै ॥ १० ॥"

"लगत तुसार तन मरे कों न मार रे" ॥ १३ ॥

"साँवरै साँप डसी हैं सबै,

तिन्है ग्यान सों मूढ़ उतारै कहा विख ॥ १५ ॥"

"मारि गयौ। वह साँवरो साजन ॥ १७ ॥"

'प्रीति मध्य जोग देत खीर माँहि डारैं लौन ॥ १८ ॥"

"बिना अपराध मारी बिहारी भली करी ॥ २३ ॥"

"ग्यान सौ रतन लैके ... ...

... ...।

मुक्त-माल जोग ही जवाहर जलूस जेर,

नई करी प्यारी ताहि जाय पहराइयौ ॥ २७ ॥"

इत्यादि बहुत ही सुंदर रचनाएँ हैं।

(१६) प्रेम-पंथ—२७ दोहे-सोरठों में प्रेम की महिमा, प्रेम का उपदेश और प्रेम का स्वरूप बहुत सुंदर और सारमय वर्णित है—

"अजहूँ चेत अचेत, भूल्यौ क्यौं भटक्यौ फिरै।

कर दंपति सौं हेत, तौ तू भवसागर तिरै ॥ ६ ॥"

"मंथन करि चाखे नहीं, पढ़ि पढ़ि राखे ग्रंथ।

पंथ करत पग परत नहिं, कठिन प्रेम को पंथ ॥ १६ ॥"

"अब कछु रही न प्यास, आस सबै पूरन भई।

कीन्हो ब्रजनिधि दास, ड्यौढ़ी की सेवा दई¹ ॥ २६ ॥"

"अपत कहा पहिचानिहैं, पता पते की बात।

जानैंगे जिनके हिये, प्रेम भक्ति दरसात ॥ २७ ॥"

---

¹ जैसे मेवाड़ राज्य में एकलिंगजी महादेव राजा गिने जाते हैं और महाराणाजी उनके दीवान (मुसाहिब), इसी तरह ढूँढाहड़ के राज्य के राजा तो श्री गोविंददेवजी माने जाते हैं और महाराज उनके दीवान। इसी कारण पट्टों में "श्री दीवाण बचनात्" सदा लिखा जाता है।

(१७) व्रज-शृंगार—इसमें प्रथम व्रज की महिमा, फिर राधा और कृष्ण की महिमा और परस्पर उनके प्रेम का वर्णन है। श्रीकृष्ण राधाजी का शृंगार कर प्रेमोन्मत्त होते हैं। यथा—

"राधे-आनन निरखिकै, चकित रहे नँद-नंद।
प्रीति-रीति है अटपटी, भयौ चकोरहि चंद॥ ३२॥"

"छवि की छटा है चढ़ी रंग की अटा है लखि,
मदन-हटा है सो बिलास वेलि कंद है।
जगमग दिवारी है कि दामिनि उज्यारी है कि,
देवता-सवारी है कि मंद हास पंद है॥
व्रजनिधिजू की प्यारी लली वृषभानुवारी,
सोभा की सरित मनो अद्भुत छंद है।
रूप है अगाधे चितवनि दृग आधे साधे,
राधे-मुख-चद को चकोर व्रजचंद है॥ ३३॥"

पुनः राधा-कृष्ण की विहार-लीला का रहस्य-प्रदर्शन है, जो अलौकिक प्रेम-पीयूष से सराबोर है—

"राधे-छवि दृग अधखुले, सुरति रैनि कै मत्त।
लखैं कृष्न मुख इकटकी, प्रीति-भाव मैं रत्त॥ ४७॥"

वह रूप कैसा है जिसमे अनुरक्त हैं?—

'रूप कैा खजानैा है कि छबि-जीत-थानैा है कि,
प्रेम सरसानैा है कि बडे भाग मानैा है॥ ४८॥"

प्रिया-प्रियतम परस्पर निहारते हैं और टकटकी ऐसी लगी है मानो उलझ गए हैं। उसी अलौकिक, रस से भरी छवि को सदा देखते रहने के लिये व्रजनिधि कवि प्रार्थना करते हैं—

"पिय-प्रीतम उरझे रहैा, यह छबि रहैा सु जोय।
व्रजनिधि-दास पतो कहै, राखैा चरन समोय॥ ४८॥"

इस प्रकार दोहा और कवित्तों की मुक्ता-लडी की हारावली से भूषित यह 'व्रज-शृंगार' ६५ छंदों में समाप्त हुआ है।

(२) पद-विभाग के ग्रंथ

यों 'ग्रंथ-विभाग' में इस संग्रह के १७ ग्रंथो का सार-दिग्दर्शन हुआ। 'पद-विभाग' का जो उल्लेख पहले किया जा चुका है उसके दोहराने की यहाँ आवश्यकता नहीं है। इस पद-विभाग में प्रधानतया ये ही चार ग्रंथ हैं—

(१) सं० १८—'श्रीव्रजनिधि-मुक्तावली'।

(२) सं० २१—'व्रजनिधि-पद-संग्रह'।

(३) सं० २२—'हरि-पद-संग्रह'।

(४) सं० २३—'रेखता-संग्रह'।

अपितु सं० १६ 'दु.खहरन-बेलि' जो एक रेखता है और सं० २० 'सोरठ ख्याल' जो एक बड़ा सा पद है, इसमें लिए जाने योग्य हैं। परंतु विचार करने से ग्रंथों में के सं० ५ 'बिरह-सलिता' और स० ६ 'रास का रेखता' भी इस पद-विभाग मे ही समझे जाने वा सम्मिलित रहने के योग्य हैं। वे किसी प्रकार भी स्वतंत्र रूप से लिखित ग्रंथ नहीं हैं। इनका दिग्दर्शन हो ही चुका है। अब इस दृष्टि से गणना और नाम-निर्देश करें अर्थात् पद-विभाग को पृथक् निर्धारित करें तो इसमें ग्रंथों की ये आठ संख्याएँ रहनी चाहिएँ—सं० १८, सं० १६, सं० २०, सं० २१, सं० २२, सं० २३ तथा सख्या ५ और सं० ६। अतः ग्रंथ-विभाग में ये १५ ही संख्याएँ रहेंगी और यही उपयुक्त भी है—सं० १, सं० २, सं० ३, सं० ४, सं० ६, सं० ७, सं० ८, सं० १०, स० ११, सं० १२, सं० १३, सं०१४, सं० १५, सं० १६, स० १७। अगामी संस्करण में इस विचार के अनुसार इन संख्याओं को यथास्थान लगाया जाना समीचीन होगा।

इस ग्रंथावली के पद-संग्रह में अन्य कवियों के पदों में इतनों के नाम मिलते हैं—सूरदास, तुलसीदास, नंददास, कृष्णदास, तानसेन, जगन्नाथ भट्ट, आनंदघन, बंसीअली, किशोरीअली, अलीभगवान्, नागरीदास, मीराँबाई, केशवराम, रूपअली, अग्रअली, आजिज, मेहरबान, दयासखी, लछीराम, हितहरिवंश, कल्याण, हितकारी, गुणनिधि, शुभचिंतक, अनन्य, हरिजस और रसरास। बुधप्रकाशजी गांधर्व विद्या मे (उस्ताद चाँदखाँ उर्फ दलखाँजी) महाराज के उस्ताद थे। उनके वंशज जयपुर मे अब तक हैं। उनका बनाया ग्रंथ 'स्वर-सागर' है और गाने की चीजें भी प्रसिद्ध हैं। ऊपर कवियों और भक्तों के जो नाम दिए गए हैं इनके पद कम हैं। केवल किशोरीअली के कुछ अधिक हैं और कुछ अनन्य के भी। और तो किसी के ४, किसी के ३, किसी के २ या १ ही। अधूरे पद और अज्ञात नाम के पद अधिक हैं। शेष सब (रेखता-सहित) ब्रजनिधिजी की छाप रखते हैं। यह नाम कहीं "ब्रज की निधि", एक जगह केवल 'ब्रज' ही और कहीं 'प्रताप', 'प्रतापसिंह' और 'पता' ही दिया है। इस ग्रंथावली के अवलोकन से विदित होगा कि इसमें पद-विभाग का अंश अधिक है। ग्रंथों ने तो १५५ पृष्ठ ही अधिकृत किए हैं, परंतु पदों ने २१७ पृष्ठ अर्थात् ड्योढ़े के लगभग। अनुमान होता है कि महाराज पद आदि की रचना अधिक करते थे। पदों की गणना करने से उक्त चारों ग्रंथों में कुल ७६३ पद आदि हैं; यथा—

(१) श्रीब्रजनिधि-मुक्तावली में ब्रजनिधिजी के ११७, अधूरे कोई नहीं हैं, न दूसरों के हैं।

(२) ब्रजनिधि-पद-संग्रह में ब्रजनिधिजी के १५२, अधूरे ५३, अन्यों के ४०, कुल २४५ हैं।

(३) हरि-पद-सग्रह में ब्रजनिधिजी के ११३, अधूरे नहीं, अन्यों के ५३ तथा अज्ञात ३७, कुल २०३ हैं।

(४) रेखता-संग्रह मे ब्रजनिधिजी के १६८ हैं, अन्य किसी के नहीं हैं।

इन चारों ग्रंथों में ब्रजनिधिजी के ५८०, अधूरे ५३, दूसरों के ९३, अज्ञात ३७, कुल ७६३ पद हैं।

इन ७६३ पदों में, पदों और रेखतों के सिवा, कवित्त, छप्पय, दोहा आदि भी हैं। महाराज की प्रशंसा के, तुलसीदासजी की महिमा के, चतुर्भुज भट्ट की महिमा के और थोड़े से नीति आदि के भी हैं।

पदो का कोई समग्र ग्रंथ न मिलने से और समय समय पर पृथक् पृथक् मिलने और छपाने के लिये भेजे जाने से इनका प्रकरण-बद्ध संकलन नहीं हो सका। और समग्र 'ब्रजनिधि-मुक्तावली' के मिलने की आशा मे भी यह कार्य नहीं हो सकता था। संभवतः आगामी संस्करण में पदों को प्रकरणशः छाँटना आवश्यक होगा। तभी उनका अधिक आनंद मिलेगा।

महाराज ब्रजनिधिजी के (उक्त २३ मे से) ४ पदों के और १९ छंदों के ग्रंथ हैं। इनमें से दो-तीन के अतिरिक्त अन्य सब ग्रंथों का विषय केवल राधा-गोविंद वा ब्रजनिधि की भक्ति, उनमे अनन्य प्रेम, उनकी लीला और विहार का वर्णन, विरह-व्यथा का चित्रण, अपने मनोभावों का प्रदर्शन, अपनी फर्याद, ब्रजरज, यमुना-मथुरा-गोकुल आदि के निवास की लालसा, भक्ति-भावनाओं का विकास आदि है। विषय नाम ही से प्रकट है। इनमे 'सनेह-संग्राम', 'प्रीतिलता', 'फाग-रंग' आदि ग्रंथ बहुत अच्छे हैं। भर्तृहरि के शतकों का अनुवाद बहुत सरस और उत्तम हुआ है। कहते हैं कि इसकी रचना में गुसाईं रसपुंजजी वा रसरासजी का भी हाथ था।

कुछ फुटकर पद हमको ग्रंथावली के संग्रह के मुद्रित हो जाने पर मिले जो 'परिशिष्ट' में दे दिए गए हैं। ये पद महाराज

के मंदिर (श्री ठाकुर ब्रजनिधिजी) के कीर्त्तनियों और वहाँ के ओहदेदार से प्राप्त हुए हैं। उन लोगों का कहना है कि महाराज की रचना के पद, रेखते, ख्याल आदि बहुत हैं और अनेक पुरुषों के पास देखे वा सुने हैं, परंतु असल और प्रामाणिक संग्रह राज्य के 'पोथीखाने' में मिल सकते हैं जो प्रधानतया 'ब्रजनिधि-मुक्तावली' में बताए जाते हैं। और विवाहोत्सव को तो 'शृंगार' नाम के कवि ने पृथक् ही ग्रंथरूप में बनाया था। हमने इस ग्रंथ को गोपीनाथ ब्राह्मण के पास से, जो 'ख्यालों' आदि का अच्छा गानेवाला है, लेकर देखा था। इस ग्रंथ की कविता सुंदर है और यह प्रामाणिक कहे जाने के योग्य है। परंतु यह निश्चय के साथ नहीं कहा जा सकता कि पूर्वोक्त प्रयोजन से ही इसकी रचना हुई थी।

अंत में पहले तो इस मुद्रित पुस्तक में से, उन पदों और रेखतों आदि में के संकेतों (अर्थात् उनकी स्थायी वा टेर वा मतला और पृष्ठ तथा पद की संख्या आदि) की अनुक्रमणिका दे दी गई है जो जयपुर आदि स्थानों मे गाए जाते हैं या प्रसिद्ध हैं और अपने भाव, रस एवं रचना-चातुर्य के कारण उत्तम और प्रियकर हैं; तदनंतर पद-ग्रंथों के अंतर्गत जितने पद और रेखते आदि हैं उन सबकी प्रतीकानुक्रमणिका दी गई है। मुख्य मुख्य पदों की अनुक्रमणिका से कोई यह न समझ ले कि कवित्व की दृष्टि से केवल वे ही पद उत्कृष्ट हैं और अन्य पद काव्य-गुण से रहित हैं। सच तो यह है कि प्रत्येक पद, रेखता या छंद अपने ढंग का निराला है और अवसर-विशेष पर सच्चे प्रेमभाव से बना था जो भावुक रचयिता के हृदय में तरंगित हुआ था। जैसा हमने पहले दरसाया है, ऐसा ही प्रतीत होता है प्रायः सबकी रचना यथावसर भक्ति-भाव की विशेषता, आवश्यकता अथवा "भीड़" पड़ने पर हुई है, और पदादि का चुनाव भी रसज्ञ पाठकों, गायकों और भक्तों

की अभिरुचि पर और आवश्यकता तथा प्रसंग पर निर्भर है। परंतु हमने जिनकी अनुक्रमणिका दी है उनके पूर्वोक्त कारण हैं।

महाराज ब्रजनिधिजी की कविता राजा-पसंद, राजा-रचित और राजा-गुण-आगरी है। वह हिंदी भाषा के भांडार की अमूल्य रत्न-पेटिका है। ढूँढाहड़ और राजस्थानों का गौरव तथा रसिकों, कविजनों और हरिभक्तों की प्यारी निधि है। जो लोग भक्ति-भाव, श्रद्धा और प्रीति-पूर्ण हृदय से इसे पढ़ेंगे और समझेंगे उनका परम कल्याण होगा। ईश्वर-चरणों की भक्ति उन्हें प्राप्त होकर सुदृढ़ होगी। काव्य-व्यासंगियों का इससे परम हित-साधन होगा*।

इस प्रकार इस ग्रंथावली की भूमिका संक्षेप रूप से समाप्त होती है। महाराज प्रतापसिंहजी के समस्त ग्रंथ पूर्ण रूप में जब कभी, भाग्योदय से, प्राप्त होंगे तब वह दिवस साहित्य-संसार के लिये शुभतर होगा। इतना संग्रह जो इतस्ततः उपलब्ध हो सका वही आगामी सुवृहत् संपादन के लिये पथदर्शक का काम देगा। 'बालावख्श-राजपूत-चारण-पुस्तकमाला' इस रत्न से, जो एक विशिष्ट विद्वान् महाराजा का प्रसाद है, अपने गौरव और मूल्य में बहुत बढ़ जायगी तथा हिंदी-काव्य-भंडार की भी, यह बहुमूल्य मणिमाला मिल जाने से, परम वैभव-वृद्धि होगी। इसके लाभ से भगवद्भक्तों,

---

* स्वयं महाराज ने ग्रंथों की फलस्तुति में कहा है—

"प्रीतिलता यह ग्रंथ, प्रेम-पंथ चित धरन को।
लाभ होत अतिअंत, कृष्न-किसोरी-चरन को॥"—पृ० ११

"पता यहै बरनन करयौ, पिय प्यारी कौ फाग।
सो सुमिरन करि करि बढै, हिये माँझ अनुराग॥"—पृ० ३२

"फाग-रंग को जो पढ़ै, ताके बढ़ैं उमग।
ब्रजनिधि निधि ताकौं मिलै, सकल सिद्धि ही संग॥"—पृ० ३३

रसिकों और साहित्य-सेवियों के मन को भी आनंद प्राप्त होगा और इसका अनुशीलन करने से उन्हें अपने श्रेय-संपादन में सहायता मिलेगी।

सवाई जयपुर
चैत्र शु० ३ बुधवार, सं० १९९० वि०
(गणगौरिमहोत्सव)
ता० २९ मार्च, सन् १९३३ ई०

विनीत
पुरोहित हरिनारायण शर्म्मा

जीवन-चरित्र

महाराज ब्रजनिधिजी का जीवन-चरित्र भी घटना-बाहुल्य से परिपूर्ण है। आश्चर्य होता है कि राज-कार्य्य और कठिनाइयों से आवृत रहकर भी उनको इतनी उत्तम कविता और भक्ति-भाव के संपादन करने का कैसे अवसर मिलता था।

महाराज प्रतापसिंहजी सूर्यवंश की प्रख्यात शाखा कछवाहा-वंश के मानों सूर्य ही थे। महाराज श्री रामचंद्रजी से १-८६वीं पीढ़ी मे राजा सोढ़देवजी हुए, जो अपने वीर पुत्र दूलहरायजी सहित ढूँढाहड़ देश मे आकर यहाँ के यशस्वो राजा हुए। सोढ़देवजी से १७ वीं पीढ़ी मे महाराज पृथीराजजी हुए। पृथीराजजी की वंश-परंपरा में महाराजा भारमलजी, मानसिंहजी, मिर्जा राजा जयसिंहजी, सवाई जयसिंहजी आदि अत्यंत वीर, यशस्वी, बहु-गुण-संपन्न और कीर्त्तिमान् नरपति हुए जिनके नाम बल, विद्या, नीति, धर्म-परायणता और धन-संपत्ति आदि के कारण भारतवर्ष में यावच्चंद्र-दिवाकर बने रहेंगे। जयपुर नगर के बसानेवाले, अश्वमेध यज्ञ के कर्त्ता, ज्योतिष-यंत्रालय आदि के निर्माण-कर्ता, परम प्रवीण सवाई जयसिंहजी के ईश्वरीसिंहजी और उनके माधवसिंहजी उत्तराधिकारी हुए। माधवसिंहजी के पोछे उनके बड़े पुत्र पृथीसिंहजी (जिनका जन्म वि० संवत् १८१८ मे हुआ था) सं० १८२४ में पाँच ही वर्ष की उम्र मे गद्दी पर बैठे। परतु ये सं० १८३३ में देवलोक-गामी* हो

---

* कर्नल टाड साहब और ठाकुर फतहसिंहजी की तवारीखों में पृथीसिंहजी को भट्याणीजी के पुत्र और प्रतापसिंहजी को चूँडावतजी के पुत्र लिखा है और चूँडावतजी का (जो शासन में अधिकार रखती थीं) पृथीसिंहजी को विष देना भी लिखा है। परंतु जयपुर की वंशावली और अन्य ग्रंथों में

गए। तब उनके छोटे भाई प्रतापसिंहजी मि० वैशाख बदी ३ बुधवार संवत् १८३५ को गद्दी पर विराजे। इनका जन्म महाराणी चूँडावतजी के गर्भ से मि० पौष बदी २ संवत् १८२१ को जयपुर में हुआ था। ये गद्दी पर बैठने के समय अनुमानतः पंद्रह वर्ष के थे। गद्दी पर बैठते ही ये शासन-प्रबंध करने लगे। दुष्ट फीरोज महावत को, जो वृथा ही राजधानी में शहज़ोर हो रहा था, फौज देकर महाराज प्रतापसिंहजी ने माँचैड़ी के राव पर भेजा और वहीं उसको (फीरोज को) बोहरा खुशालीराम ने जहर देकर मरवा डाला। माता चूँडावतजी की भी परमगति हो गई। ऐसा ही इतिहास में लिखा है। माँचैड़ी के राव ने फिर सिर उठाया तब उन्होंने फौजकशी करके उसे ठीक किया। परंतु बोहरा खुशालीराम, माँचैड़ीवाले से मिला हुआ था, इस लिये उसने उस राव को कुछ इलाका दिला दिया। यों देश की कुछ हानि भी हो गई। उधर मराठों का उत्पात बढ़ता जा रहा था। मराठे अपनी चौथ राज-स्थानों से वसूल करने का पूर्ण उद्योग करते थे। महाराज प्रतापसिंहजी के पिता महाराज माधवसिंहजी तो मल्हारराव को फौज सहित लाकर जयपुर लेने में सफल हुए ही थे। उस समय का कुछ फौज-खर्च भी बाकी था। इसी से सेंधिया जयपुर पर चढ़ाई करना चाहता था। नीतिमान् महाराजा प्रतापसिंहजी ने यह उपाय सोचा था कि अन्य रजवाड़ो को मिलाकर मराठों को सदा के लिये राजपूताने से निकाल दिया जाय। इसी लिये उन्होंने संवत् १८४३ में जोधपुर के महाराज विजयसिंहजी के पास दौलतराम हलदिया को भेजकर कहलाया कि यदि आप साथ हों तो मराठों

दोनों को चूँडावतजी का पुत्र लिखा है। पृथ्वीसिंहजी के मानसिंहजी नाम के एक पुत्र थे, जो उनके मरने पर अपनी ननिहाल चले गए और फिर ग्वालियर में जागीर पाई, ऐसा भी लिखा है।

को मारकर निकाल सकते हैं। विजयसिंहजी तो इस बात को चाहते ही थे। उन्होंने तुरंत सेना भेज दी। संवत् १८४३ ही में दोनों राज्यों की सम्मिलित सेना ने तूँगा (घौसा के पास एक कस्बा) की बड़ी लड़ाई में सेंधिया की सेना को ऐसा परास्त किया कि सब मराठों पर राजपूतों की शूरवीरता का आतंक छा गया। परंतु चार ही वर्ष पीछे सेंधिया ने जयपुर पर फिर चढ़ाई की और फिर जयपुर ने राठोड़ों की फौज बुलवाई। पाटण (तोरावाटी) के मुकाम पर संवत् १८४८ में भारी संग्राम हुआ जिसमे पहले तो जयपुर की जीत हुई परंतु पीछे जोधपुर की फौज के चाँपावतों ने, जयपुरवालों के ताने मारने से रुष्ट होकर, सहायता नहीं दी और इस विश्वासघात से हार खानी पड़ी। पाटन की हार के पीछे मौका पाकर होल्कर ने भी फिर चढ़ाई की और उस समय परिस्थिति ठीक न रहने से मराठों से मेल करना पड़ा। तथापि कभी सेंधिया और कभी होल्कर से लड़ाई-झगडा होता ही रहा जिससे राज्य को बहुत हानि पहुँची। तूँगे की लड़ाई के कई कवित्त हैं, जिनमें राव नाथूराम कवीश्वर नायलेंवाले का एक कवित्त दिया जाता है—

"इतैं हिंदनाथ श्री प्रताप कर चाल झालै,
 उतैं माथ साथ झिलै आसमान भीरे से।
महाघोर वीर जुद्ध ऊँची करनैन लागे,
 कूँचि करनै न लागे कायर अधीरे से॥
कटिगे कटीले जेते रावत हठीले रुके,
 सटिगे सदल के पटैल मुख पीरे से।
मारे खड़गवारे इन सुभट्टन के ठट्ठ परे,
 मूँड मरहट्टन के खेत में मतीरे से॥ १॥"

"प्रताप-वीर-हजारा" में भी महाराज की वीरता के अनेक अच्छे अच्छे कवित्त हैं जिन्हें उद्धृत करने में स्थानाभाव प्रतिबंधक है। जॉर्ज

टामस के सफरनामे के हवाले से कविराज श्यामलदासजी ने मराठों और राजपूतों की एक भारी लड़ाई का, फतहपुर (शेखावाटी) में, संवत् १८५६ मे, होना लिखा है, जिसमें मराठों की तरफ से उक्त साहब और वामन राव थे तथा कवायद जाननेवाली एक सेना और तोपें भी साथ में थीं। जयपुर की फौज ने उनको भारी शिकस्त दी और उनका बहुत दूर तक पीछा करके बड़ी हानि पहुँचाई। इस लड़ाई में बीकानेर और किशनगढ़ की फौजें भी मदद के लिये आई थीं। तूँगे की विजय के संबंध में कर्नल टॉड साहब ने महाराज प्रतापसिंहजी की बहुत बढ़-चढ़कर प्रशंसा लिखी है—"महाराज प्रतापसिंह ने स्वयं रणक्षेत्र में सेना का परिचालन किया था। इस कारण उनके पक्ष में यह विजय विशेष प्रशंसित मानी गई। तूँगा के इस युद्ध में विजय पाकर महाराज प्रतापसिंहजी ने एक बड़ा उत्सव करके २४ लाख रुपया बाँटा था। इस समर में विजय पाने से आमेराधीश प्रतापसिंहजी के यश का गौरव समस्त रजवाड़ों में फैल गया। प्रतापसिंहजी एक महावीर और बुद्धिमान् राजा थे।" परंतु आपस की फूट और दस्यु मराठों की लूट-पाट, पिंडारियों की डकैती और आक्रमण आदि से उस समय जो जो आपत्तियाँ उपस्थित होती रहती थीं उनके निवारण करने में इन महाराज ने जितना उद्योग किया उतना कदाचित् ढूँढाहड़ के किसी भी राजा को न करना पड़ा होगा।

जयपुर की वंशावली (ख्यात) में लिखा है कि सेंधिया पटेल की फतह के पीछे रेवाड़ी के डेरे में बादशाह आया था। वहाँ महाराज उससे मिलने गए। उस समय इनकी बुद्धिमानी और वीरता से बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ और इनसे मंत्री का काम करने के लिये कहा। महाराज ने शिष्टाचार की बातें करके उसे टाल दिया। वंशावली में यह भी लिखा है कि महाराज के गद्दी पर

विराजने के थोड़े ही समय पीछे दिल्ली के बादशाह ने दिल्ली से कूँच कर नारनौल होते हुए सवाई जयपुर मे० टाल्यॉवास के पास बॉडी नदी पर डेरे किए। तब महाराज सवाई जयपुर से "मुला-जमत" करने को पधारे, मिती फागुन सुदी ३ संवत् १८३५ के साल, और आकैड़े भावसागर पर चार दिन डेरे किए।

जयपुर के इतिहास में इन महाराज के राज्य की एक यह घटना भी विख्यात है कि उस विप्लव और देश-परिवर्त्तन के समय मे अवध का नवाब वजीरअली (वजीरुद्दौला) अँगरेज सरकार से विद्रोह करके संवत् १८५६ में महाराज प्रतापसिंहजी के शरणागत हुआ। वजीरअली की माता ने महाराज को लिख भेजा कि मेरे पुत्र की आप रक्षा करें। आपका हमारा संबंध कदीमी है और आप ही का भरोसा समझकर हमारा पुत्र आपके पास गया है। धन की आवश्यकता हो तो कमी नहीं है। अवध से जयपुर तक अशरफियों के छकड़ों का ताँता बाँध दूँगी। महाराज ने क्षत्रियोचित धर्म को समझकर शरणागत की रक्षा की और वजीरअली को सत्कार-पूर्वक अपने यहाँ रखा। परंतु अँगरेज-सरकार को जब यह पता लगा तब उसने अपने मुलजिम को महाराज से माँगा और जाहिर किया कि हमारे खूनी को वापस करना कायदे के मुआफिक मुनासिब है। परंतु महाराज ने शरणागत को वापस देना धर्म-विरुद्ध बताया। तब अँगरेजों ने बहुत दबाव डाला और राज्य के मंत्रियों को मिलाकर अपना प्रभाव महाराज पर जमा लिया। अंत मे देश-काल की परिस्थिति पर विचार करके महाराज ने यही नीति उस समय उपयुक्त समझी कि वजीरअली को इस शर्त पर अँगरेज-सरकार के सुपुर्द कर दिया जाय कि इसको प्राणदंड न दिया जाय। इसको बड़े अँगरेज अफसरो ने मंजूर किया। परंतु देश मे उस समय के विचार

से यह बात अच्छी नहीं समझी गई। अब तो समय में इतना परिवर्त्तन हो गया है कि खूनी मुलजिम को शरणागत करना या रखना ही बुरा समझा जाता है।

पूर्व-कथित युद्धों के अतिरिक्त समय समय पर महाराज को अन्य कई युद्ध करने पड़े थे।

महाराज प्रतापसिंहजी को मराठों आदि के दमन करने और अनेक युद्ध आदि करने में अपने जीवन मे बड़ी बड़ी कठिनाइयाँ भोगनी पड़ी हैं। लड़ाइयों का खर्च और तज्जनित आपत्तियाँ तथा क्लेश कितने उठाने पड़ते हैं, यह बात अनुभवी पुरुषों से छिपी नहीं है। जयपुर का खजाना, जो कुबेर का भांडार समझा जाता था, बहुत कुछ इन युद्धों में खाली हो गया था। महाराज सवाई जयसिंहजी के समय मे यह भरा-पुरा था। अश्वमेध यज्ञ, जयपुर-निर्माण और जोधपुर की चढ़ाई तथा अन्य लड़ाइयो में उनके समय में भी इसका एक अंश व्यय हो गया था। फिर ईश्वरीसिंहजी और माधवसिंहजी दोनों भाइयों की लड़ाई में एक बड़ी रकम निकल चुकी थी। इस अवस्था में भी महाराज प्रतापसिंहजी ने अपनी बुद्धिमानी और नीति-परायणता से सब लड़ाइयों का खर्च चलाया और बहुत वीरता, साहस और योग्यता से उस कठिन काल में राज्य की रक्षा की जब भारतवर्ष गहरे विप्लवों में डूबा हुआ था और यह राज्य शत्रुओं से समय समय पर आक्रांत और त्रस्त होता था। भारतवर्ष में यह युगांतर या युग-परिवर्त्तन का समय था, जिसका हाल इतिहास पढ़नेवालों को भली भाँति विदित है।

इस प्रकार राज्य की रक्षा करते हुए तथा अपने परम इष्ट श्रीगोविंदेवजी के चरणों में अटल भक्ति रखते हुए महाराज अब उस समय के निकट आ पहुँचे जब अगणित चिंताओं से उनका मन खिन्न हो गया और उनके शरीर में रुधिर-विकार और फिर

अतिसार रोग की प्रबलता हो गई। इस अवस्था में आप प्रायः ठाकुर श्री ब्रजनिधिजी के चरणों के तले तहखाने में आराम किया करते। आपके समय में बड़े बड़े नामी वैद्य थे, जिन्होंने ओषधि-प्रयोग के द्वारा जल से भरे हौज तक को जमा दिया था। परंतु उनकी वे ओषधियाँ भी इस अतिसार को रोकने में असमर्थ रहीं। अंततोगत्वा आपकी पवित्र आत्मा ने, गोलोक-वास करने के लिये, आपके नश्वर शरीर को मिती सावन सुदी १३ संवत् १८६० को त्याग दिया। ढूँढाहड़ के एक नामी, पराक्रमी, ज्ञानी-ध्यानी, विद्वान् और विद्या-कला-रसिक, गुणियों और कवियों के ग्राहक राजा इस संसार से उठ गए! परंतु अपनी अटल कीर्त्ति को—जो उनके अलौकिक कार्यों, साहित्य-सेवा, गुण-ग्राहकता और भगवत्-प्रेम के कारण प्रतिष्ठित थी—इस जगत् में छोड़ गए। महाराज का दाहकर्म 'गेटोर' में हुआ, जहाँ इनके पूर्वजों (पिता और पितामह) की समाधियाँ हैं। वहाँ सफेद पत्थर की सुंदर छतरी आपकी स्मृति-रक्षा के निमित्त बनी हुई है। आपके पीछे आपके महाराजकुमार जगतसिंहजी गद्दी पर विराजमान हुए।

महाराज प्रतापसिंहजी के रनवास में १२ रानियाँ, छः पातुरें और एक वेश्या थी। इनमें से राठोड़जी अपने पीहर जोधपुर में, खबर पहुँचने पर, सती हुई और जयपुर में दो पातुरें सती हुईं। जगतसिंहजी महारानी भट्याणीजी के गर्भ से जन्मे थे। इन्हीं भट्याणीजी के ३ बेटियाँ हुई थीं जिनमें से अनंद-कुँवरि और सूरजकुँवरि तो जोधपुर ब्याही थीं और चंद्रकुँवरि की सगाई उदयपुर हुई परंतु विवाह से पूर्व ही वे कालवश हो गई थीं। महारानी चंद्रावतजी और जादमजी के दो दो बेटियाँ * हुईं परंतु

* एक वंशावली के मत से छोटी चंद्रावतजी के एक बेटा और एक बेटी हुई। बड़ी चंद्रावतजी के कोई संतान नहीं हुई और जादमजी के तीन बेटियाँ होना लिखा है।

बालकपन में ही दिवंगत हो गई। रंगराय पातुर के बाल्यकाल में बलभद्रदास नाम का एक बेटा और एक बेटी हुई। श्यामतरंग पातुर के एक बेटी नंदकुँवरि थी। कस्तूरीराय के एक बेटा गुलाबसिंह था। रंगतिसरस के एक बेटी थी। गतितरंग के एक बेटा राजकुँवार था। दीदारबख्श भगतिन के दो बेटे मोहनदास और कानदास हुए। इस प्रकार महाराज के 'राजलोक का ब्योरा' वंशावलियों में लिखा है।

महाराज का शरीर बहुत सुडौल और सुंदर था। वे न तो बहुत लंबे थे, न बहुत ठिंगने; न बहुत मोटे और न बहुत पतले। उनके बदन का रंग गेहुँआ था। उनके शरीर में बल भी पर्याप्त था। बाल्यावस्था में उन्होंने शास्त्र-शिक्षा के साथ साथ युद्ध-विद्या की शिक्षा भी पाई थी, जैसा कि उस जमाने में और उससे पहले राजकुमारों के लिये अनिवार्य नियम था। आपके पिता महाराज माधवसिंहजी का यह निश्चय रहा कि ये दोनों भाई (पृथ्वीसिंहजी और प्रतापसिंहजी) हिंदी और संस्कृत के पंडित हो जायँ। अतः उन्होंने इनकी शिक्षा के लिये यथेष्ट प्रबंध किया था। उस जमाने में अच्छे अच्छे पंडित और कवि मौजूद थे। अभी महाराज सवाई जयसिंहजी की जगत्प्रसिद्ध पंडित-मंडली में से अनेक व्यक्ति विद्यमान थे तथा जो विद्वान् परलोक-गत हो गए थे उनकी संतान में भी पंडित थे। महाराज माधवसिंहजी और ईश्वरीसिंहजी गुणियों के कुछ कम ग्राहक न थे। अतः कवियों, रसिकों और ईश्वर-भक्तों का इनके समय में भी वैसा ही जमघट था। इस कारण महाराज प्रतापसिंहजी को विद्या-संपादन का सुअवसर बना ही रहा।

महाराज का स्वभाव भी बहुत अच्छा था। वे हँसमुख, मिलनसार, उदार और गुण-ग्राहक प्रसिद्ध थे। जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, वे राजनीति में भी पटु थे।

महाराज प्रतापसिंहजी ने स्वयं बहुत से नए ग्रंथों की रचना तो की थी ही, इसके सिवा बहुत से ग्रंथ आपकी आज्ञा से भी बने थे। फारसी 'आईने-अकबरी' और 'दीवाने-हाफिज' आदि का हिंदी में अनुवाद हुआ। इन्होंने ज्योतिष मे 'प्रताप-मार्त्तंड' ('जातक-ताजक-सार') आदि ग्रंथ बनवाए एवं धर्म-शास्त्र के ग्रंथों का भी संग्रह और अनुवाद कराया जिनमें 'धर्म-जहाज' प्रसिद्ध है।

"महाराज की आज्ञा से विश्वेश्वर महाशब्दे नामक विद्वान् ने 'प्रतापार्क' नामक धर्मशास्त्र का उपयोगी ग्रंथ बनाया था। इस ग्रंथ में महामहिम पुंडरीक याजि 'रत्नाकर'जो के निर्मित प्रसिद्ध ग्रंथ 'जयसिंह-कल्पद्रुम' से बहुत कुछ सहायता ली गई थी। उक्त ग्रंथ महाराज सवाई जयसिंहजी की आज्ञा से वि० सं० १७७० में निर्मित हुआ था। यही ग्रंथ वि० सं० १८८२ में बंबई के वेंकटेश्वर प्रेस में मुद्रित हुआ। पुंडरीक रत्नाकर का गंगाराम उसका रामेश्वर और उसका विश्वेश्वर था। यह 'प्रतापार्क' ग्रंथ जयपुर महाराज की प्राइवेट लाइब्रेरी में विद्यमान बताया जाता है और इसका उल्लेख अलवर के ग्रंथालय में भी है जैसा कि पीटर पीटर्सन साहब के तैयार किए हुए अलवर के ग्रंथों की सूची से प्रकट होता है।" (Catalogue of the Sanskrit mss in the Library of His Highness the Maharaja of Alwar, by Peter Peterson, Bombay, 1892. A. D.).

महाराज ने पहले 'प्रताप-सागर' नाम का वैद्यक-ग्रंथ, बहुत से सिद्धांत-ग्रंथों की सहायता से, अनुभवी विद्वानों द्वारा प्रस्तुत कराया, फिर हिंदी में उसी का अनुवाद करवाया जो 'अमृत-सागर'

---

* यह नोट हमको राजकीय पंडित नामावल कथा भट्ट पंडित नंदकिशोरजी साहित्य-शास्त्री रिसर्चस्कॉलर से प्राप्त हुआ। तदर्थ उन्हें हार्दिक धन्यवाद है।

नाम से प्रसिद्ध है। यह भारत-विख्यात वैद्यक-ग्रंथ है। संगीत के तो आप मानों आचार्य ही थे। आपके ही उत्साह से "राधा-गोविंद-संगीत-सार" नाम का विशद ग्रंथ, सात अध्यायों में, बना जिसकी जोड़ का हिंदी भाषा में, इस विषय का, दूसरा ग्रंथ नहीं है। यह मुद्रित रूप में 'जयपुर पब्लिक लाइब्रेरी' में भी विद्यमान है, परंतु अशुद्ध छपा है। आप ही के समय में कवि राधाकृष्ण ने 'राग-रत्नाकर' बनाया जो बहुत सुंदर छोटा सा संगीत का रीति-ग्रंथ है और छप भी गया है। आपके संगीत के उस्ताद बुधप्रकाशजी* ने संगीत का एक उत्तम ग्रंथ 'स्वर-सागर' बनाया जिसमें बहुत बढ़िया चीजें लिखी हैं। ये महाशय अपने समय के अद्वितीय संगीत-कोविद थे।

उक्त 'बुधप्रकाश' कलावंत की 'सरगम' और 'चीज' का एक एक नमूना यहाँ दिया जाता है—

राग कल्याण (ताल सुर फाखता)

धम्म गम गैरे गमरे गरेसा। धानीरेसा। प प ध सारें।
सारेंगम रेंगरेसा। धानीरेसा॥ धम्म ... .. ॥ स्थायी॥
प प ध सारे, सारेंगम, रेंगरेसा। धानीधमगरेंगम, रेंगनीरेसा।
सुच्छम सुरन सोध मध सरगम बनाय,
पाय गुरन तें भेद, कर कर 'बुधप्रकास'।
रिझवन कारन अति प्रवीन परताप सारक
सकल बरण षट्-दरसन निवास॥

चीज, पद, राग हमीर (ताल सुर फाखता; ध्रुपद)
"पाँचबदन सुखसदन पाँच त्रैलोचन मंडित।
अरधचंद्र अरु गंग जटन के जूट घुमंडित॥

---

* 'बुधप्रकाश' पदवी महाराज प्रतापसिंहजी की दी हुई है। इनका असल नाम चाँदखाँ, उपनाम दूलहखाँ था और गान-विद्या के आचार्य और महाराज के उस्ताद थे। इनके वंशज जयपुर में विद्यमान हैं। ये सेनिया हैं।

भूषन भस्म भुजंग नाद नादेश्वर पंडित।
कनक-भंग में मगन अंग आनंद उमंडित॥
बाघंबर अंबर धरे अरधांग गौरि कुंदन-बरन।
जय कीर्त्ति-उजागर गिरि-बसन बुधिप्रकाश वंदित-चरन॥ १॥"

'अमृतरामजी' पल्लीवाल ने, जो बड़े ही भगवद्भक्त और कवि थे, 'अमृत-प्रकाश' नाम का पद-ग्रंथ बनाया। 'बखतेश' कवि (ठाकुर बखतावरसिंह) के टकसाली पदों का संग्रह बहुत उत्तम है। महाकवि 'राव शंभूरामजी', महाकवि गणपतिजी 'भारती', गुसाईं 'रसपुंजजी', 'रसरासजी', 'चतुर-शिरोमणिजी' और तत्कालीन वे कवि वा भक्त आदि जिनके पद संग्रह में हैं बड़े बड़े कवि थे। 'नवरस', 'अलंकार-सुधानिधि' आदि 'भारती' जी के बनाए हैं। 'हजारों' का संग्रह भी मुख्यतया इन्हों ने किया था।

महाराज ने जो कई हजारे संग्रह कराए उनमें 'प्रताप-वीर-हजारा' और 'प्रताप-सिंगार-हजारा' मिलते हैं।

आपके समय में इमारतें भी बहुत बनी थीं, उदाहरणार्थ चंद्रमहल में कई विशाल भवन, रिधसिधपोल, बड़ा दीवानखाना, श्री गोविंदजी के पिछाड़ी का हौज, हवामहल, श्री गोवर्धननाथजी का मंदिर, श्री व्रजराजविहारीजी का मंदिर, ठाकुर श्री व्रजनिधिजी का मंदिर, श्री प्रतापेश्वरजी महादेव का मंदिर, खास महलों से हवामहल तक सुरंग, श्री मदनमोहनजी का मंदिर इत्यादि। जयपुर के यंत्रालय की मरम्मत भी हुई। किलों की मरम्मत कराई गई और नई तोपें इत्यादि बनवाई गईं। 'हवामहल' की कारीगरी संसार में प्रसिद्ध है। हवामहल पर आपका प्रेम था। इसके निर्माण में आपकी भगवद्भक्ति भी कारणीभूत थी, जैसा कि आपने "श्रीव्रजनिधि-मुक्तावली" में लिखा है—

"हवामहल यातें कियो, सब समझो यह भाव।
राधे कृष्न सिधारसी, दरस परस के हाव॥"

महाराज को भगवद्भक्ति का चसका लगानेवालों में प्रधान 'जगन्नाथ भट्ट' थे जिनकी स्तुति में आपने लिखा है—

"मैं कहौं कहा अब कृपा तुम्हारी।
याहि कृपा करि गुर मैं पाए जगन्नाथ उपकारी॥
जातें मेरी लगन लगी है ताकौ देत मिला री।
"ब्रजनिधि" राज सांवरो ढोटा ताकौ दिए बता री॥ १३१॥"

—हरि-पद-संग्रह

तथा

"सोभित उदार × × ×
× × × ×
भव-निधि-तारन कौं भट्ट जगन्नाथ भए,
इहि कलि माहिं सुक मुनि के स्वरूप हैं॥ २८॥"

—हरि-पद-संग्रह

भट्टजी की रचनाएँ भी सुंदर और भक्ति-रस-पूर्ण होती थीं। इनके सिवा 'बंसीअली', 'किशोरीअली' आदि भक्ति-रस-पीयूष को बहानेवाले और विद्वान् भी थे।

चारणों में भी कई कवि, क्या सवाई माधवसिंहजी के समय में और क्या पृथ्वीसिंहजी तथा प्रतापसिंहजी के समय में, ख्याति को प्राप्त हुए हैं। इनमें चार चारण कवि—(१) सागर, कविया गोत के सेवा-पुरे के, (२) हुकमीचंद, खिड़िया गोत के भडेडिया गाँव के, (३) महेश-दास, महडू गोत के और (४) हरिदास, भादा गोत के—बहुत प्रसिद्ध थे, जिनको इन राजाओं से जीविकाएँ मिली थीं। हुकमीचंदजी डिंगल के गीत कहने में अद्वितीय थे। उन्होंने हाथियों की लड़ाई पर एक चमत्कार-पूर्ण सरस डिंगल गीत बनाकर महाराज प्रतापसिंहजी को समर्पित किया था। पाठकों के मनोरंजनार्थ वह आगे दिया जाता है—

गीत जात सपंखरो

दुत्ता तावीसा खूटिया अग्रधारा सा छूटिया डाँणाँ ।
भत्तारोश तारा सा तूटिया गैण भाग ॥
आहुडंता चौड़ै पव्वे काला नत्ता आहूटिया ।
पत्ता छत्रधारी वाला जूटिया पनाग ॥ १ ॥
जोमहूँ प्रियाणां लागा सुंडा डंडाँ ऊछाजता ।
बोमहू विलागा विहूँ गाजता वंबाड़ ॥
पैंडा रोसलागा नीर श्रद्रसा बहंता पट्टाँ ।
बैंडा जोस वागा वीरभद्र सा बेछाड़ ॥ २ ॥
ह्वै रहाँ रचाका भेड़ा भचाका असुंडाँ हूँत ।
पवेड़ा मचाका हूँत ऊचाका पयाल ॥
अनम्मी ओनाड़ जम्मी दूठाड़-नरेस-वाला ।
दुगम्मी पहाड़ काला भूटक्के दंताल ॥ ३ ॥
दूठता दुधारा दाव रहाँ ह्वै करहाँ दहूँ ।
ऊठताँ लोयणाँ चहूँ मारा भीम आग ॥
बेछंगी अकारा रोस रूठता निघात वागा ।
बेढीगारा मर्दाधारा वूठता वज्राग ॥ ४ ॥
भम्मै लोहलंगराँ रटीठाँ आघ सझाँ भालाँ ।
असुंडा नत्रीठाँ चल्लै चरक्खी भाराँण ॥
मातंगाँ अफेर पीठाँ मजीठाँ रदक्का मातो ।
आकारीठाँ महाधीठाँ गरीठाँ आराँण ॥ ५ ॥
कोहजुद्धाँ माच निरातालां सा झपेटा करे ।
हद्दाँ नाग काला सा लपेटा करै हाथ ॥
चक्खाँ झाला ताता तेज तारा सा विछूटा चौड़े ।
भद्रजाती जूटा भूप पता रा भाराथ ॥ ६ ॥

कोप अंगां रंगां राहरूत सा बिछूटा किना।
पनगा पूत सा जूटा प्याला हाला पाय॥
वेंडा जाड़ी जोड़ 'जञ्रदूत सा निघात वागा।
वज्र ताला तोड़ काला भूत सा बलाय॥ ७॥
चरक्खी हजारां हाक भालां डाक्दारां चल्लै।
खहंता अपारा रोस बजारां खातंग॥
घापूकारां बोल बोल फोजदारां नीठ घांघा।
महाजंग जैतवारां खंभारा मातग॥ ६॥ *

—कविवर हिंगलाजदानजी बारैठ सागर-वंशज कविया से प्राप्त

पूर्वोक्त 'सागरजी' के दृष्टकूट पद यहाँ उद्धृत करते हैं—

"हरि बिन पुते दुख सजनी री।
जग के दृग उडगनपति ग्रहन जु ता सम बीतत अह-रजनी री॥
मक्रकेत के बिसख दूनरथ ता नंदन को कटक कहाँ ही।
वाको नाँव उलटकर दै री जाको असहन सब्द सुनाँही॥१॥"

"जालंधर की बाला कानन दधसुत नहिँ पाऊँ।
मृगपति कुंजर बरन आदि की मिलन हेत देखत पछताऊँ†॥ २॥"

---

* इन हुकमीचंदजी चारण ने महाराज प्रतापसिंहजी की वीरता के वर्णन में युद्ध आदि के चित्रण के बहुत से छंद और गीत आदि बनाए हैं। तूँगा की लड़ाई, पाटण की लड़ाई, राजगढ़ की लड़ाई आदि पर 'निसाणी' छंद में डिंगल भाषा में वीररस-पूर्ण कविता की है। उसमें के कुछ छंद हमारे संग्रह में हैं।

† जग के दृग=सूर्य्य। उडगनपति=चंद्रमा। अह=दिन। रजनी= रात। मक्रकेत=कामदेव। बिसख=बाण, शर। दून=द्विगुण अर्थात् दश। दश के आगे रथ लगने से दशरथ हुआ। उनके नंदन रामचंद्रजी। उनका कटक=कपि। कपि का उलटा पिक (कोयल), उसका बोलना (विरह-दशा में) असह्य है॥ १॥ जालंधर असुर की बाला (स्त्री)

यह पद बहुत बड़ा है। परंतु स्थानाभाव से पूरा नहीं दिया जा सका।

इन्हीं सागरजी के दो-एक छंद और उद्धृत किए जाते हैं, जो उन्होंने महाराज माधवसिंहजी को सुनाए थे—

राम-कृष्ण-स्तुति

"चापधरन घनबरन अरुन-अंबुज-सम लोचन।
तेजतरन तमहरन करन मंगल दुखमोचन॥
गौतम-नार उधार तार जल उपल पार दळ।
नवग्रह-बंध बिदार मार दसकंध अंध खल॥
सतकोटि चरित मुनिबर कथिय गावत गान विरंच भव।
जिह लंक बिभीषन को,दई (वे) श्रीरघुनाथ सहाय तव॥ १॥"

"मोर-मुकुट-जुत लटक-चटक बनमाळ धरहिं अति।
गुंजावलि बहुधात चित्र-चित्रित बिचित्र गति॥
ललित त्रिभंगी रूप मधुर मुरलिका बजावत।
गान तान संगीत भेद अद्भुत सुर गावत॥
गोविंद ललित लीला-करन रास-समय आनंद-जुत।
श्रीकृष्णदेव रच्छा करहु नागर-नगधर-नंद-सुत॥ २॥"

हाथी-घोड़े का वर्णन

"कज्जलगिर सज्जल सुमेघ दिग्गजकुमार जनु।
निज सुभाव नाजुल्य चलत औधूत-पूत मनु॥
धत्त धत्त उनमत्त दत्तशिष ज्ञानरत्त वन।
नद सद गरजत सबद है रहभद घन॥

वृंदा। कानन=वन। इससे "वृंदावन" हुआ। दधसुत="चंद्र"। इनसे "वृंदावनचंद्र" हुआ। पुनः दधसुत=दही का सुत आज्य अर्थात् आज के दिन। मृगपति=सिंह, मयंद। कुंजर=गज। इन दोनों के आदि अच्छर म+ग से मग=रास्ता, बाट। अर्थात् वे न मिले तो बाट जोहते जोहते पछताती रहूँगी।

अति ही प्रचंड औघट बिकट जहँ देखे मृगपत डरत।
मदजुत गयंद मधुयंद दै श्रदतारन मद उत्तरत॥ ३॥"

"बखसत अस्व नवीन चपल द्युत मीन सुखंजन।
जरत जराव सुजीन रूप भूपन मन-रंजन॥
पच्छराव सम धाव चाव रंभागति लायक।
पुलित बेद बिधुकत अग ससस्व सहायक॥
तारन कविंद सारन गरज दुत बारन बार न लगत।
बाखान दान हिँदवान सिर महिमंडल जस जग मगत॥ ४॥"

—पूर्वोक्त कविवर हिंगलाजदानजी से प्राप्त

ग्राम दूधू के निवासी कवि और भक्त तिवारी मनभावनजी पारीक इतने काव्य-मर्म-वेत्ता थे कि एक बार जब किसी काव्य-ग्रंथ के कठिन स्थलों का अर्थ किसी से स्पष्ट न हो सका तब महाराज से किसी व्यक्ति ने अनुरोध किया कि वे इनसे पूछे जायँ। तुरंत दूधू के ठाकुरों को आज्ञा हुई कि वे उक्त कविजी को आदरपूर्वक बुला लावे। राज्य की ओर से रथ सवार और हरकारे, ठाकुरों के भले आदमी सहित, दूधू पहुँचे और इन्हें लिवा लाए। कविजी ने प्रथम तो महाराज को एक ऐसा छंद बनाकर सुनाया जिसे सुनते ही उनकी वास्तविकता का भान हो गया। फिर ग्रंथ और उसके कठिन स्थल कविजी को बताए गए। मनभावनजी ने कठिन स्थलों पर तुरंत विचार कर ऐसी सुदरता से उनका स्पष्टीकरण किया कि महाराज मुग्ध हो गए। तब महाराज ने मनभावनजी से कहा कि आप यहीं रहें, पर कविजी ने निवेदन किया कि आपकी आज्ञा का ही पालन किया जाता, बशर्ते कि ललीजी (सीताजी) के दर्शनों से वञ्चित रहना पड़े। कहते हैं कि श्री सीताजी उनको प्रत्यक्ष थीं। मनभावनजी को महाराज ने बहुत कुछ दान दक्षिणा देकर सम्मान-पूर्वक विदा किया। इनके बहुत से शिष्य थे। स्वयं दूधू के ठाकुर पहाड़सिंहजी, ठकुराइनें और

अनेक पुरुष, कवि और भक्त इनके शिष्य थे। इनकी कविता बहुत सरस और सुंदर होती थी। इनका कोई स्वतंत्र ग्रंथ तो उपलब्ध नहीं हुआ; पर फुटकर पद मिलते हैं। नमूना यहाँ देते हैं—

राग भैरवी (ताल झंप)

"सियाजू पै वार पानी पीवाँ।
जीवनजड़ी राम रघुवर की देखि देखि छबि जीवाँ॥
सुख की खान हान सब दुख की रूप-सुधा-रस-सींवाँ।
'मनभावन' सिया जनक-किशोरी मिली मुक्ति नहिं छीवाँ॥"

राग गौरी (ताल इकताला)

"सिया अँगन में खेलै, नूपुर बाजै रुनझुन रुनझुन।
डगमगात पग धरति अवनि पर सखि कर सो कर झेलै॥
विमलादिक सखि हाथ खिलौना, तोतलि बानी बोलै।
'मनभावन' सखि लाड़ लड़ावै रंभागति रस पेलै॥"

इसी प्रकार अनेक कवि और गुणी इनके समय मे हुए हैं। विस्तार-भय से यहाँ उनके संबंध में अधिक लिखना संभव नहीं।

जिस तरह बाह्य शत्रुओं को विजय करने का महाराज व्रजनिधिजी को वह युग प्राप्त था वैसे ही आभ्यंतर शत्रुओं (क्रोध आदि) को जातने, भगवान् की भक्ति करने और उत्तम पुरुषों और गुणियों के सत्संग का शुभ अवसर भी उन्हें प्राप्त था, जिसके लिये उनके हृदय मे सदा उमंग रहा करती थी। आप इतने बड़े भगवद्भक्त थे कि यदि **नाभाजी** आपके समय मे या आपके पश्चात् हुए होते तो **भक्तमाल** में आपका चरित्र वे अवश्य लिखते।

श्री राधा-गोविंदजो महाराज के चरणारविंदो में महाराज की अटल अनन्य भक्ति थी। उन्हीं की कृपा से आपको भक्ति का लाभ हुआ और उस भक्ति के उद्गार में अनेक ग्रंथों की रचना हुई। आप राधा-गोविंदजी को दंडवत् करते और दर्शनों के पीछे नित्य स्तुति या पद सुनाते,

जिनकी नित्य नई रचना स्वयं करते थे। विशेष अवसर और उत्सवों पर बहुत समारोह से आनंद का समाज कराते। रास और लीलाएँ कराते। कहते हैं कि श्री गोविंददेवजी आपको बाल-रूप और किशोर-रूप से प्रत्यक्ष दर्शन देते थे। आपके पदों से भी यह बात विदित होती है, जिनमें इस प्रत्यक्ष दर्शन का उल्लेख है। यथा—

रेखता

"गुलदावदी-बहार बीच यार खुश खड़ा था।
गुलजार गुल सनम की गुल से भी गुल पड़ा था॥
पोशाक रंग हवासि सज के धज का तड़तड़ा था।
पुखराज का भी जेवर नख-सिख अजब जड़ा था॥
वह नूर का जहूर अदा पूर लड़फड़ा था।
देखते ही मैंने जिसको पेन अड़बड़ा था॥
दिल का दलेल दिलवर दिल चोरने अड़ा था।
'ब्रजनिधि' है वोहीदधि पर छल-बल सों छक लड़ा था॥१६८॥"

—रेखता-संग्रह, पृ० ३७२

"अजब धज से आवता है सज सजे सुंदर।
चंद्रिका फहरात धुजा रूप के मंदर॥
चश्मों मारि गर्द करै खूब है हुदर।
'ब्रजनिधि' अदा भरा है बाहर भी और अंदर॥ ६२॥"

—रेखता-संग्रह, पृ० ३३६

"फरजंद नंदजी का वह साँवला सलोना।
सिर पर रँगीन फैंटा दिल का लिपट लगोना॥
महबूब खूबसूरत अँखियाँ हैं पुर-खुमारी।
अवरू-कमाँ से जाँ पर करता है तीर कारी॥
गल सोहै तंग नीमा बूटों की छवि है न्यारी।
बाँधा कमर दुपट्टा तहाँ बाँसुरी सुधारी॥

सोंधे सनी अतर से छुटि पेचदार जुल्फैं ।
आशिक चकोर अँखियाँ कहो कब लगावै कुल्फैं ॥
लटकीली चाल आवै गावै मजे की तानैं ।
'ब्रजनिधि' की अदा भारी जानैं हैं सोही जानैं ॥ ७३ ॥"

—रेखता-संग्रह, पृ० ३३६

कन्हड़ी ख्याल (जल्द तिताला)

"अब जीवन को सब फल पायो ।
मोहन रसिक छैल सुंदर पिय आय अचानक दरस दिखायो ॥
जो चित लगनि हुती सो भइ री सुफल करयो मन ही को चायो ।
'ब्रजनिधि' स्याम सलोना नागर गुन-मूरति हिय अतिहि सुहायो॥१८७॥"

—ब्रजनिधि-पद-संग्रह, पृ० २३५

"आजु मैं अँखियन कौ फल पायौ ।
सुंदर स्याम सुजान प्रान-पिय मोहि लखि सनमुख आयौ ॥
सब सखियन को देखत सजनी मो तन मृदु मुसकायौ ।
मेरे हिय को हेत जानिकै 'ब्रजनिधि' दरस दिखायौ ॥ ४६ ॥"

—हरि-पद-संग्रह, पृ० २६४

"जाकी मनमोहन दृष्टि परयौ ॥११३॥"

—ब्रजनिधि-पद-संग्रह, पृ० २१८

"वखत था वो अजब रोशन सनम निकला था खुश हँसके ॥१४०॥"

—रेखता-संग्रह, पृ० ३४६

"मेरी नवरिया पार करो रे ॥६५॥"

—ब्रजनिधि-पद-संग्रह, पृ० २१४

"जब से पीया है आसकी का जाम ॥१६५॥"

—हरि-पद-संग्रह, पृ० ३०४

किसी ऐसे अपराध के कारण कुछ वर्षों पीछे ये प्रत्यक्ष दर्शन बंद हो गए जिन्हें केवल महाराज जानते थे। उस समय

आप (महाराज) बहुत व्याकुल हुए। तब स्वप्न में आपको यह आज्ञा हुई कि "तू अपने प्रेम के अनुसार मेरी पृथक् प्रतिमा बना और महलों के समीप मंदिर बनाकर उसमें विराजमान करा, वहाँ तुझे दर्शन हुआ करेंगे।" अतः महाराज ने श्री ब्रजनिधिजी की श्याममूर्त्ति अपने पूर्ण प्रेम से बनवाई। कोई कोई कहते हैं कि मूर्ति का मुखारविंद अपने हाथ से कोरा। फिर मंदिर में पाटोत्सव की जो प्रतिष्ठा हुई उसका बड़ा उत्सव हुआ और 'दौलतरामजी' हलदिया के यहाँ प्रिया-प्रियतम (राधा-कृष्ण) का विवाह हुआ। अर्थात् उनके यहाँ जाकर ठाकुर श्री ब्रजनिधिजी का विवाह होने पर प्रियाजी मंदिर में पधारीं। बेटी के विवाह मे जितनी बातें आवश्यक होती हैं वे सब दौलतरामजी ने बड़े खर्च और उत्साह से कीं। और फिर सदा सब त्योहारों पर बेटी को जो वस्त्र, आभूषण, छप्पन भोग, छत्तीसों व्यंजन आदि भेजा करते हैं वे ही भेजते रहे। अद्यापि उनके वंशज तीजों का सिंजारा आदि मंदिर में भेजते हैं*।

श्री गोविंददेवजी को ब्रजनिधिजी महाराज ने स्वयं अपना इष्टदेव बताया है, जैसा कि इन छंदों से स्पष्ट विदित है।

बिहाग

"हमारे इष्ट हैं गोविंद।
राधिका सुख-साधिका सँग रमत बन स्वच्छंद॥

... .

हिये नित-प्रति बसौ 'ब्रजनिधि' भावती नँदलाल॥ १६३॥"

—हरि-पद-संग्रह, पृ० २६६

---

* विवाह के गायन और कवित्त के लिये देखिए, "हरि-पद-संग्रह" पृष्ठ २८८, कवित्त १३३-१३४ और "रेखता-संग्रह" पृष्ठ ३४०, रेखता ६७-६८।

पद

"जिनके श्री गोबिंद सहाई, तिनके चिंता करे बलाई।

... .

करुना-सिंधु कृपाल करहिं नित सब 'ब्रजनिधि' मनभाई ॥४२॥"

—हरि-पद-संग्रह, पृ० २६२

सोरठ

"गोविंददेव सरन हैा आयैा ॥ ४ ॥"

—ब्रजनिधि-पद-संग्रह, पृ० १६२

बिहाग

"बिपति-बिदारन बिरद तिहारौ।

....

हे गोविंदचंद 'ब्रजनिधि' अब करिकै कृपा बिघन सब टारौ ॥६०॥"

—ब्रजनिधि-पद-संग्रह, पृ० २१३

ललित

"गोबिंद-गुन गाइ गाइ रसना-सवाद-रस ले रे ॥१३०॥"

—ब्रजनिधि-पद-संग्रह, पृ० २२२

रेखता

"जिसके नहीं लगी है वह चश्म चोट कारी।

....

गोविदचंद 'ब्रजनिधि' की अर्ज सुनो प्यारे ॥ १६२ ॥"

—हरि-पद-संग्रह, पृ० २६६

पद

"गोविंद हैां चरनन कौ चेरैा ॥१८८॥"

—हरि-पद-संग्रह, पृ० ३०२

रेखता

"गोविदचंद दीदे अजब धज से आवता ॥३०॥"

—रेखता-संग्रह, पृ० ३१७

पद् (ताल जत)

"आज ब्रज-चंद गोविंद भेष नटवर धन्यो ॥१२७॥"

—ब्रजनिधि-पद-संग्रह, पृ० २२१

"ब्रजनिधि" उपनाम भी श्री ठाकुरजी का प्रदान किया हुआ है। महाराज ने इसी बात को इस प्रकार कहा है। यथा—

रेखता

"दिल तड़पता है हुस्न तेरे को।
कब मिलेगा मुझे सलोना स्याम॥
अब तो जल्दी से आ दरस दीजै।
जो इनायत किया है 'ब्रजनिधि' नाम॥१६९॥"

—हरि-पद-संग्रह, पृ० २०५

सोरठ (देव गधार धीमा तीत)

"साची प्रीति सों बस स्याम।

....

धरयौ 'ब्रजनिधि' नाम तौ अब लीजिए चित चोरि॥१६५॥"

—हरि-पद-संग्रह, पृ० २६७

सूची

ब्रजनिधि-ग्रंथावली

(१) प्रीतिलता

दोहा

गनपति सारद मानिकै, राधे पूजौं पाय।
कृष्णकेलि कोतिग[1] कहौं, ताकी कथा बनाय ॥ १ ॥

सोरठा

उलही[2] प्रीति-लता सु, इश्क-फूल सों डहडही।
देखत प्रान कता[3] सु, पेखत[4] ही जिय रह सही ॥ २ ॥

दोहा

चंपकली-कुंडनि अली, चली कुँवरि सुकुमारि।
इंदीवर[5]-दृग राधिका, न्हान कलिंदी वारि ॥ ३ ॥
तहँ मग[6] रोकि खरे रहे, कोटि-मार-सुकुमार।
चंद-बदन-छवि-छंद सों, भरे जु नंदकुमार ॥ ४ ॥
ठठकि रही कीरति-कुँवरि, करी सखिन सों मैन।
तिन-हिय-आसय जानि कै, कहे कृष्न सों बैन ॥ ५ ॥

---

(१) कोतिग = कौतुक। (२) उलही = उनई। (३) कता = कटना। (४) पेखत = देखत। (५) इंदीवर = नील कमल। (६) मग = मार्ग।

अथ सखिन को वचन प्यारे जू प्रति । यथा—

सोरठा

ठाढ़ी ठठकि कुमारि, यह ठठोल अब जिन करौ ।
ठगिया-रूप निहारि, ठाँम ठाँमि[1] ठाढो खरौ ॥ ६ ॥

यह सुनि प्यारे जू ने मार्ग तो दयो परंतु दुहूँ ओर प्रीति को अंकुर उदय भयो सो कहियतु हैं । यथा—

दोहा

अंकुर उमग्यौ प्रीति कौ, दुहूँ ओर बटवारि ।
भयौ पल्लवित तासु पल, को करि सकै निवारि ॥ ७ ॥
लगी प्रीति उघरन लगी, छिपै न क्योँ हूँ भाय[2] ।
तब सखि राधे सों कहत, वचन रचन सरसाय ॥ ८ ॥

अथ सखी को वचन प्यारी जू प्रति । यथा—

दोहा

झुकि झाँकति झिझकी करति, उझकि झरोखनि बाल ।
छिन लखि दृग उन मय भए, छके छबीले लाल ॥ ९ ॥
छाँह लखत चकृत भए, रहे जु रूप निहारि ।
छैला-नंद छके[3] हियें, रहत छाँह की लार[4] ॥१०॥

सोरठा

भयौ जु मन अब लीन, मीन बारि आधीन ज्यौं ।
प्रीति यहै गति कौन, छिन छिन मैं तन छीन ज्यौं ॥११॥
रसिक रासि कौ रूप, तूही कीरति-नंदिनी ।
रसिया ब्रज को भूप, करि किन सुख चै-चंदिनी ॥१२॥

---

(१) ठाँम ठाँमि = जगह रोककर । (२) क्यो हूँ भाय = किसी तरह । (३) छके = तृप्त हुए । (४) लार = तरफ ।

दोहा

चिबुक चटक सों अटकि पिय, चोप चौगुनी चाह।
चित सों चरचा आचरत, निकसत मुख तें बाह ॥ १३ ॥
कोकिल-बैनी कामिनी, कीरति-कुल-कन्यासु।
काम-केलि सौं कसि लिए, पिय सुख की धन्यासु ॥ १४ ॥
खूब खरी खूबी-भरी, खेलति गेंद सुबाल।
खिरकी खुलें निहारि मुख, खुसी भए लखि लाल ॥ १५ ॥
झझकि झझकि झझरिन[1] जहाँ, झाँकति झुकि झुकि झूमि।
झलहलती[2] झलकत झहाँ, झाँम झलाझल भूमि ॥ १६ ॥
जिगर-जँजीर जरी रहैं, जुलफों दे विच ऐंचि।
जाहर जालिम जगत मैं, जोर ज्यान कों खैंचि ॥ १७ ॥
ठुमक चाल ठठि ठाठ सों, ठेल्यौ मदन-कटक[3]।
ठुनक ठुनक ठुनकार सुनि, ठठके लाल झटक[4] ॥ १८ ॥
ललकि चलनि लहँगा-हलनि, डुलनि ललिन के जाल।
लाल बाल लखि लहरिया, लालन भए निहाल ॥ १९ ॥

यह सखी को बचन सुनि प्यारी जू उत्तर देति हैं। यथा—

दोहा

गुरजन की तरजन[5] बहुरि, कलुख लगें कुलकानि।
प्रीति-रीति मोहू हियें, पै किमि मिलौं सु आनि ॥ २० ॥

प्यारी जू को यह उत्तर सुनि प्यारे जू की सखी बहुरि प्यारी जू सों कहति है। यथा—

---

(१) झझरिन = झरोखे। (२) झलहलती = झलझलाती। (३) कटक = कटक, फौज। (४) झटक = झटका खाकर। (५) तरजन = फटकार।

दोहा

यह सुनि पीतम की सखी, बिरह-निवेदन कीन।
अकथ सुकाम-व्यथा कही, होय अधिक आधीन ॥ २१ ॥
हाय हाय मुख तें कढ़ै, आहि आहि हिय माहिं।
जाहि जाहि यह जिय रटै, रहैं दरस बिन नाहिं ॥ २२ ॥

सोरठा

अब सुधि लेहु सुजान, ब्रजनिधि बिलखत तुम सु बिन।
नाहिन चलैं पिरान, सो उपाय कीजै जु किन ॥ २३ ॥

सोरठा

अति उमगी री[१] आन, प्रीति-नदी सुअगाध जल।
धार माँझ ये प्रान, दरस-थाँग[२] बिन नाहिं कल ॥ २४ ॥
नैन निहारैं नाहि, तब लगि अँसुवनि झर लगै।
वह मूरति हिय माहि, बिन देखें पलक न लगै ॥ २५ ॥
वह मुख चद-समान, राति-द्योस हिय मे रहैं।
मिलिबो बनै न आन, यह अचिरज कासों कहैं ॥ २६ ॥

बरवै

राधा रूप-अगाधा, तुमहिं सुजान।
मोहन-मन की हुलसनि, करहु प्रमान ॥ २७ ॥

सोरठा

राधे सुख को सार, निरखत पिय गोहन[३] रहैं।
हिय बिच किएँ जुहार[४], अष्ट पहर तुमकों चहैं ॥ २८ ॥

दोहा

प्यारी प्यारी कहत हैं, ल्या री ल्या री ल्याव।
रहत बिहारी यौं सदा, हुस्न-पियाला प्याव ॥ २९ ॥

---

(१) उमगी=पैदा हुई, उमड़ी हुई। (२) थाँग=पता, सहारा, स्थान। (३) गोहन=साथ। (४) जुहार=प्रणाम।

ना री ना तू मति कहै, हाँ री हाँ तू चाल।
अरी आव अब देखि तू, मोहन कौन हवाल ॥ ३० ॥

सोरठा

नित हित चित के माहिं, लाल किसोरी रटतु हैं।
और न कछू सुहाहिं, राति-दिवस यों कटतु हैं ॥ ३१ ॥
विरह तपति संताप, कही नहीं अब जाय है।
प्रीति कौन यह पाप, कढ़े जु मुख तें हाय है ॥ ३२ ॥

दोहा

घूमत घायल से घिरे, घबराए घनस्याम।
घरी घरी घर घर फिरत, घोखत राधा-नाम ॥ ३३ ॥
नैन ऐन सर पैन से, सैन सरस मृदु हास।
बैन मैन सुनि चैन नहिं, रैन रहत नित त्रास ॥ ३४ ॥
टेढ़ी छवि टेरत रहैं, टाँक टाँक दिल टूक।
रहैं टकटकी टेरत नहिं, टिके न हिय में हूक ॥ ३५ ॥

सोरठा

टेरत राधा-नाम, टरे न मुख तें नेकहूँ।
टर्‌यो सबै विस्राम, टेढ़ी दृग-छवि कब लहूँ ॥ ३६ ॥

दोहा

डगर[1] डगमगे[2] डोलते, परी डीठि डहकाय।
निडर ढिठोना नंद के, डरे उठैं बरराय ॥ ३७ ॥

पुनि सखी सोनजुही[3] की अन्योक्ति करि प्यारे जू सों कहति है—

दोहा

सोनजुही तुव गुन बँध्यौ, रह्यौ भौंर मँड़राय।
छुटैं रसिक पुनि होयगो, उत गुलाब विकसाय ॥ ३८ ॥

---

(१) डगर=राह, रास्ता। (२) (ग) पु० में 'डग' के स्थान में 'डगर' पाठ भी है। डगमगे=डगमगाते हुए। (३) सोनजुही=पीत जुही।

यह सखी को वचन सुनि प्यारी जू ने मान कर्‌यो, तब सखी ने पुनि प्यारी जू सों कह्यो। यथा—

सोरठा

राधे भानु-किसोरि, तुम बिन लालन दृग भरत।
अब चितवो उन ओरि, बिरह-ताप में ही जरत॥ ३९॥
ढोलन आए आज, अब ढिग क्यों तुम चलत नहिं।
ढील करत बेकाज, ढीठपनो वो छाँड़ि कहि॥ ४०॥

दोहा

जिहिं जिहिं भाँतन जिय रख्यौ, जाहर सबै जिहान।
अब कहिए ज्यौंहीं करैं, मरजी जानि सुजान॥ ४१॥
फेल[1] कहूँ फबिहै नहीं, फैज[2] पाय सुनि बीर।
फिकरि राखि फुरमे कहा[3], तो बिन लाल अधीर॥ ४२॥
वेर[4] न कीजे बेग चलि, बलि जाऊँ री बाल।
वालम वाट[5] विलोकि तुव, विलखत विकल विहाल॥ ४३॥
भोर भए भामिनि-भवन, भोरी भानु-कुमारि।
भीने रस भरि भाव दृग, रहे मुरारि निहारि॥ ४४॥
मकर मति करि मानि मन, मेरी मति मतिभोर।
मोर-मुकट मुसकनि मटकि, लखि मनमोहन ओर॥ ४५॥
मधुप[6]-पुंज को गुंजरित[7], मुकुलित सुम[8] मधुमास[9]।
मान मति करै माननी, पिय सँग करहु विलास॥ ४६॥

---

(१) फेल=कार्य। (२) फैज=ध्यान। (३) फुरमे कहा=यहे क्या? थोड़ी देर में क्या? (४) वेर=देर। (५) वाट=पट्टा, रास्ता। (६) मधुप=भौंरा। (७) गुंजरित=गुञ्जरित, गुंजायमान। (८) सुम=कुसुम, सुमन। (९) मधुमास=चैत मास।

हाँ हँसि हँसि हाँ ही करौ, नाहिं नाहिं महिं हानि।
हरि हरखत हेरत हियें, हिरन-नैनि हित ठानि ॥ ४७ ॥
छिमा करौ अब छबिभरी, छोह करौ निरवार।
छके रूप छाए खरे, छैल छबीले ग्वार ॥ ४८ ॥
छंद भयौ तन निरखि कै, छले गए री हाल।
लाल माल गहि लें खरे, परे इश्क के जाल ॥ ४९ ॥

या भाँति सखी के मानमोचन के वचन सुनि के प्यारी जू कछुक मुसकाय अरु ललितादिक सखिन सों सैन करी जो तुम सामुहें जाय अरु प्यारे जू कों ल्यावो तब प्यारे जू आए जानि सखी पुनि प्यारी जू सों कहति है। यथा—

सोरठा

ललिता ल्याई लाल, लली लखौ पायनि परत।
भए गुपाल निहाल, अब नाहक[1] क्यों हठ करत ॥ ५० ॥

दोहा

प्यारी के अति प्यार सो, पिय परसत कर[2] पाय।
पीर प्रेम पहचानि कै, छिमा करी मुसुकाय ॥ ५१ ॥

या भाँति प्यारी प्यारे जू को परम सनेह अरु रहसि आनंद जानि सकल सखी फूलीं, सो कहियतु हैं—

दोहा

सखी सबै फूली फिरत, लखि ब्रजनिधि को नेह।
अद्भुत अकथ कथा कहैं, आनँद अधिक अछेह ॥ ५२ ॥

---

(१) नाहक = व्यर्थ। (ग) प्र० में 'आवे नाँ क्यूँ' पाठ है ('अब नाहक क्यों' के स्थान में)। (२) कर = हाथ।

अब भोर भएँ सखीजन प्यारी जू सों कहति हैं—

दोहा

फूली फूली फिरति री, फूले फूल निपुंज।
फली फली तो मन रली, फैली पायनि कुंज॥ ५३

अरस-परस बतरात सखि, सरस-सनेह निहारि।
तासु समय के सुख हु परि, बहुरि होत बलिहारि॥ ५४॥

रस-बस छकि दंपति दुहूँ, कीने विविध बिलास।
सो सुमरन करि करि बढ़ै, हिय मैं अधिक हुलास॥ ५५॥

या भाँति सखिनु कें परस्पर बतरावतहीं प्यारे जू की सखी प्यारी जू कौं दूजें बुलावन आई तब तो सखी सों प्यारी जू कहति हैं। यथा—

दोहा

अरगौ अचानक आइकै, अकुलानो सो आज।
ऐंच अकेले अति करी, अरी आव अब लाज॥ ५६॥

या भाँति प्यारी जू को बचन सुनि प्यारे जू की सखी माधवी लता की अन्योक्ति करि प्यारी जू सों ही कहति है। यथा—

दोहा

भरी माधुरी माधवी, लता ललित सुकुमार।
तऊ मुदित मन को करै, मिलै मधुप को भार॥ ५७॥

या भाँति प्यारे जू की सखी को बचन सुनि सुघर-सिरोमनि प्यारी जू अति आनंदित होय सकल सुखनिपुंज सघन निकुंज के महल में प्यारे जू भ्रमर गुंजित को सुख लूटति हैं। तहाँ मृदु मुसकाति पधारे अरु प्यारी प्यारे तो रहसि निकुंज के सुख मे हैं अरु बाहिर लाल जू की सखी प्यारी जू की सखीन सों प्यारे की प्रीति कहति हैं। यथा—

दोहा

लाल लगनि[1] की बात कछु, कहत कही नहिं जाय।
प्रान प्रिया को रूप लखि, मोहन रहे लुभाय ॥ ५८ ॥
दृष्टि परी संकेत[2] मैं, जब तें भानु-कुमारि।
बरसाने की ओर कौ, तब तें रहे निहारि ॥ ५९ ॥
चाह चटपटी मिलन की, लाल भए बेहाल।
बंसी मे रटिबो करैं, राधा राधा बाल ॥ ६० ॥
नीलंबर को ध्यान धरि, भए स्याम अभिराम।
पीतवसन धारे रहैं, प्रिया बरन लखि स्याम ॥ ६१ ॥
चलनि हलनि मुसकानि मैं, जहाँ जहाँ मन जाय।
फिर तन की सुधि नहिं रहै, सुधि आएँ कह हाय ॥ ६२ ॥
कहूँ लकुट कहुँ मुरलिका, पीतंबर सुधि नाहिं।
मोर-चद्रिका झुकि रही, प्रिया ध्यान मन माहिं ॥ ६३ ॥
गंगा-जमुना नाम कहि, बोलति गायनि[3] टेरि[4]।
राधे राधे बदन तें, निकसि जात तिहिं बेरि ॥ ६४ ॥
मोहन मोहे मोहनी, भई नेह बढ़वारि।
हा राधे हा हा प्रिया, कहत पुकारि पुकारि ॥ ६५ ॥

या विधि प्यारे जू की सखीनि को वचन सुनि प्यारी जू की सखी कहति हैं सो तुम कही सो साँच है अजहूँ प्रीति या विधि ही है। यथा—

दोहा

अलबेली राधा जहाँ, झमकि धरति है पाय।
रसिक-सिरोमनि स्याम तहँ, देत सु कुसुम बिछाय ॥ ६६ ॥

---

(१) लगनि = लगन (दिल की लगन)। (२) संकेत = बरसाने और नंदग्राम के बीच में एक ग्राम का नाम है एवं युगल प्रेमियों के मिलने का एकांत स्थान। (३) गायनि = गायों को। (४) टेरि = पुकारकर।

परसनि सरसनि अंग की, हुलसनि हिय दुहुँ ओर।
नैन बैन अँग माधुरी, लए चित्त वित[1] चोर॥ ६७॥
प्रिया-बदन-विधु तन लखे, पिय के नैन-चकोर।
रूप-रसासव[2]-पान करि,- छकि रहे नंदकिसोर॥ ६८॥

या भाँति प्यारी प्यारे को सरस सुख सखिन संवाद समुझिबे में अधिकारी होय सो उपाय कहियतु है—

दोहा

ब्रजनिधि के अनुराग मैं, जो अनुरागी होय।
करै चित्त उपदेस को, बड़भागी है सोय॥ ६९॥
निपट विकट जे जुटि रहे, मो मन कपट-कपाट।
जब खूटैं तब आपहीं, दरसैं रस की बाट॥ ७०॥
पूरन परम सनेह को, उमड़ि मेह बरसात।
अनुरागी भीज्यौ रहत, छिन छिन हित सरसात॥ ७१॥
प्राननि तें प्यारो लगै, दंपति-सुजस-बखान।
अधिकारी विरलो अवनि[3], रुचे न रस बिन आन॥ ७२॥
कपट लपट झपटैं तहाँ, कलह कुमति की बारि।
काम धाम रचि आपनी, सुरति लीजियत मारि॥ ७३॥
गौर स्याम सुखदान हैं, श्री वृंदावन माँझ।
जे या रस नहिं जानहीं, तिनकी जननी बाँझ॥ ७४॥
चच्छु[4] सुच्छु[5] नाहिन प्रभु, तुच्छ रूप रह लागि।
मोर-पच्छ-[6]धर पच्छ[7] धरि, ब्रजनिधि मैं अनुरागि॥ ७५॥

---

(१) वित=दौलत। (२) रूप-रसासव=रूप-रस का आसव (मदिरा विशेष)। (३) अवनि=पृथ्वी। ४—चच्छु=चक्षु, नेत्र। ५—सुच्छु=स्वच्छ, साफ। ६—पच्छ=पक्ष, पख। ७—पच्छ=पक्ष, ओर, तरफ।

कसौ कसौटी तासु की, जो कसनी ठहराइ।
खोटे खरे जु मनधरे, त्यागैं बिरद लजाइ ॥ ७६ ॥

या भाँति आपके चित्त को समुझाय अरु प्रभु सों बीनती कीजियति है। यथा—

दोहा

गुन को ओर[1] न तुम बिखैं, औगुन को मो माहिं।
होड़[2] परसपर यह परी, छोड़ बदी है नाहिं ॥ ७७ ॥

या भाँति प्रभु सों बीनती करि ग्रंथ को नाम अरु फल कहियतु है। यथा—

सोरठा

प्रीतिलता यह ग्रंथ, प्रेम-पंथ चित परन को।
लाभ होत अतिअंत[3], कृष्न-किसोरी-चरन को ॥ ७८ ॥

बहुरि निज नाम संतनि सों सलाह जहाँ ग्रंथ प्रगट भयो ताको नाम कहियतु है। यथा—

दोहा

मति-माफिक गुन गायकैं, पते[4] कियो यह ग्रंथ।
रहसि उपासक रसिकजन, संतनि-प्रेम सुपंथ ॥ ७९ ॥

भूल्यो चूक्यो होहुँ सो, लीज्यौ संत सँवारि।
गीति राधिका-रमन की, प्रीति-रीति परिपारि ॥ ८० ॥

सुखद सवाई जयनगर, कियौ ग्रंथ-परकास।
सुभ-आनँद-मंगल-करन, उलहत हियें हुलास ॥ ८१ ॥

---

(१) ओर = अत। (२) होड़ = बदाबदी। (३) अतिअंत = अत्यंत। (४) पते = प्रतापसिंह (ग्रंथकार)।

दोहा

अष्टादस चालीस अठ, संबत चैत जु मानि।
कृष्न पच्छ तिथि त्र्योदसी[1], भौमबार जुत जानि ॥ ८२ ॥

इतिश्रीमन्महाराजाधिराज महाराज राजेंद्र श्रीसवाई
प्रतापसिंहदेव-विरचितं प्रीतिलता संपूर्णम्

शुभम्

---

(१) (ग) पु० में 'ग्यारसी' पाठ है। परंतु ज्योतिषगणना से चैत कृष्ण तेरस को मंगलवार होना चाहिए। इस कारण यही पाठ शुद्ध समझा है, जो ऊपर में रखा गया है।—संपादक।

(२) सनेह-संग्राम

कुंडलिया

राधे बैठी अटरियाँ, झाँकति खोलि किवार।
मनौ मदन-गढ़ तें चलीं द्वै गोली इकसार॥
द्वै गोली इकसार आनि आँखिन मैं लागीं।
छेदे तन-मन-प्रान कान्ह की सुधि-बुधि भागीं॥
व्रजनिधि[1] है बेहाल विरह-बाधा सों दाधे[2]।
मंद मंद मुसकाइ सुधा सों सींचति राधे॥ १॥

राधे चंचल चखनि के कसि कसि मारति बान।
लागत मोहन-दृगन मैं छेदत तन-मन-प्रान॥
छेदत तन-मन-प्रान कान्ह घायल ज्यों घूमैं।
तऊ चोट कौ चाउ धार सौं घावहि तूमैं[3]॥
सुभट-सिरोमनि धीर बीर 'व्रजनिधि' कौ लाधे[4]।
याही तैं निसि-द्यौस करति कमनैती[5] राधे॥ २॥

राधे घूँघट-ओट सौं चितई नैक निहारि।
मनौ मदन-कर तैं चली गुप्ती की तरवारि॥
गुप्ती की तरवारि डारि घायल करि डारयौ।
व्रजनिधि ह्वै बेहाल परयौ नैननि कौ मारयौ॥

---

(१) (ख) पुस्तक में कहीं 'वृजनिधि' कहीं 'व्रजनिधि' पाठ है।
(२) दाधे=जलाए। (३) तूमना=घाव का टाँका लगाना, रफू करना।
(४) लाधे=राधे, साधे। '(राध साध संसिद्धौ)। (५) कमनैती=
कमानगर का काम, तीरंदाजी।

उठत कराहि कराहि कंठ गदगद सुर साधे।
अध अध आधे बोल[1] कहत मुख राधे राधे ॥ ३ ॥
राधे घूँघट दूर करि मुरि कै रही निहारि।
मानौ निकसी म्यान तैं सीरोही[2] तरवारि ॥
सीरोही तरवारि वार ब्रजनिधि पै कीन्हौं।
मुसकनि-मल्हिम[3] लगाय घाव सावत करि दीन्हौं ॥
फिरि फिरि करि करि मार सार करि फिरि फिरि साधे।
टरत न अपनी टेक करत अद्भुत गति राधे ॥ ४ ॥
राधे निपट निसंक ह्वै चितै रही करि चाव।
मानौ काम कटार लै कियौ कान्ह पै[4] घाव ॥
कियौ कान्ह पै घाव पाव[5] ठहरन नहि पाए।
गिरे भूमि पै भूमि प्रान आँखिन मैं आए ॥
टौना[6] टामन मंत्र-जंत्र सब साधन-साधे।
ब्रजनिधि कौ बेहाल करत डरपत नहि राधे ॥ ५ ॥
राधे दग-बरुनीन[7] की करद[8] चलाई चाहि।
लागी ब्रजनिधि के हिये रहे कराहि कराहि ॥
रहे कराहि कराहि लगी इक आहि आहि रट।
बढ़ी अटपटी पीर धीर तजि घूमि रह्यौ घट[9] ॥
मुख तें कहत न बैन[10] नैनहूँ उघरत आधे।
ऐसे ऐसे काम करन लागी अब राधे ॥ ६ ॥

---

(१) (ख) पुस्तक मे 'आधे आधे बोल' पाठ है। (२) सिरोही (राजपूताना) की तलवार प्रसिद्ध है। (३) मल्हिम=मरहम, मरहम। (ख) मलम। (४) (ख) 'परि'। (५) पाव=पाँव, पैर। (६) टौना टामन=टोना टोटका। (क) पुस्तक में "टोना"—यह पाठ ठीक नहीं। (७) बरुनीन=पलकों की। (८) करद=मूठ। (९) घट=हृदय। (१०) (ख) पु० मे "मु बैन"।

भौंहैं बाँकी बाँक सी[1] लखी कुंज की ओट।
समर-सख-बिछुवा लग्यौ लालन लोटहि पेट॥
लालन लोटहि पेट चोट जब्बर उर लागी।
कियो हियो दु:सार पीर प्राननि मैं पागी॥
ब्रजनिधि बाँके बीर खेत मैं खरे अगौहैं[2]।
तहाँ घाव पर घाव करतिँ राधे की भौंहैं॥ ७॥

चाली[3] मृदु मुसुकाइ कै भानु-नंदिनी भोर।
मनौ तमंचा मदन कौ लाग्यौ मोहन-वोर[4]॥
लाग्यौ मोहन-वोर सोर करने नहिं पाए।
तन-मन भए सुमार प्रान आँखिन मैं आए॥
भूले सुधि-बुधि-ज्ञान-ध्यान सौं लागी ताली।
ब्रजनिधि कौ यह[5] हाल देखि वेहू नहिं चाली॥ ८॥

नेजा से नैनान सौं कियौ राधिका वार।
अक-बक ह्वै जकि-थकि रहे ब्रजनिधि नंदकुमार॥
ब्रजनिधि नंदकुमार मार सहिबे मैं गाढ़े।
इत उत कितहुँ न जात रहत रुख सनमुख ठाढ़े॥
हियो भयौ दु:सार करेजा रेजा रेजा।
तौऊ चित मैं चाह लगै नैनन के नेजा॥ ९॥

बाँकी भौंह-गिलोल[6] सौं छुटे॰ गिलोला[7] नैन।
ब्रजनिधि मद गजराज के छूटि गए सब फैन॥

---

(१) बाँक=छोटी छुरी जो बनावट में खमदार होती है। बाँक की फेँक प्रसिद्ध है। इसको बिछुआ भी कहते है। (२) अगौहैं=आगे (खड़े) है। (३) चाली=चली। (४) वोर=उर, हृदय। (५) (क) पु० मे 'इह'। (६) गिलोल=गुलेल। (७) गिलोला=गुल्ला, बड़ी गोली।

छूटि गए सब फैन सीस कौ धुनि वे लाग्यौ।
बँध्यौ ठान[1] मैं आय पाय डग[2] बेड़ी पाग्यौ॥
अब नहिं छूट्यौ जात घाव ऐसी इहिं घाँकी।
कहिए कहा बनाय बात राधे की बाँकी॥ १०॥

राधे सूधे दृगन सौं चितई करि अभिमान।
निकसे मनौ कमान तैं नावक के से बान॥
नावक के से बान मैन खरसान सुधारे।
अंजन-विष मैं बोरि किए दुहुँ ओर दुधारे॥
ब्रजनिधि पिय-हिय पार भए उर उरके[3] आधे।
नैनन के नटसाल[4] रंग सौं राखति राधे॥ ११॥

खंजर[5] से नैनान की निपट अनोखी नोक।
कहा जिरह बखतर कहा कहा ढाल की रोक॥
कहा ढाल की रोक झोंक है इनकी बाँकी।
लगी कान्ह कैं प्रान स्यान भूले सब घाँकी[6]॥
बार बार के वार भयो अति जर्जर पंजर।
ब्रजनिधि कौ यह[7] सूल फूल से लागत खंजर॥ १२॥

राधे गावति सखिन मैं ऊँचे सुर सौं तान।
गरब भरौ गहक्यौ गरौ[8] मानौ कुहक्यौ बान॥
मानौ कुहक्यौ बान कान्ह सुधि-स्यानप भूले।
काँपन लग्यौ सरीर नीर सौं नैना भूले॥

---

(१) ठान = थान, स्थान। (२) डग बेड़ी = पैर की बेड़ी। (३) (ख) पुस्तक में 'उरझे'। नावक के तीर में यही पाठ ठीक है जो शरीर में घुसकर उरझ (अटक) जाता है। (४) नटसाल = खटका। (५) (ख), (ग) पुस्तकों में, 'खंजन' पाठ असंगत है, क्योंकि रूपक पत्ती से नहीं बनता, न 'पंजर' से अनुप्रास होता है। (६) सब घाँकी = सब जगह की। (७) (क) पुस्तक में 'इह'। (८) (ग) में 'हियो' पाठ है, जो ठीक नहीं है।

लगी एक रट आहि चाहि-दारू सौं दाधे।
ब्रजनिधि सौं करि हेत खेत मैं राखति राधे ॥ १३ ॥
राधे पहिरति कंचुकी उघरे उरज उदार।
ब्रजनिधि पीतम पैं मनौ कीनौ गुरज[1]-प्रहार ॥
कीनौ गुरज-प्रहार मार तन-मन मैं आयौ[2]।
भरे नीर सौं नैन वैन बोलत बहकायौ ॥
परयौ भूमि पै घूमि भूमि दृग खोलत आधे।
करि करि रस मैं[3] रोस मसोसनि मारति राधे ॥ १४ ॥
राधे नृत्यहि करति है सब सखियन लै संग।
व्यूह रच्यौ मानौ मदन करन कान्ह सौं जंग ॥
करन कान्ह सौं जंग बान तानन कै चाले।
हाव-भाव की तेग तुजग[4] के खडग निकाले ॥
नेजा-नैन सुमार पार ह्वै निकसे आधे।
नित प्रति[5] हित की रारि करति ब्रजनिधि सौं राधे ॥ १५ ॥
राधे ब्रजनिधि मीत पै हित के हाथन[6] तूठि[7]।
पखुरी खोलि गुलाब की डारति भरि भरि मूठि ॥
डारति भरि भरि मूठि छूटि छररा ज्यौं लागत।
सबही अंग अनंग पीर प्रानन मैं पागत ॥
बिसरि गयौ चित चैन नैन हूँ उघरत आधे।
प्रीतम की गति देखि हँसति घूँघट करि राधे ॥ १६ ॥

---

(१) गुरज=गुर्ज, गदा। (२) (ख) पुस्तक में 'छायौ' पाठ है। (ग) पुस्तक में 'ढायौ' पाठ है। (३) (ग) पुस्तक में 'मन मैं' पाठ है। (४) (ख) पुस्तक में 'तुजक' (=दबदबा, रोब) पाठ मिलता है। (५) (ग) पुस्तक मे 'प्रीतहि' पाठ है। (६) (ग) पुस्तक में 'हाथहि' पाठ है। (७) तूठि=तुष्ट होकर।

राधे निरखति चाँदनी पहिरि चाँदनी-वस्त्र।
बदन-चंद्रिका[1]-चाँदनी चतुरानन कौ अस्त्र[2] ॥
चतुरानन कौ अस्त्र-सस्त्र यह मैन[3] चलायौ।
ब्रजनिधि पिय की ओर आइ कै[4] जोर जनायौ ॥
भयौ कंप सुरभंग अंग सीतल ह्वै[5] दाधे।
छाय गयौ मन मोह छोह करि हरखति[6] राधे ॥ १७ ॥

राधे कर चकरी लिए फेरति सहज सुभाय।
ब्रजनिधि प्रीतम के दगनि लग्यौ चक्र सो आय ॥
लग्यौ चक्र सो आय ऐंड़[7] कौ मूँड़ उड़ायौ।
धीरज हू कौ अंग चूर करि धूरि मिलायौ ॥
कटौ[8] लाज की फौज रीझि कै साधन साधे।
प्रान करत बलिहार हारकरि हरखति[9] राधे ॥ १८ ॥

लट्टुवा फेरत राधिका करि करि ऐंड़ अपार।
लागत मोहन मीत कै मुगदर की सी मार ॥
मुगदर की सी मार मार मारत है मन कौ।
गौरव कौ गिरि फोरि चूर करि डारयौ तन कौ ॥
ब्रजनिधि नेह-निधान निपट नव-नागर नट्टुवा।
रह्यौ रीझि मैं भूमि भूमि घूमत ज्यौं लट्टुवा ॥ १९ ॥

राधे आज उमंग सौं सजे सलौने अंग।
मानौं मैन-महारथी चढ़्यौ करन रस-रंग[10] ॥

---

(१) (ग) में 'चंद' का पाठ उत्तम है। (२) चतुरानन कौ अस्त्र-सस्त्र=ब्रह्मास्त्र। (३) "मैन"=मदन, कामदेव। (४) (ग) 'आपको'। (५) (ग) "कै"। (६) (ग) में 'राखत' पाठ है। (७) ऐंड़=ऐंठ, अभिमान, मरोड़। (ग) में 'ऐंठ' पाठ ही है। (८) (ग) में 'कढ़ौ' पाठ है। (९) (ख) और (ग) में 'राखत' पाठ है। (१०) (ग) में 'रनरंग' पाठ है।

चढ़्यौ करन रस-रंग दंग ब्रजनिधि कौ कीन्हौ।
चंचल नैन तरंग[1] दौरि घेरा सो दीन्हौ॥
गाढ़े उरज उतंग दुरद[2] ज्यौं सनमुख साधे।
मेट्यौ[3] ग्यान गुमान कान्ह कसि राख्यौ राधे॥ २०॥

राधे उघटत[4] परमलू[5] प्रगटत अदभुत ओप[6]।
नैन-फिरंगी की मनौं छूटन लागी तोप॥
छूटन लागी तोप रूप कौ दारू भभक्यौ।
जगी[7] जामगी तालवेलि कौ गोला तमक्यौ॥
लग्यौ कान्ह कैं[8] आनि तथेई ताथेइ ताधे[9]।
ब्रजनिधि कौ चित चूर चूर करि डार्‌यौ राधे॥ २१॥

राधे ऊँची बाँह करि गही कदम की डार।
ब्रजनिधि प्रीतम पै मनौं कीन्हौ परिघ[10]-प्रहार॥
कीन्हौ परिघ-प्रहार चित्त चूरन करि डार्‌यौ।
कियौ प्रान कौ पर्ब गर्ब गुन गौरव गार्‌यौ॥
चलन न पायौ पैंड़ पलक हूँ[11] पकरत[12] आधे।
रोकि आपनी मैंड़ ऐंड़ सौं उमड़ी राधे॥ २२॥

राधे जलक्रीड़ा करति लिए सहचरी संग।
गुन जोवन[13] छवि सौं छकी छीटैं छिरकत अंग॥

---

(१) (ग) में 'तुरंग' पाठ है और 'दौरि' के स्थान में 'डारि' है। (२) दुरद=हाथी। (३) (ग) 'पेख्यो'। (४) (ग) में 'उच्छरत' पाठ है। (५) परमलू=परिमल। (६) (ख) में 'चोप' पाठ है। ओप=उपमा, सुंदरता, उजास, प्रावताप। (७) (ग) 'जमी'। (८) (ख) 'कान मैं'। (९) ताधे=तातायेई, नृत्य-विशेष। (१०) परिघ=वज्र। (११) (ग) में 'ऊ' पाठ है। (१२) (ग) में 'उघरत' पाठ है। (१३) (ख) में 'जु वदन' पाठ है। (ग) में 'जुवन' पाठ है।

छाँटैं छिरकत अंग रंग के उठत भभूके[1] ।
मनमथ-गोलंदाज मनौं सो कररा[2] फूके ॥
लगे दृगनि मैं आनि प्रान बाधा सौं बाँधे ।
व्रजनिधि भए अधीर वीरता राखति राधे ॥ २३ ॥
राधे सज्यौ गुमान गढ़ रुपी रूप की फौज ।
ताकि ताकि चोटैं करत उदभट सुभट मनौज ॥
उदभट सुभट मनौज औज अपनौ विसतारयौ ।
व्रजनिधि बुद्धि-निधान कान्ह अवसान[3] सँवारयौ ॥
सनमुख दियो सुरंग उडे[4] पन[5]-पाहन[6] आधे ।
निकसी खोलि किवारि रारि करिवे कौ राधे ॥ २४ ॥
नेही व्रजनिधि-राधिका दोऊ समर-सधीर ।
हेत-खेत[7] छाँड़त नहीं छाके बाँके वीर ॥
छाके बाँके वीर हथ्थ बथ्थन भरि जुट्टे ।
दोऊ करि करि दाउ घाउ[8] छिनहू नहि छुट्टे ॥
यह सनेह-संग्राम सुनत चित होत विदेही[9] ।
पता[10] पते की बात जानिहैं सुघर सनेही ॥ २५ ॥
संवत अष्टादस सतक बावन्ना सुभ वर्ष[11] ।
सुखद जेठ सुदि सप्तमी सनिबासर जुत हर्ष ॥

---

(१) (ख) 'भभूखे'। (२) कररा=गर्रा, गिराब, छर्रा। (३) अवसान=होश। (४) (ग) में 'उदे' पाठ है। (५) पन=प्रण, पैंठ, बल। (६) पाहन=पत्थर। यहाँ सुरंग शब्द दो अर्थ का है। अच्छा रंग और बारूद की सुरंग। (७) हेत-खेत=प्रीति-संग्राम। (८) (ख) 'घाव'। (९) (ग) 'सनेही'। (१०) पता=प्रताप, अंधकार। (११) संवत् १८५२ विक्रमी। यही भर्तृहरि के शतकों के अनुवाद की समाप्ति का संवत् है, केवल मिती का अंतर है—"संवत अष्टादस सतक पावन्ना सुभ वर्ष। भादौं कृष्ना पंचमी रच्यौ ग्रंथ करि हर्ष।" अर्थात् ३॥ मास पीछे।

सनिवासर जुत हर्ष लग्न है सानुकूल सब।
ब्रजनिधि श्री गोविंदचंद के चरनन सौं ढब॥
जयपुर नगर मुकाम चंद्रमहलहिं अवलंबत।
भयो सुग्रंथ प्रतच्छ सुच्छता पाई संवत॥ २६॥

इति श्रीमन्महाराजाधिराज महाराज राजेंद्र श्री
सवाई प्रतापसिंहदेव-विरचितं सनेह-
संग्राम संपूर्णम् शुभम्

(३) फाग-रंग

दोहा

राधा भव-बाधा हरौ, साधा सुरनि-समाज।
सोई मुद-मंगल करहु, सहित सदा ब्रजराज ॥ १ ॥

अथ प्यारी जू को वचन सखी सों—

दोहा

फागुन मास सुहावनौ, ब्रजनिधि आए होत।
नतर[1] कुलाहल करत हैं, भौंर-भौंर[2] पिक[3]-गोत ॥ २ ॥
फाग मास सबतें सरस, अहि[4] ही-सुख को सार।
प्यारे या सम होत नहिं, मान हिए अति हार ॥ ३ ॥

सोरठा

द्रुम नव पल्लव लागि, फूल खिले बहु भाँत के।
रस ऊमल[5] तन जागि, आगि मदन की गात के ॥ ४ ॥

कवित्त

फूली बन-बेली औ गुलाब की सुगंध फैली,
फैल्यौ है पराग बन-उपवन माहीं है।
कोकिल की कूक सुने हिये माँझ हूक उठैं,
गुंजरत भौंर कुंज नाहिं मन भाहीं हैं ॥
प्रीतम विदेस सुधि अजहूँ लौं लई नाहिं,
बचिवौ नहीरी ब्रजनिधि जू सहाही है[6]।

---

(१) नतर=निरंतर। (२) भौर-भौर=भौंरो के झुंड। (३) पिक-गोत=कोकिल-कुल। (४) (ग) 'अति'। (५) (ग) 'उजल'। (६) (ग) 'जहाँ ब्रजनिधि मान रहत तहाँ ही है'।

आयो रितुराज तौहू कंतहू न आयौ तातें[1],
जानी वह देस मैं[2] बसंत रितु नाहीं है ॥ ५ ॥

दोहा

कहत कहत ही सखिन सों, आय गयौ ब्रजराज।
दुहूँ ओर ह्वैवे लगे, फाग-विहार-समाज ॥ ६ ॥

सोरठा

छैल छबीले रूप, छकिया फाग-विहार के।
सोहत सरस अनूप, ब्रजनिधि रस सुख सार के ॥ ७ ॥

दोहा

उत नव नागरि राधिका, छैल छबीली सोय।
फाग-रंग रस-रंग मैं, तासम और न कोय ॥ ८ ॥

वहाँ प्यारी जू सखी सों कहति हैं—

दोहा

लाज-पाज[3] सब तोरि कै, अब खेलौंगी फाग।
छैल छबीले सों दुसौ, प्रगट करौं अनुराग ॥ ९ ॥

कवित्त

बहुत दिनानि सों री आस लगी मन माहिं,
त्रास गुरजन की सों नाहिं सरै काज है।
लगनि लगी है आनि प्यारे ब्रजनिधि सों री,
फाग मे करेंगे बहु रंग सों समाज है॥
डफहि बजावैं मिलि सुघर बेतान गावैं,
मन-फल पावैं तोरि डारी कुल-पाज है।

---

(१) (ग) मे 'आयो रितु-कंत तजि कंत नहिं, आयो यातें' पाठ है।
(२) (ग) मे 'जानी वह देस मैं' की जगह 'वाही देश माहीं री' पाठ है।
(३) पाज=पाँजर।

लाज सब भाज गई नेकु संक नाहिं रही,

मान-दसा दाबि लई भई रितुराज है ॥ १० ॥

दोहा

उत मग जमुना को रह्यौ, रोकि साँवरेगात ।

रंग चंग में अति करैं, गारि देत अवदात ॥ ११ ॥

कवित्त

मान खरो है चित कपट धर्‌यौ है नाहिं,

कोऊ सो डर्‌यौ है आनि अर्‌यौ है प्रभात ही ।

मनहि चुरावै नैन नैननि मिलावै वाको,

थाहहू न पावै स्याम रंग सब गात ही ॥

डफहि बजावै अति गारि गीत गावै,

दौरि इतही को आवै ब्रजनिधि ग्वाल जात ही ।

कैसे कै धरौं री धीर गैलन कलिंदी-तीर,

कहा करौं वीर हाथ धोय पर्‌यौ सात ही ॥ १२ ॥

दोहा

यह कहि प्यारी के बढ़्यौ, फाग खेलिवे चाव ।

चंदन - चोवा - अरगजा, लाल - गुलाल बनाव ॥ १३ ॥

सवैया

होरी के खेलन कौ इक गोरी गुव्यंदजू[१] की अभिलाख कर्‌यौ करै ।

लाल-गुलाल धरे भरि थारनि केसरि-रंग के माँट भर्‌यौ करै ॥

नेह लग्यौ ब्रज की निधि सौं नित लंगरि[२] सास की त्रास डर्‌यौ करै ।

नंदकुमार के देखन कौ वह नौल[३] वधू चकरी[४] लौं फिर्‌यौ करै[५] ॥१४॥

---

(१) गुव्यंदजू = गोविंदजी । (२) लंगरि = निरंकुशा । (३) नौल = नवल, नवीन । (४) चकरी = चकई, फिरकी । (५) (ग) में 'करे' के स्थान में 'करि' पाठ है ।

दोहा

सब गोरिनु[1] के चाव यह, आयो फागुन मास।
ब्रजनिधि अंक-भराभरी, करिहैं सहित हुलास ॥ १५ ॥

सवैया

चित चाव यहै नव गोरिन के, भरिहैं नँदलाल कौ फागन मैं।
ब्रज की निधि अंक निसंक भराभरी, आज लिख्यौ बड़भागन मैं ॥
सब ठानत खेल, पै कोऊ न जानत, लौंगर छैल की लागन मैं।
रस होरी के खेलन को 'सुखपुंज'[2], छयौ ब्रजराज के आँगन मैं ॥१६॥

दोहा

चंग-रंग अतिही बढ़्यौ, पुनि मुरली-धुनि कीन।
ब्रज-वनिता सुनि फाग कौं, क्यो न होय आधीन ॥ १७ ॥

कवित्त

आयो रितुराज ब्रजराज[3] के विहार हेत,
फूली नववल्ली रुचि जानि स्याम पी की है।
सजि ब्रज-सुंदरी बिहारी जू सों होरी खेलैं,
गावैं गीत गारी बानी मधुर अमी की है ॥
उड़त गुलाल अनुराग-रंग छाई दिस,
सब मनभाई भईं ब्रजनिधि ही की है।
नूपुर-निनाद कटि-किंकिनी की नीकी धुनि,
चंगनि की गाजनि बजनि मुरली की है ॥ १८ ॥

दोहा

पाटम्बर-पहल माँची सखी, कुंज-महल के बीच।
होरी गोरी स्याम के, ह्वैहै कुंकुम-कीच ॥ १९ ॥

---

(१) [illegible]) में 'गोरिन' पाठ है। (२) महाराज के पास 'सुखपुंज' जी [illegible] थे। (३) (क) 'ब्रज मनके'।

कवित्त

सवै सौंज[1] होरी की सुधारि धरी सखियनि,
विवस भए हैं लाल रस-वस प्यारी सों।
आनँद-उमंग मैं छक्यौ है ब्रजनिधि छैल,
राते मन माते रहै रूप-उजियारी सों॥
कोकिला कुहूकैं ठौर ठौर अंब-मौरन पै,
आयो रितुराज हित जीवनि जिवारी सों।
कुंज के महल मांझ चहल-पहल मची,
खेलत किसोरी होरी रसिक-विहारी सों॥ २० ॥

दोहा

कीरति-जा की ग्वालिनी, नंदगाँव मधि जात।
ब्रजनिधि संगी ग्वाल वहि, दियो रंग भरि गात॥ २१ ॥

कवित्त

नंदगाँव आई एक सखी वृषभानुजा की,
फाग-मत्त ग्वाल वाकी खोइ डारी लाज है।
यहै भनकार सुनि चली लली कीरति की,
धूमधाम भारी परी अद्भुत समाज है॥
दुहूँ ओर सोर जोर सब्द यह छाय रह्यौ,
जीत्यौ साथ लाड़िली को कीने मन-काज है।
घुघरि उड़ी है औ गुलाल घुमड़ी है,
घटा रंग की चढ़ी है आज घेरे ब्रजराज है॥ २२ ॥

दोहा

आप रँगीले रँग भरे, लिए रँगीली बाल।
रंगभरी सब गोपियाँ, रंग-मत्त ही ग्वाल॥ २३ ॥

---

(१) सौंज = सामग्री।

भौन कौन रहि सकत तहँ, ब्रज-बनिता ब्रज-बाल।
चित्त चोरि चित मैं चुभ्यौ, चहुँ दिस स्याम-तमाल॥ २४॥

सोरठा

फाग मच्यौ ब्रज माहिं, रंग समाजहि अति मच्यौ।
मुरली मधुर बजाहिं, चित चोरत घर घर नच्यौ॥ २५॥

दोहा

रूप-रंग की चढ़ि घटा, रिझवै नंदकुमार।
फगुवा लै मनभावतौ, कौतिक करै अपार॥ २६॥

कवित्त

चाँचरि मचावैं ब्रजनिधि ही रिझावैं,
तीखीताननि सुनावैं मन भरी हैं उमंग की।
सैननि चलावैं बैन सुधा से सुनावैं,
मनमथहि जगावैं बाल उरज उवंग की॥
सती समनावैं रमा रमक न पावैं,
सची मेनका न भावैं राधे अंगनि सुढंग की।
मोहन लुभावैं मनभावन घुमावैं,
रस-धार बरसावैं चढ़ी घटा रूप-रंग की॥ २७॥

दोहा

कुंज-महल मैं सहल ही, लीजे नंद-किसोर।
मुख माँजौ आँजौ नयन, रंग-चंग करि घोर॥ २८॥

कवित्त

ठाढ़ो री अकेलो नंदलाल अलबेलो छैल,
छल सों अर्‍यौ है आनि मारग सहल मैं।
करती विचार कहा सबै सुखसार पायौं,
सौतिन सुहायौ दरसायौ सो महल मैं॥

नेकहू न डरै गुरजन क्यौं न लरै अब,
अंकनि में भरैं फाग-चहल-पहल मैं।
आज भाग जागे मन लागे रसपागे लाल,
चलि लै चली री रंग-कुंज के महल मैं ॥ २९ ॥

दोहा

होरी कहि दौरी फिरैं, गोरी व्रज की बाल।
भरी कमोरी केसरनि, झोरी लाल गुलाल ॥ ३० ॥

कवित्त

उड़त गुलाल औ अबीर भरि झोरी सबै,
उमगी फिरत उर आनँद न मायो है।
केसरि के रंग बोरी गोरी अरगजे होरी,
होरी होरी[1] कहि कहि अति रंग छायो है॥
नीकी फाग रचिकै दुलारी वृषभानजू की,
व्रजनिधि घेरि लियो कियो चित चायो है।
आयो सुख फागन सुहाग भरी नेहनि कौं
लाल-संग जागन सुभागन सों पायो है[2] ॥ ३१ ॥

दोहा

उतै लाल लै ग्वाल सँग, आए अद्भुत दौरि।
बरजोरी होरी समै, करैं सु बाँह मरोरि ॥ ३२ ॥

कवित्त

लैकै सब ग्वाल संग आयो साँवरो री दौरि,
कर पिचकारी भरो केसरि-कमोरी हैं।
डफ के समूह बाजैं गारी दै दै सबै गाजैं,
नाहिं कोऊ आज लाजै घेरि ली किसोरी हैं॥

---

(१) (ग) में ('होरी होरी कहि कहि' के स्थान में) 'हो हो करि होरी गोरी' पाठ है। (२) (ग) में यह पाठ है—"अंजन अँजायो गाल गुलरा दिवायो लाल, जान नहिं पायो बड़े भागन सों पायो है।"

ब्रजनिधि प्यारो यो सुजान हे री बटपारो,
करि झकझोरी मेरी बहियाँ मरोरी हैं।
हा हा मोहि जान देहु दैया अब कहा करौं,
होरी नाहिं हे री मो सों करैं बरजोरी हैं[1] ॥ ३३ ॥

दोहा

दुहूँ ओर होरी मची, पिचकारिनु की धार।
तिय गुलाल सों लाल को, मुख माँड्यौ करि प्यार ॥ ३४ ॥

सवैया

माँची है होरी दुहूँ दिस तैं पिचकारिनु रंग इते उन छाँड्यौ।
धाय गह्यौ ब्रज की निधि कौ मुरली लई छीनि पिया रस डाँड्यौ ॥
जीत्यौ लड़ेती को संग गुपाल सों गारो दई भँडुवा कहि भाँड्यौ।
भानु-कुँवारि लै लाल गुलाल सों प्यार सों लालन को मुख माँड्यौ ॥३५॥

दोहा

इत केसरि-पिचकी उतै, पुनि गुलाल-घुमड़ानि।
तारी दै दौरी तिया, तुरत तजी कुल-कानि ॥ ३६ ॥

कवित्त

रसभरी होरी बरसाने की गलिनु मची,
उत नंदलाल इत भानु की दुलारी हैं।

---

(१) (ग) में पूरे छंद का यो पाठ है—
"लेके सब ग्वाल संग आयो वह साँवरो री,
कर पिचकारी ले करत बरजोरी है।
डफ के समूह बाजैं गारी दै दै सबै गाजैं,
नाहीं कोऊ नैक लाजै हो हो कहि होरी है ॥
ब्रजनिधि राधे जू पै मृगमद घोरि डार,
प्रानप्यारी ।केसर ।कमोरी भरि बोरी है।
मोरी हू किसोरी गोरी रोरी रंग बोरी तब,
मची दुहूँ ओर · ·· झकाझोरी है" ॥ ३३ ॥

केसरि-कमोरी गोरी ढोरैं लाल-अंग पर,
　　उतैं ग्वाल-मंडल तें छूटैं पिचकारी हैं॥
अबिर गुलाल की घुमड ब्रजनिधि छए,
　　हो हो होरी कहत हँसत देत तारी हैं।
गावैं गीत गारी चदमुखी जुरि आईं सारी,
　　रबि न निहारी तिन लाज पाज डारी हैं॥ ३७॥

दोहा

धुंघरि लाल गुलाल मैं, प्यारी पकरै लाल
चंपक की बल्ली मनौ, लपटो स्याम तमाल॥ ३८॥

सवैया

आई असंक ह्वै होरी को खेलन गोरी सबै गुनवारे गुपाल सों।
बूकी[1] अबीर उड़ैं दुहुघाँ[2] ब्रज की निधि अंबर[3] छायो गुलाल सों॥
मोहन कौ गहि गोहन लागी अचानक आय गए छल-ख्याल[4] सों।
रंग-रँगीली सु चंपक वेलि मनो लपटी नव स्याम तमाल सों॥ ३९॥

दोहा

लाल गुलाल दसों दिसा, सबकी दीठि[5] निवारि[6]।
छैल छबीलो तहँ भरै, प्यारि कौ अँकवारि[7]॥ ४०॥

कवित्त

फागुन मैं फाग अनुराग छायौ ब्रजभूमि,
　　उमड़ि घुमड़ि झुंड धायौ ब्रज-गोरी कौ।
स्याम के सखान पै अबीर औ गुलाल डारै,
　　लालन के अंग लपटावैं रंग रोरी कौ॥

---

(१) बूकी=बुक्का, अबरक का चूरा। (२) दुहुघाँ=दोनों ओर। (३) अंबर=आकाश। (४) छल ख्याल=छलछंद, धोखा। (५) दीठि=दृष्टि। (६) निवारि=निवारण करके, बचाकर। (७) अंकवारि=अंक में भरना, हृदय से लगाना।

भरनि-भरावनि मैं भावती के भावन मैं,
गारी-गीत-गावनि मैं बँध्यौ प्रेम-डोरी कौ।
छवि सों छबीलो ढुरि ढुरि अँकवारि भरैं,
करैं बहु खेल ब्रजनिधि छैल होरी कौ ॥ ४१ ॥

दोहा

ब्रज-वनिता बौरी[1] भईं, होरी खेलत आज।
रस ढोरी दौरी फिरत, भिंजवति हैं ब्रजराज ॥ ४२ ॥

सवैया

होरी समै इक ठौरी भई रस-फाग की लाग लगी नव गोरी।
गोरी गुलाल लिए भरि झोरी धरी भरि केसरि, रंग कमोरी ॥
मोरी मुरै नहिं दौरी फिरै गुनवारे गुपाल के रंग मे बोरी।
बोरी सी ह्वै कै लगी उत ढोरी मची ब्रज की निधि सों रस-होरी ॥ ४३ ॥

दोहा

प्यारी-प्यारे के भई, होरी नंद-अगार।
ब्रजनिधि ने फगुवा[2] दयो, आप होय बलिहार ॥ ४४ ॥

सवैया

होरी को ख्याल मच्यौ महराने[3] महा मुद बाढ़्यौ दुहूँ दिस भारी।
केसरि-रंग भरे घट लाखन छूटति हैं छबि सों पिचकारी ॥
लाल गुलाल छयो नंदगाँव अबीर घुमंड भरे अँकवारी।
लाल गुपाल दयो फगुवा[4] ब्रज की निधि ऊपर ह्वै बलिहारी ॥ ४५ ॥

---

(१) बौरी = बावली, पगली। (२) फगुवा = होरी खेलने के अनंतर नायक अपनी नायिका को साड़ी, मिठाई आदि भेजता है। इस सामग्री को फगुआ कहते हैं। (३) महराने = मेहराना एक ग्राम का नाम है, जो बरसाने के पास है। (ग) ('महराने' के स्थान में) 'महरान'। (४) (ग) में चतुर्थ पाद के पूर्वार्द्ध का पाठ यों है—"बाल झुके झुकके उझके"।

सोरठा

चवदा[1] ही सब लोक, नौछावरि ब्रज पर करौ।
फाग अनोखी नोक, और न याके सम धरौ[2] ॥ ४६ ॥

कवित्त

बिधि बेद-भेदन बतावत अखिल विस्व,
पुरुष पुरान आप धारयौ कैसो स्वाँग बर।
कइलासबासी उमा करति खवासी दासी,
मुक्ति तजि कासी नाच्यौ राच्यौ कैयो राग पर ॥
निज लोक छाँड्यौ ब्रजनिधि जान्यौ ब्रजनिधि,
रंग रस बोरी सी किसोरी अनुराग पर।
ब्रह्मलोक वारौ पुनि शिवलोक वारौ और,
विष्णुलोक वारि डारौं होरी ब्रज-फाग पर ॥ ४७ ॥

सोरठा

फाग-बिहारहि होत, ब्रज सोभा पाई महाँ।
ब्रज-मंडल नहिं होत, फाग-केलि होती कहाँ ॥ ४८ ॥
यह आयौ रितुराज, सबै काज मन के सरैं।
डफ मुरली धुनि गाज, ब्रजनारिनु के मन हरैं ॥ ४९ ॥

दोहा

पता[3] यहै बरनन करयौ, पिय-प्यारी कौ फाग।
सो सुमिरन करि करि बढ़ै, हिये माँझ अनुराग ॥ ५० ॥

---

(१) चवदा = चौदह। चौदहों लोक ब्रज पर निछावर कर दो। यह अर्थ है। (२) (ग) में 'करौ', 'धरौ' की जगह 'करें', 'धरे' पाठ है। (३) पता = प्रतापसिंह।

फाग-रंग को जो पढ़ै, ताके बढ़ैं उमंग।
ब्रजनिधि निधि ताकौ मिलैं, सकल सिद्धि ही संग ॥ ५१ ॥
संवत अष्टादस सतक, अड़तालिस बुधवार।
फागन सित की सप्तमी, भयो ग्रंथ अवतार ॥ ५२ ॥
पढ़े कढ़ैं पातक सकल, बढ़ै जु प्रेम-उमंग।
ग्रंथ कियौ जयनगर मैं, **फाग-रंग** रस-रंग ॥ ५३ ॥

इति श्रीमन्महाराजाधिराज महाराज राजेंद्र श्री सवाई
प्रतापसिंहदेव-विरचितं फागरंग संपूर्णम्
शुभम्

(४) प्रेम-प्रकास

दोहा

चित गनपति बुधि सारदा, कृष्न जानि सिरताज।
मति मेरी तैसो कियौ, सफल भए सब काज ॥ १ ॥
सुख-आनँद-मंगल-करन, सदा करत प्रतिपाल।
निहचै करि भजि लेहु तुम, ब्रजनिधि-रूप रसाल ॥ २ ॥
नेही जन जे बावरे, तिनके कछु न विचार।
जो तरंग मन मैं उठै, सोई करैं उचार ॥ ३ ॥

अथ सखी सीख।

दोहा

उझकि झरोखनि झाँकिए, झञ्झरिन हूँ नव बाल।
लाल लट्टू[1] ह्वै जाइँगे, तुव लखि रूप रसाल ॥ ४ ॥

तहाँ राधा उत्तर।

दोहा

कहि न सकौं कैसी करौ, दई नई यह रीति।
घर गुरजन लखि पाइहैं, ब्रजनिधि हिय की प्रीति ॥ ५ ॥
नेह-रीति है अटपटी, कोऊ समुझै नाहिं।
जो न करै सोही सुखी, करै सु दुख ही वाहि ॥ ६ ॥
देखि दुखी पीछैं दुखी, नित ही दुखिया सोय।
विधिना सौं विनती यहै, मिलि बिछुरन नहिं होय ॥ ७ ॥
चित्त चटपटी करि गए, ब्रजनिधि रूप दिखाय।
जहँ तहँ उनहीं को लखौं, और न कछू सुहाय ॥ ८ ॥

---

(१) लट्टू = लट्टू, मोहित। लट्टू होना ब्रजभाषा का मुहावरा है।

अब सखी राधा सों कहति है—

दोहा

बात झूठ तू कहति है, अब नहिं मानत लाल।
साँच जहाँ राचै सही, यहै लाल की चाल॥ ९॥

यह सुनि प्यारी जू ने मान कर्यौ। तब सखी पुनि कहति हैं—

सोरठा

व्रजनिधि चतुर सुजान, उनसों कबहुँ न तोरिए।
वेही जीवन - प्रान, कोरि[1] भाँति करि जोरिए॥१०॥

दोहा

हे राधे अब मान कौ, मोहिं करौ बकसीस।
कहा चूक प्यारे करी, तापर इतनी रीस॥ ११॥
हाय हाय मुख तें कढ़ै, परे इस्क के घाव।
मल्हम यहि सहि जानियो, मोहन दरस दिखाव॥ १२॥
परे परे सिसक्यौ करैं, प्रान इस्क को पाय।
नैनन तें झरना झरैं, टरै न मुख तें हाय॥ १३॥

सोरठा

लगनि लगी री बीर, उठी तपति है अगनि सी।
नहिं जानो यह पीर, इस्क-फंद में आ फँसी॥ १४॥
कहा करौं री बीर, पीर उठी अति मरम की।
लगे नैन के तीर, बंक कटाछैं स्याम की॥ १५॥
यहै इस्क की रीति, ऊँच नीच कछु देखनी।
भई स्याम सो प्रीति, लोक-लाज सब छेकनी॥ १६॥
चित्त धरै नहिं धीर, अँसुवन अँखियाँ झर लग्यौ।
व्रजनिधि है बेपार, मन तो उनके रँग पग्यौ॥ १७॥

---

(१) कोरि=कोटि, करोड़।

लगनि लगी री आनि, नंद-नँदन सों रुचि बढ़ी।
भावैं खान न पान, अँखियनि-रह[1] सूरति चढ़ी ॥ १८ ॥
बिसराई सुधि देह, ब्रजनिधि बिन देखें अरी।
नैननि लाग्यौ मेह, चित मैं वह मूरति खरी ॥ १९ ॥
वहै मंद-मुसकानि, आनि हिये के बिच लगी।
अविहि रसीली तान, लई मुरलि मैं रसपगी ॥ २० ॥
चित कौ कियौ कठोर, हे मोहन तुमहूँ अबै।
कौलहु[2] किए करोर, सो साँचो करिहौ कबै ॥ २१ ॥
पलकन हूँ नहिं देखि, दसा पिया बिन यह करी।
चात्रक[3] के ज्यों लेखि, स्वाति-बूँद ही की अरी ॥ २२ ॥
कहि न जात सुनि वीर, मन तो ब्रजनिधि ले गयौ।
अब छिनहूँ नहि धीर, टोना सो कछु करि गयौ ॥ २३ ॥

दोहा

दई निरदई कह करी, नेह-नगर की रीति।
फिरि फिरि वाही मारिए, करे जु चित सों प्रीति ॥ २४ ॥
सूकि गयौ लोहू सबै, नीर दृगनि अति आत।
प्रान नहीं नारी चलैं, अचिरज की यह बात ॥ २५ ॥
इस्क यहै सबतें बुरौ, करौ न कोई भूल।
प्यारे की यह भेंट मैं, सिर देनो है मूल ॥ २६ ॥
अरी भटू[4] हिय ह्वै[5] लट्टू, खाय रह्यौ चकफेर।
ब्रजनिधि मन कौ लै गयौ, नेक न लागी बेर ॥ २७ ॥

---

(१) अँखियनि-रह = आँखों की राह से। (२) कौल = वादा। (३) चात्रक = चातक। (४) भटू = भामिनी, सखी। (५) (ग) 'के'।

सोरठा

लगी चटपटी अंग, कोटि जतन सों ना मिटै।
करि ब्रजनिधि को संग, बेदन यह जब ही कटै॥ २८॥
दैया री यह बानि, इन नैननि मैं आ परी।
बिन देखें अकुलानि, ब्रजनिधि की मूरति अरी॥ २९॥
लगी लगन अब आय, ब्रजनिधि प्यारे सों सही।
बिन देखें अकुलाय, चित्त धरत धीरज नहीं॥ ३०॥

दोहा

तब तें नैननि वह अरयौ, सुंदर स्याम सुजान।
टोना सो मो पै करयौ, तजी सबै कुल कान॥ ३१॥

सोरठा

निपट अटपटी बात, सुनौ सखी अब मैं कहूँ।
प्रान चले ही जात, प्रेम-पीर कब लग सहूँ॥ ३२॥
अरी अनोखी पीर, बीर धीर मन नहिं धरै।
ब्रजनिधि है बेपीर, परि उन बिन छिन हु न सरै॥ ३३॥
रहत जु नैन-चकोर, चौंकत से उतही सदा।
ब्रजनिधि ही की ओर, निरखि रहे वाकी[1] अदा॥ ३४॥
भए प्रान आधीन, लीन दीन ब्रजनिधि महीं।
भई मीन गति कीन, दरसन बिन जीहै नहीं॥ ३५॥

कुंडलिया

राजत बंसी मधुर धुनि मनमोहन की आन।
सुनत थकित चकृत[2] रही अद्भुत अविही तान॥
अद्भुत अविही तान प्रान छिन मैं बस कीने।
बाजत ताल मृदंग बीन अति ही रस भीने॥

---

(१) (ग) 'वाही'। (२) चकृत = चकित।

नूपुर धुनि झंझनत ततत् तत्थेई गाजत।
ब्रजनिधि रास-विलास रसिक वृंदावन राजत ॥ ३६ ॥

सोरठा

वह लटकीली बानि, आनि हिये के बिच गड़ी।
वहै मंद मुसकानि, उर तें नहिं काढ़त कढ़ी ॥ ३७ ॥
वृंदावन के बीच, कीच रूप को अति मच्यौ।
ब्रजनिधि सुख सो सींच, रास रसिक अद्भुत नच्यौ ॥ ३८ ॥
ह्वै गइ चित्र सरीर, अरी वहै छबि निरखि कै।
तबतें नैनिन नीर, खरी रहैं नित खरिक[1] कै ॥ ३९ ॥
बाढ़ी प्रेम-घटानि, नैन सीर[2] को झर लग्यौ।
चात्रक प्रान छुटानि, यहै अनोखो रँग पग्यौ ॥ ४० ॥

दोहा

यह सुनि सखि हरि पै गई, नेक न करी अबार[3]।
चेतु मार उत प्रीति कौ, भाररु मार सुमार ॥ ४१ ॥

अथ सखी-बचन प्यारे जू प्रति।

सोरठा

रहत अचैंको चित्त[4], नितही ध्यान सु रावरो।
अब मन लीनो जित्त[5], भयौ प्रीति सों बावरो ॥ ४२ ॥
बिसराई सुधि देह, अजू पियारे तुम बिना।
नयो भयौ यह नेह, गेह न भावत निसदिना ॥ ४३ ॥
प्रीतम तुमरे हेत, खेत न तजिहैं प्रीति कौ।
प्रान काढ़ि किन लेत, तजिहैं पै भजिहैं नहीं ॥ ४४ ॥

---

(१) खरिक=खिरक। (२) सीर=नीर, आंसू। (ग) 'तीर'। (३) अबार=विलम्ब। (४, ५) इस दोहे में ('चित' और 'जित्त' की जगह) 'चीत' और 'जीत' पाठ होता तो ठीक होता।

मुकट मोर पखवानि, बंसी बाजत अधरकर।
लोक-लाज कुल-कानि, छाँड़त स्रवननि सुनत ही ॥ ४५ ॥
छिनक उठे बरराय, हाय हाय मुख तें कहै।
कासों कही न जाय, अब औरै नहिं रँग चढ़ै ॥ ४६ ॥
सुनिहौ चतुर सुजान, किरपा कीजै आनि अब।
क्यों न दीजिए दान, प्रान आप बस होहिं कब ॥ ४७ ॥

दोहा

आनँद की निधि साँवरो, सकल सुखनि कौ दानि।
जिहि तिहि विधि कीजै सदा, ब्रजनिधि सों पहचानि ॥ ४८ ॥

सोरठा

यह सुनि चतुर सुजान, कुंज-भवन संकेत किय।
पिय प्यारी सु अचान, सुरति सकल सुख लूटि लिय ॥ ४९ ॥

दोहा

उठि बैठे सुख-सेज पै, भोर भए अवदात।
पिय प्यारी दोऊ तहाँ, अँग अँगरात जम्हात ॥ ५० ॥
कछुक लाज करि लाड़िली, अधो दृष्टि करि देत।
सो सुख मो मन सुमिरि कै, लूटि तुरत किन लेत ॥ ५१ ॥
ब्रजनिधि अच्छरों सूँ[1] कियौ, ग्रंथ जु प्रेम-प्रकास।
पते कियौ यह जानिकै, गहि चरननि की आस ॥ ५२ ॥

सोरठा

ग्रंथ जु प्रेम-प्रकास, रसिकनि हिये सुहातु अति।
राधाकृष्न व्यास, दुहूँ लोक की देय गति ॥ ५३ ॥

दोहा

अष्टादस चालीस अठ, संवत फागुन जानि।
कृष्नपच्छ नवमी जु गुर, ग्रंथ कियौ मन मानि ॥ ५४ ॥

(१) अच्छरा = अप्सरा।

कियौ ग्रंथ जयनगर मैं, नाम सु प्रेम-प्रकासु।
पढ़े कढ़ैं पातक सकल, बढ़ै प्रेम हिय तासु॥ ५५॥
सुखद सवाई जयनगर, माँझ कियो यह ग्रंथ।
जरनि मिटै हिय नरनि की, प्रेम परनि को पंथ॥ ५६॥

इति श्रीमन्महाराजाधिराज महाराज राजेंद्र श्री सवाई
प्रतापसिंहदेव-विरचितं प्रेम-प्रकास
संपूर्णम् शुभम्

(५) विरह-सलिता[1]

रेखता

नँद के फरजंद जू दीदार क्यों न देवो।
यह बंदगी हमारी अब दिल में मानि लेवो ॥ १ ॥
ये प्रान लगि रहे हैं कब के तुम्हारे साथ।
दिल में जु नित बसो हो नहिं आवते हो हाथ ॥ २ ॥
तुम मानो या न मानो हम तो फिदा भई हैं।
यह साँच जी में जानो हम कसम खा कही हैं ॥ ३ ॥
सिर से जो लेके पा तक तुम्हारे ई रँग रँगी हैं।
सब लाज ओ हया तो जब से हि चल भगी हैं ॥ ४ ॥
कहर-नजर कूँ छाँड़ि कै मिहर-नजर कूँ कीजै।
सत कोटि गोपियों का एता सबाब लीजै ॥ ५ ॥
भौंहों की मटक मुकट लटक चटक नहीं भूले।
पीत पटका झटक लेना गतिका ही[2] मे हूले ॥ ६ ॥
खुभि रही हैं[3] खूब ही खुसरंग भीनी तानैं।
यह और कौन समझे जाने हैं सोई जानैं ॥ ७ ॥
मुसकानि ओ लटकीली बानि आनि दिल में डोलैं।
अलकें रलकें हलकें जिगर-कुलफ को जु खोलैं ॥ ८ ॥
बेबस जो होके भूमि मे गिरती हैं सुधि के आए।
मरना न जीना हैगा सब रोज दिल लगाएँ ॥ ९ ॥

---

(१) सलिता = सरिता, नदी। (२) ही = हृदय। (३) खुभि रही है = चुभ रही है।

आलम जो यों कहै है यह कृष्न की सखी हैं।
बिन दामों लई चेरी ब्रजराज ले रखी हैं॥ १० ॥
धीरज धरम करम की अब तो तुम सों रहै सरम।
यह नहिं रखो तो प्यारे फिर जान का भरम॥ ११ ॥
सूरति सलोनी हैगी स्याम दिल में बस्ती है।
मोहन अजब है यार चश्म खूब मस्ती है॥ १२ ॥
उजियाला हुस्न का है अदा खूब अज्ब गुल[1] है।
इस नाज के बगीचे में हम बुलबुलों का गुल[2] है॥ १३ ॥
सुंदर सुघर है दिल में दिल को खोलि के न बोलै।
डोले न आँखों आगे औ छुप छुप के जख्म छोलै[3]॥ १४ ॥
रसराज होके रस बसि कीनी खुसी के माहीं।
नहिं छोड़ना है बेहतर अब हम किधर को जाहीं॥ १५ ॥
मारो कि तारो तुमसों अब है कछू न सारो।
महरमदिली सों दिलवर टुक दीजिए सहारो॥ १६ ॥
चलती है नैन सेती ए सलिता ज्यूँ आँसु-धारा।
नहीं कहा य तुमने दगा करके हमें मारा॥ १७ ॥
कैसे सुहाई एती क्यों निठुराई मन में आई।
करिए जू क्या बड़ाई फैज पाई है जुदाई॥ १८ ॥
जब सें नजर मिली है रहै दिल कुँ बेकली है।
तब से हया पिली है तुझ विरह में जली है॥ १९ ॥
तुम सुध को ली भली ये पहचान सब टली है।
मनमथ ने दलमली है जीना कठिन अली है॥ २० ॥
यह इस्क अति बली है हम सबकुँ ले तली है।
मुरली की तान आन चुभी प्रेम की सली है॥ २१ ॥

---

(१) गुल=फूल। (२) गुल=शोर। (३) छोलै=छीलता है।

इक नजर मे छली है मति नाहि फिर हली है।
उस पर ही सब टली है रत मिलने की झली है ॥ २२ ॥
अब तो दयाहि कीजे छिन विन में तन जो छीजै।
बिन बोले कौलौं[1] रीजे[2] दरसनहु एहि जीजै ॥ २३ ॥
हम सब बिचारी अबला हमें मार हुए सबला।
खंजर जुदाई घबला अब तो इधर भी टबला ॥ २४ ॥
कुब्जा त्रिभंगि ओपी हम सब बुरी हैं गोपी।
पहिचानि जानि लो पी ! भेजी है हमको टोपी ॥ २५ ॥
उद्धव जु ल्याया पोथी सब जोग-बात थोथी।
हम जब पियारी जो थी कुबजा निगोड़ी को थी ॥ २६ ॥
कै तो हमें बुलावो कै आप ह्यॉं सिधावो।
जब हमरी पीर पावो तब दिल मे ह्वै ज्युँ तावो ॥ २७ ॥
पहले जु सिर चढ़ाई उस लाड़ सों लड़ाई।
तिहुँ लोक संग गाई एती दई बड़ाई ॥ २८ ॥
अब नाखि[3] बिच खटाई यह तुम्हरी है ढिठाई।
हमें सब सेती हटाई फिरती हैं सटपटाई ॥ २९ ॥
सबकी दसा मिटाई कह्यो बाँधो सब जटाई।
लहो जोग की छटाई बैठो बिछा चटाई ॥ ३० ॥
अंग भस्म को रमावो चित ब्रह्म में लगावो।
इस ग्यान को हि गावो जब ही तो मोहि पावो ॥ ३१ ॥
ऊधो ये बात साँची हम संग उसके नाचीं।
जो हमसे उनसे भाँची अब लेत क्यों लवाची ॥ ३२ ॥
झूठी जो पत्री बाँची यह दासी दीहै भाँची।
कुब्जा हुई है पाँची बहकाए लंक लाँची ॥ ३३ ॥

---

(१) कौलौं = कब तक। (२) रीजे = रहिए। (३) नाखि = नाखि, मिलाना।

वे उसके रस में पागे रहते हैं अंग लागे।
दोऊ के भाग जागे जिस्सेती हमको त्यागे ॥ ३४ ॥
उनको न ऐसी चहिए रूखे जवाब कहिए।
क्यों करके गजब सहिए कहते हैं ज्ञान गहिए ॥ ३५ ॥
हम हो रही हैं सूनी दिलवर हुआ है खूनी।
तड़फन उठी है दूनी बिरहा के भाड़ भूनी ॥ ३६ ॥
वह कंस की है दासी उसकी सिकल ददासी।
जिसने भी डाली फाँसी भली कीनि जग में हाँसी ॥ ३७ ॥
हाहा करै हैं ऊधो दिल उस्से जा विलूधो।
नहिं प्रेम-पंथ सूधो हियरा रहै है रूधो ॥ ३८ ॥
तुम जस नगारे बाजे हैं हम सबहि सुनि के लाजे।
तुम हमको छोड़ि भाजे कुब्जा के संग गाजे ॥ ३९ ॥
आफत पड़ी है ताजी प्रानन की लागी बाजी।
जीती बचैं जो साजी ऐसी करौ पियाजी ॥ ४० ॥
माफी गुनह की करिए औगुन न जी में धरिए।
कर बाँधि पैरों परिए अब तो जु इत को ढरिए ॥ ४१ ॥
अरजें हमारी मानौ तुम्हें अपनी ओर जानो।
हम सिर पै कृष्न बानौ सो तो नहीं है छानो[1] ॥ ४२ ॥
बाने की लाज राखौ तुमसे है सब इलाखौ।
गलबहियाँ आनि नाखौ रस उस तरे ही चाखौ ॥ ४३ ॥
गोकुल में आय बसिए वैसेही रास रसिए।
सुख करि समाज हँसिए छलछद सों न फँसिए ॥ ४४ ॥
सीखे हो बेवफाई इसमें है क्या सफाई।
जालिम जुलुम जफाई करते हो दिलखफाई ॥ ४५ ॥

---

(१) छानो = छन्न, छिपा हुआ।

मिलने का मसला सुनिए अपने भी मन में गुनिए ।
कीरत का लाभ लुनिए हिल-मिल को रास रुनिए ॥ ४६ ॥
काली नाथि नाखा[1] × × ×
× × × × ॥ ४७ ॥
जीवन-जड़ी लै आवै अमृत अधर को प्यावै ।
रँगसंग अँग मिलावै जियदान यों दिवावै ॥ ४८ ॥
अब तो यही हैं अरजैं उनको कहो जु लरजैं ।
नहिं रहना दासि बरजैं पुजवै हमारी गरजैं ॥ ४९ ॥
ब्रजनिधि पियारे जानी हित हरख रस के दानी ।
हम चाहैं मरजी मानी कहिए यहै जुबानी ॥ ५० ॥
यह नाम **बिरह-सलिता** बाँचे से कृष्न मिलिता ।
जैपुर नगर उभलिता विच पता काव्य कलिता ॥ ५१ ॥

दोहा

संबत अष्टादस सतक, पंचासत सनिबार ।
माघ कृष्न-पख दोज को, भयो बिरह को सार ॥ ५२

इति श्रीमन्महाराजाधिराज महाराज राजेंद्र श्री सवाई
प्रतापसिंहदेव-विरचितं बिरह-सलिता
संपूर्णम् शुभम्

---

(१) "काली नाथि नाखा" के आगे जो पद थे वे अप्राप्य हैं ।

(६) स्नेह-बहार

दोहा

गन-नायक वरदान दै, सारद बुद्धि प्रकास।
राधे-कृष्न-विहार कहुँ, पुरवौ मन की आस ॥ १ ॥
कहा कहौं कहनी कहा, मुख तें कही न जाय।
इस्क कुलफ जुल्फैं लगी, हाय हाय फिरि हाय ॥ २ ॥
इस्क कमल का जलल अति, प्रबल चैन नहि नेक।
जो सुलझाड़ा होय तो, सिर तक धूँगा फेंक ॥ ३ ॥
इस्क-खेत पूरा वहै, सूरे आसक नूर।
अदा-तेग सो ना मुरै, होत अंग चकचूर ॥ ४ ॥
देखे दौरि दवा करैं, दया लेहु दिलदार।
दुरो कहा दीदार धौ, दरद बँध रहे द्वार ॥ ५ ॥
दूर भए दम रहत नहिं, देहु दरस को दान।
दिलजानी दुख देत क्यों, लेत हमारे प्रान ॥ ६ ॥
दामन लागे दौरि कै, दूरि होत अब नाहिं।
दावादारी करत क्यों, दिलदारी के माहिं ॥ ७ ॥
अदा-तेग लागी जिगर, जबर रूप की धार।
डरे खेत बिललात हैं[1], घायल मार सुमार ॥ ८ ॥
अँगनि अगनि अति ही बुरी, दुरी रहै कहुँ नाहिं।
दावत ज्यों ज्यो अति बढ़ै, भभकि भभकि हिय माहिं ॥ ९ ॥
राति द्यौस ससक्यो करै, नेही जन जो होय।
या दुख को जानै वही, और न जानै कोय ॥ १० ॥

---

(१) बिललात हैं = आर्तनाद करते हैं।

पलक-धारि तरवारि सी, वार कियो जु सुमार।
पार भई अँग फारि कै, मारि मारि वेवार॥ ११॥
नैन पैन हैं मैन-सर, सैन ऐन नहिं चैन।
दैन लगे सुनि वैन दुख, लगे प्रान कौ लैन॥ १२॥
ग्वालिन गाढ़ी गरब मैं, तन गोरे रँग पूर।
गिरधारी गोहन लग्यौ, पिवत नैन भरि नूर॥ १३॥
इस्क आहि आफत अरे, करै दिलों के टूक।
नयन-नोक झोंकी जिगर, उठो हूक करि कूक॥ १४॥
तेई आया खलक में, कीना इस्क कमाल।
जिगर तड़फड़ैं धड़पड़ैं, सिरन लगे[1] जंजाल॥ १५॥
रवकि चली भभकत भई, सब तन आगि दिपाइ।
इस्क-नाग-फुंकार सों, लहरि चढ़ी जिय जाइ॥ १६॥
सीतल सकल उपाय जे, कुथल भए यहँ आय।
सिथल प्रान अब रहत नहि, स्याम गारहू[2] ल्याय॥ १७॥
ललक उठी है इस्क की, पलक चैन नहिं देत।
आसक वीर सुभाव यह, नहिं छोड़त हित खेत॥ १८॥
किए इस्क बेपरद हम, आसक विरद पिछानि।
फिरत गिरद चैापरि[3] नरद[4], ज्यों मरि जोवत जानि॥ १९॥
लग्यो समाजहि इस्क को, करत देह को सिस्क।
प्रान निस्क सों के लई, लोक-लाज गई खिस्क॥ २०॥
इस्क आहि आफत अरे, गाहत दाहत प्रान।
जाफत में मासूक की, सीस सुपारी पान॥ २१॥
इस्क करो कोऊ नहीं, कहत पुकारि पुकार।
महबूवाँ दी[5] नजर में, अतर प्रान करि त्यार॥ २२॥

---

(१) सिरन लगे = खसकने लगे। (२) गारहू = गरुड़। (३) चैापरि = चैापड़। (४) नरद = गोटी। (५) महबूवां दी = महबूवों की।

हँसी खुसी सब करत हैं, इस्क सहज करि मान।
अरे इस्क ऐसा बुरा, फिरि लेवा है ज्यान[1] ॥ २३ ॥
खूब खुसी मुख पर लखे, हँसी फँसी गल जान।
सोख चस्म करि कर्द को, धरत जिगर पर आन ॥ २४ ॥
हुस्न-नूर मद पूर है, रहना उसमें दूर।
अरे कूर जानै कहा, इस्क सूर चकचूर ॥ २५ ॥
इस्क बुरा है बदबखत, करौ नाहिं कोउ भूल।
इस आतस की लपट सों, तन जरिहै ज्यों तूल[2] ॥ २६ ॥
मनमानी जानी अरे, नहिं नान्हीं यह बात।
यार प्यार इकतार करि, करत गात पर घात ॥ २७ ॥
बैठि तखत महबूब जब, कीया इस्क उजीर।
आसक के कतलाम का, हुकम किया बेपीर ॥ २८ ॥
नेह-कहर-दरियाव बिच, पानी है भरपूर।
अँग बूड़े सो तिरि चले, नहिं बूड़े सो कूर ॥ २९ ॥
इस्क-जखम जबरा अरे, दिल घबराया घाव।
घबराया कू क्यों करे, जख्म दिए का चाव ॥ ३० ॥
करैं एक के टूक द्वै, ऐसी तेग अनेक।
अजब इस्क की तेग का, होत वार द्वै एक ॥ ३१ ॥
महबूबों के वार से, धड़ सेती सिर दूर।
इस्क-ताज जिनको मिली, सूर वहै जग कूर ॥ ३२ ॥
औरत अपना देत है, जी मुरदे के साथ।
मरद होय के क्यों सकै, दे जी जीते हाथ[3] ॥ ३३ ॥
इस्क किया जिन खलक मैं, अलक-फंद गल पाय।
महबूबाँ दी झलक में, पलक पलक ललचाय ॥ ३४ ॥

---

(१) ज्यान=जान, प्राण। (२) तूल=रूई। (३) स्त्रियाँ सती हो जाती हैं, पर पुरुष जीती हुई (माशूका) के साथ कैसे "जी" दे दे।

भभकै आब गुलाब से, अजब इस्क की आगि।
सरद किया सब बदन को, रही जिगर मैं जागि ॥ ३५ ॥

जरद[1] भयौ तन हरद सों इस्क करद की घात।
सरद भयौ या दरस सों, मरद गरद[2] ह्वै जात ॥ ३६ ॥

हस्मो फंद फँसा गया, नस्मो छूटत कोय।
रस्मो इस्क सुनी यहै, चस्मो भस्मो होय ॥ ३७ ॥

इस्क यार दीया दगा, सगा न नेक कहाय।
तगा तगा करि[3] तन सबै, अगा भगा नहिं जाय ॥ ३८ ॥

और इस्क सब खिस्क[4] है, खल्क ख्याल के फंद।
सच्चा मन रच्चा रहै, लखि राधे ब्रजचंद ॥ ३९ ॥

मनसूबा लूब्या जहाँ, ब्रजनिधि रूप रसाल।
स्वाद छक्या सबसों थक्या, हूवा इस्क कमाल ॥ ४० ॥

सोरठा

स्नेह-बहार सु ग्रंथ, पंथ इस्क के परन कौ।
मिले कृष्न सो कंथ[5] मन मान्यौ हित करन कौ ॥ ४१ ॥

जय जयनगर मुकाम, धाम जहाँ गोबिंद कौ।
पते कियौ बिस्राम, सरन गह्यौ नँदनंद कौ ॥ ४२ ॥

जबही कियौ विलास सुखनिवास[6] के माहिं यह।
बाँचे बुद्धि-प्रकास, दुख-दारिद सब जाहिं बह ॥ ४३ ॥

---

(१) जरद=जर्द, पीला। (२) गरद=गर्द, धूल। (३) तगा तगा करि=तार तार करके। (४) खिस्क=मजाक। (५) कंथ=कंत। (६) "सुखनिवास"=जयपुर का एक महल जो चंद्रमहल के ऊपर है और जिसमें महाराज प्रायः रहा करते थे।

दोहा

संबत अष्टादस सतक, पंचासत सुभ वर्ष।
माघ सुक्ल दुतिया सु तिथि, दीतवार मन हर्ष॥ ४४॥

इति श्रीमन्महाराजाधिराज महाराज राजेंद्र श्री सवाई
प्रतापसिंहदेव-विरचितं स्नेह-बहार
संपूर्णम् शुभम्

(७) मुरली-विहार

दोहा

राधा-कृष्न उपास हिय, गनपति-सारद मानि।
बंसी-गोपिन झगरहीं, मति माफिक कहुँ जानि॥ १॥

सोरठा

प्रगट भए बन माहिं, ताकी तू भइ बँसुरिया।
दरजो और जु नाहिं, यहै बाँस की टुकरिया[1]॥ २॥

दोहा

मोहन कर लै अधर धर, कान फूँक दइ तोहि।
तातें गरजै गरब भरि, मनमानी तू होहि॥ ३॥
हम जानी अब मुरलिया, लियौ सुहागइ राज।
फैज पाय फुरमै मती, मधुर सुरन सों गाज॥ ४॥
यह अचरज सुनि हे सखी, धसी कान ह्वै आय।
बिन हाथन सब बाथ भरि[2], तन मन लीए जाय॥ ५॥
अधर-मधुर-रस निडर ह्वै पीवत तन भरि जाय।
हे मुरली तरसत रहैं, नहिं परसत हम हाय॥ ६॥
तू गरजो तबही लखी, गरजो प्राननि काज।
छिमा करो अब मुरलिया, नेक ल्याव हिय लाज॥ ७॥

---

(१) टुकरिया = टूक। (२) बाथ भरि = बाथ मारना, लिपटना।

बाजत बल ज्यों बँसुरिया, राग-बाज[1] फहराय।
तान-चूँच[2] सों पकरिकै, चित-चिरिया लै जाय॥ ८॥
हाथ धोय पीछे परी, लगी रहत नित लारि[3]।
अरी मुरलिया माफ करि, बिना मौत मति मारि॥ ९॥
तान-अगनि हम तन धरत, हे मुरली मति जार।
ता ऊपर अब यह करत, फूँकि उठावत झार[4]॥ १०॥
तेरी हाँसी खेल है, जात हमारे प्रान।
अरी बावरी कह परी, कौन पाप की बान॥ ११॥
कौन पुन्य तेरो प्रबल, रहत लाल-मुख लागि।
धनि धनि धनि तू मुरलिया, तेरो ही बड़ भाग॥ १२॥
हमैं सुनावत का अरी, मनमथ-ग्यान-कथा सु।
तन-मन भेंट किए उपरि, प्रानहिं लेत तथा सु॥ १३॥
सुनत तान सबही छुटी, लोक-लाज कुल-कान।
हे मुरली तू कर छिमा, क्यों काढ़त है प्रान॥ १४॥
मोहन मोह्यौ मोहनी, गोहन लगी रहे सु।
सब-ब्रज-प्रीतम ले चुकी, अब तू कहा कहे सु॥ १५॥
पायँ परत हाहा खवत, बिनती यह सुनि लेह।
प्रीतम हमैं मिलाव तू, प्रान सोक मैं देह॥ १६॥
गहबर बन[5] के बीच मैं, कृष्न लियौ भरमाय।
अहै सूम री बँसुरिया, तैं कह[6] दीनो ताय॥ १७॥
मोहन-मुख कौ अधर-रस, पीय[7] हुई तू लीन।
थिर-चर सब चर-थिर भए, यह गति तैं तो कीन॥ १८॥

---

(१) बाज = बाज पक्षी जो अन्य पक्षियों का झपटकर शिकार करता है। (२) चूँच = चोंच। (३) लारि = साथ (राजस्थानी भाषा में)। (४) झार = ज्वाला, लौ। (५) गहबर बन = ब्रज के एक वन-विशेष का नाम है। (६) कह = (कहा) क्या। (७) पीय = पीकर, पान करके।

अहै बँसुरिया जगत को, बहुत नचाए नाच।
ब्रज-दूलह[1] अनुकूल तुव, यह सब जानी साँच॥ १९॥
मंद हँसनि हिय बसि रही, वह मूरति रसराज।
सौत मुरलिया लै लियौ, ब्रज-भूषन-सिरताज॥ २०॥
नेक नहीं हिय मैं दया, हया कहूँ नहिं मूल।
है हा हा क्यों देत है, तान-सूल की हूल[2]॥ २१॥
है हतियारी हतति है, प्रान मथति दिन-रैन।
मैन चैन छिन देत नहि, जब-सु सुने तुव बैन॥ २२॥
चीर सुनो कहुँ धीर नहिं, करत नाहिं को भीर।
हे मुरली बे-पीर तू, ताननि मारति तीर॥ २३॥
अंबुज-मुख को अधर-मद, पीवत नित उठि लूमि।
छबि-छाकी बाँकी फिरति, कुंज सघन मधि झूमि॥ २४॥
स्याम सुघर के मुँहलगी, भली करो री बीर।
हमैं सबनि कौ देति दुख, अरी मुरलि बे-पीर॥ २५॥
श्रौर सुने सुख पायहैं, हम सुनि विकल विहाल।
तुव हम बंसी बैर नहि, क्यों मारत हिय साल[3]॥ २६॥
हम तुम बंसी नित रहैं, एक प्रीत को बास।
याकी ही पनि[4] पार[5] तू, छोड़ि जीय की गाँस[6]॥ २७॥
प्रान हरौ तन-मन हरौ, हरौ सबै विस्राम।
हे मुरली अब कहति कह, छिनहूँ नहिं आराम॥ २८॥
जोग ध्यान जप तप करें, नहिं पावत यह थान।
अधर-मधुर-अमृत चुवत, सोहि करत है पान॥ २९॥

---

(१) ब्रज-दूलह = ब्रजपति। (२) हूल = घुसा देना, जैसे भाला घदन में। (३) साल = (शल्य) काँटा, फाल (जैसे सेल का)। (४) पनि = प्रण। (५) पार = पालन कर। (६) गाँस = गाँठ, बैर, कसक।

वंसी फंसी प्रेम की, डारत हंसी माहिं।
फिर गंसी करि मनन को, यह संसी जिय आहिं ॥ ३० ॥
एते कियौ जयनगर मैं, ग्रंथ यहै मन मान।
गोपिन-मुरली-रास्मिरस, कृष्नमयी जुवजान ॥ ३१ ॥

सोरठा

मुरलि-बिहारहिं ग्रंथ, रस-झगरइ को अंत वह।
प्रेम-परनि[1] को पंथ, रसिकनि अतिहि सुहाव[2] यह ॥ ३२ ॥

दोहा

अष्टादस गुनचास[3] यह, संवत फागुन मास।
कृष्न-पच्छ तिथि सप्तमी, दीतवार है तास ॥ ३३ ॥

इति श्रीमन्महाराजाधिराज महाराज राजेंद्र श्री सवाई
प्रतापसिंहदेव-विरचितं मुरली-विहार
संपूर्णम् शुभम्

---

(१) परनि = परिणय या संबंध, सगाई। (२) सुहाव = सुहावै या सुहावना। (३) गुनचास = उनचास।

(८) रमक-जमक-बतीसी

दोहा

हे बौरी बौरी भई, तैं बौरी ह्वाँ जाय।
अब होरी होरी समै, हो री हीय लगाय॥ १॥

को हेरी को ह्वै रही, सुनी वहै कुहकान।
अरी हरी[1] मति कौ हरी[2], सूकी हरी[3] लतान॥ २॥

है खूबहि खूबी वहै खुभी हिए के माहिं।
मोर-चंद्रिका की अदा, अदा भई जु अदाहिं॥ ३॥

गुजरी यों गुजरी निसा, गूँज रही हिय लागि।
सुरभी नहिं सुरभी रही, सुरभी आनन पागि॥ ४॥

एक घरी हू ना घिरी, घरी भई सुधि आय।
जात अरी अरि जात री, जातरूप[4]-रँग हाय॥ ५॥

निस चाली चाली नहीं, भई चाल बेचाल।
फैलोये फैली परै, फैली प्रातहि लाल॥ ६॥

छली छली छलिकै रही, उछलन कौन इलाज।
रंगरली ना रसरली, रहै रली करि काज॥ ७॥

जोरी करि जोरी अरी, जोरी मोहि बताहि।
मन बरज्यौ अब ना रहै, बरज्यौ बिन बरि जाहि॥ ८॥

झलकी दुति झलकी वहै, रही झलक इक लागि।
छुटी अलक लखिकै अलख, अलख भयौ जिय जागि॥ ९॥

टुटो वहाँ टूटो इहाँ, टुटो लाज कुल-कानि।
कपटी ने कपिटी करी, भे कपटी सी आनि॥ १०॥

---

(१) हरी = हरि, कृष्ण। (२) हरी = हर लिया, छीन लिया।
(३) हरी = हरे रङ्ग की। (४) जातरूप = सोना, स्वर्ण।

ठाढ़ी ही ठाढ़ो भई, छवि ठाढ़ो दृग आय।
उर तें काढ़ी ना कढ़ै, लाज कढ़ो ही जाय॥ ११॥
डरी डरी बिझरी रहति, डरी प्रेम-बिस पाय।
उन जारी जारो इतै, अब जारी इत ल्याय॥ १२॥
ढोलन के ढोलन बजै, ढोलन पहुँची जाय।
कह जानै रमढोलिया, रमि ढोलन के भाय॥ १३॥
तारी दै तारी लगी, तारी लागी नाहिं।
दी इकतारो तार तू, या इकतारी माहिं॥ १४॥
थोरी लिखि थोरी भई, थोरी करि गी गाथ।
थिर रहि थर-थर होत क्यों, वह थिर ह्वैहै हाथ॥ १५॥
दागन सों दागन लगे, प्रमदागन कौ प्रात।
नख-रेखन नखरे घने, नख-रेखन सों गात॥ १६॥
धाय धाय ढिग तें चली, धाए उर तें लाल।
दोऊ के दे दे मिले, दोऊ हसन खुस्याल॥ १७॥
नारी नारी ना रही, जरत जरत न जराय।
ना बोलत बोलत वहै, बोल कह्यौ यह जाय॥ १८॥
यह पीरी पीरी भई, पोरी मोहि मिलाय।
सीरी सीरी समय मैं, सीरी अधर पिवाय॥ १९॥
फूलन बरियाँ फूल है, फैली अँग न समाय।
[1] × × × × × ॥ २०॥
बानी सी बानी सुनी, बानी बारह देह।
बनी बनी सी पै बनी, नजर बना की नेह॥ २१॥
भरी भरी री अरु भरी, छवि हिय ओर सुगंद।
भार भार अरु भा रहे, कांति रूप रस कंद॥ २२॥

---

(१) मूल प्रतियों मे यह पंक्ति नहीं पाई गई।

मार मार सो मार करि, सैन नैन अरु बैन।
मोर भई री मोर पर, मोरि ल्याव री ऐन ॥ २३ ॥
प्याही प्याही ल्या हिए, यारी था तन माहिं।
ये तन ये तन रहत है, वे तन बिन ये नाहिं ॥ २४ ॥
राखी करि राखी यहै, राखी हिय मैं जानि।
राख राख करि राख तू, काम सौति अरु मान ॥ २५ ॥

सोरठा

लाल लाल ही लाल, अधर नैन अरु अँग सबै।
साल साल हिय साल, मै सौतिन खलगन अबै ॥ २६ ॥

दोहा

वोही वोही रमि रह्यौ, वोही दसों दिसान।
बावा ही बावा कहत, बाजे प्रीत निसान ॥ २७ ॥
सखी भई निरखत सखी, सखी रीझि रहि नारि।
रंगभरी छवि हियभरी, भरो चहत अँकवारि ॥ २८ ॥
हरी हरी करि मति हरी, हहरी ठहरी नाहिं।
कह री गहरी बेनु बजि, ऐंची अँखियन माहिं ॥ २९ ॥
अरी अरी री री इतै, ईठी उपजी ऊठि।
एरी ऐंठी ओट है, औरे अंग अनूठि ॥ ३० ॥
लाल-लाड़िली-**रमक** की, **जमक** बनी अति जोर।
ब्रजनिधि-जस कीन्हे पते, पायौ लाभ करोर ॥ ३१ ॥
संवत अष्टादस सतक, इक्कावन सु असाढ़।
सुक्र-पच्छ बुध द्वादसी, भयौ ग्रंथ अति गाढ़ ॥ ३२ ॥

इति श्रीमन्महाराजाधिराज महाराज राजेंद्र श्री सवाई
प्रतापसिंहदेव-विरचितं रमक-जमक-
बत्तीसी संपूर्णम् शुभम्

---

(६) रास का रेखता

नाचते में दिलहरा है लेता गति उमंग।
भौंह-मटक नैन-चटक ग्रीव-हल सुढंग॥
मंद हसनि राग-रसनि तान लेत रंग।
भुज की डुलनि कर की मुरनि कटि की लचनि रंग॥ १॥
दस्तार सिर हवा सी सजवट खुली है खासी।
ब्रज-गोपियाँ रमा सी लखिकै भई हैं दासी॥
अँग तँग गुलालि नीमा रसरूप की है सीमा।
सब मन के धन की बीमा मुजदर्द कहा कीमा॥ २॥
डुपटा है रँग किरमची मनु मनके दई कमची।
सत कोटि के इक समची अमृत अदा को पीती॥
× × × × × ×
भरि भरि के नैन चमची × × ॥ ३॥
सूथन झलकती हैंगी खुसरंग जाफरानी।
तुकरइ जु जर की बूटी तारन की खूटि खानी॥
नीवी के मोती झूमैं सब दिल की है निसानी।
देखे जु बनिहि आवै को कहि सकै जुबानी॥ ४॥
होकार की किलगी जिसकी है धज अजूब।
सिर सोभा बनी सिर पै पुखराज की जो खूब॥
कानन कुँडल झलकते मन उनमें रहा डूब।
बेंदी औ टीकि-बेसरि-छवि सब फबा महबूब॥ ५॥
भुजबंध पहुँचि बीटी हथफूल है जु खासा।
कँठसिरी सतलड़ा हमेल का उजासा॥

बद्धी औ छुद्रघंटिका सेली मे सब की आसा।
हीरों की पायजेब देखि मन करै हुलासा॥ ६॥
सब्ज हुसन अजब न्याज देखि मन फिदा है।
जुल्फें हैं गिरहदार नोंक सेति दिल छिदा है॥
अँखियाँ खुमार खूनी खुस ह्वै जिगर भिदा है।
जब से नजर पड़ा है कुल-कानि कौ बिदा है॥ ७॥
बाल बिथुरे सुथरे पैरों पै जा पड़े हैं।
मानों अगर सों लपटे-झपटे भुजँग अड़े हैं॥
अंबर अतर सों तर हैं जिनसे सुमन झड़े हैं।
मखतूल के झब्बे हैं जिय मैं रहे अड़े हैं॥ ८॥
घम-घम घुमावे घुँघरू बेलागि पाय ठोकर।
गति लेके उझक देखन मैं अजब अदा होकर॥
जिसके देखने से काम हो रहा है नोकर।
कदमों मे जाय पड़िए दिल का गुबार धोकर॥ ९॥
ललिता दियैा उघटती ताथेई थेई थेई।
कहि थुंगा थुगा थुंगा कर ताल देत वेई॥
तत तत्त तत्त तत्त त उच्चार करत केई।
थुंगा थिर रखि ररथि ररिरिरिरि थिरकि लटकि लेई॥ १०॥
रास-मंडल बीच आँख भौहें पीय प्यारी।
इत झमकावे बिहारी उत भानु की दुलारी॥
दोऊ के अंग-सँग मे रस-रंग रहा भारी।
अद्भुत समै निहारी कोऊ न रही नारी॥ ११॥
घूँघट की ओट चस्म-चोट प्रेम की कटारी।
कर सों कर मिलाय दोऊ लेत सुलफ भारी॥
नील अरुन कमल मनों छबि सों उर झारी।
लेत हैं उगाल बदलि हरखि निरखि वारी॥ १२॥

घुमिरि लेत घूमि घूमि अधर लेत चूमैं।
मधुर रस को लूमि लूमि परस्परहि भूमैं॥
एकही सरूप दोऊ भेद ना दुहूँ मैं।
सोभा भई अपार आज देखि ब्रज की भू मैं॥ १३॥
मोतिया गुलाब अतर में जो सगमगे हैं।
अरगजा रु केसरि संदल सों रँगमगे हैं॥
कुंज कुंज भ्रमर-पुंज गुंज अगमगे हैं।
देव औ अदेव मुनि मनुज डगमगे हैं॥ १४॥
यह मृदंग-धुनि सुगंध बजत गति सु केई।
धुम कट कटत कधिलंग धिधिकट तकथेई॥
तागड़दी थुंगड़दी दीनागड़दी नानाना द्रिमिद्रिमिद्रिमि देई।
तक्कु तक्कु धा धा धा धा धा कि कुड्डाकि कुड्डुतांथेई॥ १५॥
मुरली सजे बजे हैं धुनि होत अति मजे हैं।
त्रिभंग तन धजे हैं मधि रास के गजे हैं॥
धीरज धरम तजे हैं इहाँ सेवि कौन जैहैं।
ब्रजबाल ना लजैहैं अद्भुत भई ब जैहैं॥ १६॥
वीना रबाब चगी मुरचंग औ सरंगी।
सहतार जलतरंगी कठताल ताल संगी॥
किन्नर तमूर बाजैं कानूड़ की तरंगी।
ढोलक पिनाक खंजरि तबले बजैं उमंगी॥ १७॥
अलगोजा और सहनाई भेरी औ बजैं पूंगी।
रनसिंहा और तुरही नेकल्म बजि सुढंगी॥
नौबति बजैं मधुर सो रँग-रास के हैं जंगी।
सुनि होत मन उमंगी खोले दिलों की तंगी॥ १८॥
थिर चर भए हैं हलचल देखे बिना नहीं कल।
यह बखत भूलें नहि पल देखा है हुस्न झलमल॥ १९॥

सिव सखी भेख सजिकै आए गौरा कौ तजिकै ।
नाचे हैं डेरूँ लैके ब्रजबाल देखि झिझिकैं ॥ २० ॥
लखि लाल चले छजिकै संकर मिले हैं लजिकै ।
आदर कियौ है धजिकै रीझेहि आए भजिकै ॥ २१ ॥
ब्रह्मा सुरेस आए सुर-मुनि विमान छाए ।
फूलन के झर लगाए मंगल में मन सिहाए ॥ २२ ॥
यह सरद की जुन्हाई पूर्ण कला छाई ।
जगमगति जोति आई हित बरखि हरखि लाई ॥ २३ ॥
ब्रज वृंदावन सुहायो भयो सबके मन को भायो ।
ब्रजनिधि सो पीव पायो राधारमन कहायो ॥ २४ ॥

इति श्रीमन्महाराजाधिराज महाराज राजेंद्र श्री सवाई
प्रतापसिंहदेव-विरचितं रास का रेखता
संपूर्णम् शुभम्

(१०) सुहाग-रैनि

दोहा

सुंड - दंड - उद्दंड - धर, विघ्न - विहंडनहार।
मद-झर झरत कपोल जुग, भौंर-झौंर झंकार॥ १॥
राधे बाधे-हरि जगत, साधे श्री ब्रजराज।
ते जु अराधे हम हृदय, ग्रंथ बनावन काज॥ २॥
नवल विहारी नवल तिय, नवल कुंज रसकेल।
सब निसि सुरत-सुहाग मिलि, दंपति आनँद-रेल॥ ३॥

सोरठा

पाई रैन-सुहाग सफल भए मन-काज सब।
मेरौ है धनि भाग सिरी किसोरी पाय अब॥ ४॥

दोहा

सुरत-स्रमित सब निस जगे, रगमग रही खुमार।
छके नैन घूमत झुकत, प्रीतम रहे निहार॥ ५॥
नैन लाल हैं बाल के, आला छबि के जाल।
नंदलाल यह हाल लखि, बिके दगनि के नाल[1]॥ ६॥
दगनि पलक अधखुलि रही, मगन भए लखि लाल।
भौंर निवारत हैं खरे, लिए हाथ रूमाल॥ ७॥
आरस दग सब निस भरे, भरे सुरत के भाय।
निरखत हैं प्रीतम खरे, हुस्न-खजाना पाय॥ ८॥

---

(१) नाल = हाथ।

सोरठा

नैन खुमार-अगार, कोटि-मार-छवि वारिहैं।
प्रीतम रहे निहार, मन-धन करि बलिहारिहैं॥ ९॥

दोहा

ठोढ़ी तर देकर पिया, लखित गरद ह्वै जात।
पलक अधखुली दृगनि सों, अँग अँगरात जम्हात॥ १०॥

अब प्यारी जू को अति जागिबे को स्रम जानि सखीनि नैन-सैन सों कह्यौ कि अब पौढ़िए, सो समुझि प्यारी जू पौढ़न लगीं।

दोहा

प्यारी जू पौढ़न लगीं, अति झीनो पट तान।
दृग झलकत अलकैं बिथुरि, लखि पिय वारत प्रान॥ ११॥

तहाँ सखी सखी सों कहति हैं—

दोहा

रैन-खुमारहिं दृगनि मैं, भरी अरी अति आय।
लाल हिये यह छवि खरी, टरी नेक नहिं जाय॥ १२॥
पल झुकि आवत अति अरी, देखि खरी री वीर।
रंग-झरी यह छवि-भरी, मनौ काम-द्वय-तीर॥ १३॥
कमल-पत्र-दृग मत्त हैं, रैन-रत्ति के अत्य।
प्रीतम लखि थकि नित रहैं, यहै कहति हौं सत्य॥ १४॥
दृगनि खगी सब निस जगी, पगी खुमार सुमार।
लाल हिये विच रगमगी, लगी कटाछि अपार॥ १५॥
बनी-ठनी सोंधे-सनी, नैननि नींद अपार।
पिय सुहात हिय में घनी, निरखत नंदकुमार॥ १६॥
नैन सलोने मोहने, मोह्यौ मोहन लाल।
निरखत हैं नित गोहने, छवि यह रूप रसाल॥ १७॥

दृग झपकत तब पीव यह, पगचंपी कर देत।
प्यारी चितवत खैंचि कर, उरहिं लगाय जु लेत ॥ १८ ॥
पलक लगत नहिं निसि समै, निरखि नैन मदपूर।
इकटक लागी टरति नहिं, हाजिर रहत हजूर ॥ १९ ॥
रैन-सुहागहि लाग हिय, जागि दोऊ अनुरागि।
रँग बरखत हरखत हुलसि, सुरत सरस रस पागि ॥ २० ॥
सैन कियै दंपति लपटि, निपट सुखनि सरसाय।
निरखि सखी ललितासु जब, छबि छकि जकि रहि जाय ॥ २१ ॥

अब या ग्रंथ को फल कहियतु हैं—

दोहा

रैनि-सुहागहि सुख सबै, ध्यान निरखि कै कौन।
सुभ आनँद मगल बढ़ैं, जुगल चरन ह्वै लौन ॥ २२ ॥

सोरठा

नाम सुहागहि-रैनि, ग्रंथ यहै कीनौ अबै।
हरि चरनों ही चैन, प्रेम हिये बिच नित रहै ॥ २३ ॥

दोहा

अष्टादस गुनचास हैं, फागुन पते कियै सु।
तिथि दसमी बुधवार दिन, मन आनंद लियै सु ॥ २४ ॥

इति श्रीमन्महाराजाधिराज महाराज राजेंद्र श्री
सवाई प्रतापसिंहदेव-विरचितं सुहाग-
रैनि संपूर्णम् शुभम्

---

(११) रंग-चौपड़

दोहा

गनपति सोहत स्याम-ढिग, सरसुति राधे संग।
दंपति-हित-संपति-सहित, खेलत चौपरि-रंग॥ १॥
दुहूँ ओर की सहचरी, करत दुहुन की भीर।
मनमान्यौ मौसर[1] मिल्यौ, मिटी मदन की पीर॥ २॥
चुहल मच्यौ रँगमहल मैं, रच्यौ रंग कौ खेल।
अंग अंग उमगनि चढ़ी, बढ़ी रंग की रेल॥ ३॥
मानिक की पन्नान की, नरदैं[2] धरीं सँवारि।
इत नीलम पुखराज की, धरीं रँगीली सारि[3]॥ ४॥
हीरन के पासे सुढर, प्रीतम लिए उठाय।
प्रानपियारी कौ दिए, हिए प्रेम-रँग छाय॥ ५॥
प्यारी मृदु मुसकाइ कै, करन लगी मनुहारि।
प्रीतम सौंह दिवाइ कै, रची रँगीली रारि[4]॥ ६॥
नवलकिसोरी कै परयौ, पौ-बारह कौ दाव।
जानि आपनी जीति कौ, बढ़्यौ चित्त मैं चाव॥ ७॥
दस पौ प्रीतम पै परे, पौ पंजा कौ पेखि।
हारे हारे कहत सुनि, रह्यौ साँवरौ देखि॥ ८॥
खेलन लागे प्यार सौं, प्यारी पिया प्रसन्न।
बाजी समुझत परसपर, धन्य भाग है धन्य॥ ९॥

---

(१) मौसर=(औसर) अवसर, मौका। (२) नरदैं=गोटियाँ। (३) सारि=गोटी। (४) रारि=रार, झगड़ा।

स्याम-गौर-कर-मूदरी, हीरन की जु उदोत।
मनौ मदनपुर चौपरैं, दीपमालिका होत॥ १०॥
पासे खनकत खेल मैं, कर लै प्यारी बाल।
रतिपति के दरबार मैं, मनौ बजत कठताल॥ ११॥
लुकि लुकि सैननि करति है, झुकि झुकि मारति सारि।
रुकि रुकि राखति रंग कौ, चुकि चुकि रहति सम्हारि॥ १२॥
स्याम जरद अपनी करी, लाल हरी दी बाँटि।
प्यारी लाल हरी भई, बढ़ी खेल मैं आँटि॥ १३॥
जरद नरद लै चलति है, प्यारी घूँघट-ओट।
लाल देखि छवि छकि रहे, भए जु लोटहि पोट॥ १४॥
स्याम नरद फिरि चलत हैं, प्यारी जू को दाव।
देखि स्याम मोहित भए, परयौ जु चित्त कुदाव॥ १५॥
प्यारौ अपने दाव मैं, लाल स्याम मिलि देत।
हरित सारि मिलि गौर पुनि, प्रीतम मन हरि लेत॥ १६॥
पीरी हरी मिलाय कै, देत रुगटि करि[1] दाव।
गहि ठोढ़ी प्यारी कहै, झूठे झूठे भाव॥ १७॥

सोरठा

भरे प्रेम मनमत्थ, जगमगात दोउ रूप मैं।
नहीं कान्ह कै हत्थ, परे मनोरथ-कूप मैं॥ १८॥

दोहा

होड़ माहिं सरवस लग्यौ, प्यारे जान सुजान।
एक हारि नहिं लगत है, दाव परे कौ आन॥ १९॥
दाव परयौ है जीवि कौ, प्यारी जू कौ आय।
भए मनोरथ लाल के, मनमानी भइ चाय॥ २०॥

---

(१) रुगटि करि = रुँगटकर, बेईमानी करके।

प्यारी तन मन प्रान हूँ, लीनै। सबै समाज।
तुम जीते हम पर रहौ, नीचै हम हैं आज ॥ २१ ॥
भयौ ख्याल पूरन सबै, पूरन चालो जानि।
मन-माफिक पूरन भई, पूरन पाई आनि ॥ २२ ॥
रँग-चौपरि के ग्रंथ कौ, बाँचै फल ह्वै च्यारि।
अर्थ-धर्म अरु काम हूँ, मुक्ति मिलहि तिहिं वारि ॥ २३ ॥
श्री गुबिंद प्रभु कै निकट, जैपुर नगरहि मद्ध।
ब्रजनिधि दास पतै कियौ, सुखनिवास मैं सिद्ध ॥ २४ ॥
संवत अष्टादस सतक, त्रेपन आसुनि मास।
तिथि द्वितिया रबिबार-जुत, जुगल चरन मन आस ॥ २५ ॥

इति श्रीमन्महाराजाधिराज महाराज राजेंद्र श्री
सवाई प्रतापसिंहदेव-विरचितं रंग-
चौपड़ संपूर्णम् शुभम्

(१२) नीति-मंजरी

छप्पै

जाकी मेरै चाह वहै मोसौं बिरक्तमन।
पुरुष और सौं प्रीति पुरुष वह चहत और धन॥
मेरे कृत पर रीझि रही कोई इक औरहि।
इह बिचित्र गति देखि चित्त ज्यौ तजत न वौरहि[1]॥
सब भाँति राजपत्नी सुधिक जार पुरुष कौ परम धिक।
धिक काम याहि धिक मोहिं धिक अब ब्रजनिधि को सरन इक॥१॥

दोहा

सुख करि मूढ़ रिझावही, अति सुख पंडित लोग।
अर्द्ध-दग्ध जड़ जीव कौ, बिधिहु न रिझवन जोग॥ २॥

छप्पै

निकसत बारू तेल जतन करि काढ़त कोऊ।
मृग-तृष्णा कौ नीर पियै प्यासे ह्वै सोऊ॥
लहत ससा[2] कौ सृंग ग्राह-मुख तैं मनि काढ़त।
होत जलधि के पार लहरि वाकी तब बाढ़त॥
रिस भरे सर्प कौ पहुप ज्यौं अपने सिर पर धरि सकत।
हठ भरे महासठ नरन कौ कोऊ बस नहि कर सकत॥ ३॥

कुंडलिया

फीको है ससि दिवस मैं कामिनि जोबन-हीन।
सुंदर मुख अच्छर बिना सरवर[3] पंकज[4] बीन[5]॥

---

(१) वौरहि = वौड़ही, पागलपन। (२) ससा = खरगोश। (३) सरवर = सरोवर। (४) पंकज = कमल। (५) बीन = (बिन) बिना, बगैर।

सरबर पंकज बीन होत प्रभु लोभी धन कौ।
सज्जन कपटी होत नृपति ढिग बास खलन कौ॥
ये सातौं ही सल्य मरम छेदत या जी कौ।
ब्रजनिधि इनकौ देखि होत मेरौ मन फीकौ॥ ४॥

छोटी हू नीकी लगै मनि खरसान चढ़ी सु[1]।
बीर अंग कटि अस्त्र सौं सोभा सरस बढ़ी सु॥
सोभा सरस बढ़ी सु अंग गज मद करि छीनहि।
द्वैज-कला-ससि सोहि सरद-सरिता जिमि हीनहि॥
सुरत-दलमली नारि लहति सुंदरता मोटी।
अर्थिन कौ धन देत घटी सोभा जिन छोटी॥ ५॥

दोहा

जाकौ जब सुधी नहीं, होत वहै नृपराज।
छोटे मोटे होत सब, सोच गर्व नहिं काज॥ ६॥

छप्पै

सब ग्रंथन को ग्यान मधुर बानी जिनके मुख।
नित प्रति बिद्या देत सुजस को पूरि रह्यौ सुख॥
ऐसे कबि जहँ बसत रहत निरधनता क्यों अति।
राजा नाहिं प्रवीन भई याही तें यह गति॥
वे हैं विवेक-संपति-सहित सब पुरुषन मैं अतिहि वर।
घटि कियौ रतन को मोल जिहिं वहै जौहरी कूर नर॥ ७॥

दोहा

विपति धीर संपति छिमा, सभा माहिं सुभ वैन।
जुध विक्रम जस रुचि कथा, वे नर-वर गुन-ऐन॥ ८॥

---

(१) खरसान चढ़ी सु = खराद पर चढ़ी हुई।

छप्पै

नीति-निपुन नर धीर वीर कछु सुजस करौ जिन।
अथवा निंदा करौ कहौ दुरवचन छिनहि छिन॥
संपति हू चलि जात रहौ अथवा अगनित धन।
अबहि मृत्यु किन होहु रहौ अथवा निश्चल तन॥
परि न्याय-पंथ कौ तजत नहिं बुध विवेक-गुन-ग्यान-निधि।
यह संग सहायक रहत नित देत लोक-परलोक-सिधि॥ ९॥

कुंडलिया

पंडित नर अरधीन कौ नहिं करिए अपमान।
तृन-सम संपति कौ गिनत बस नहिं होत सुजान॥
बस नहिं होत सुजान पटाझर गज है जैसे।
कमल-नाल के तंतु बँधे रुकि रहिहै कैसे॥
तैसे इनकौ जानि सबहि सुख-सोभा-मंडित।
आदर सौं बस होत मस्त हाथी ज्यौं पंडित॥ १०॥

छप्पै

चोरि सकत नहिं चोर भोर निसि पुष्ट करत हित।
अर्थिन हूँ कौ देत होत छिन छिन मैं अगिनित॥
कबहूँ बिनसत नाहिं लसत विद्या सु गुप्त धन।
जिनकै इह सुख साथ सदा तिनकौ प्रसन्न मन॥
राजाधिराज छिन छत्रपति ये एतौ अधिकार लहि।
इनकौ निहारि दृग फेरिए यह तुमहूँ कौ उचित नहिं॥ ११॥

कुंडलिया

नाहर[1] भूखो उदर कृस वृद्ध वैस बल छीन।
सिथिल प्रान अति कष्ट सौं चलिवे ही मैं लीन॥

---

(१) नाहर=शेर।

चलिबे ही मैं लीन तऊ साहस नहिं छाँड़ै ।
मद-गज-कुंभ बिदारि मांस-भच्छन मन माँड़ै॥
मृगपति भूखो घास पुरानौ खात न जाहर ।
अभिमानिन मैं मुख्य सिरोमनि सोहत नाहर ॥१२॥
माँगै नाहिन दुष्ट तैं लेत मित्र को नाहिं ।
प्रीति निबाहत बिपति मैं न्याय-वृत्ति मन माहिं॥
न्याय-वृत्ति मन माहिं उच्च पद प्यारौ तिनकौ ।
प्रानन हूँ के जात अकृत भावत नहिं जिनकौ॥
खड्ग-धार-व्रत धारि रहै क्यौंहूँ नहिं पागै ।
संतन कौ यह मंत्र दियौ कौनै बिन माँगै ॥१३॥

दोहा

अमृत भरे तन मन बचन, निसि-दिन जस उपकार ।
पर-गुन मानत मेरुसम, बिरले संत सभार ॥ १४ ॥
ईश्वर अरु राचस रहत, पर्वत बड़वा तुल्य ।
सिंधु गभीर सु अति बड़ो, राखत सुख सौं तुल्य ॥ १५ ॥
भूमि सयन कौ पलँग ये, साकहार कहुँ मिष्ट ।
कहूँ कँथा सिर-पाव कहुँ, अर्थी सुख दुख इष्ट ॥ १६ ॥

छप्पै

बड़ौ भूप-विस्तार भूमि मन मैं अभिलाखी ।
बड़ौ भूमि-बिस्तार सिंधु सीमा करि राखी ॥
सिंधु च्यारि सत बड़ अकार वि × × ×
× × × × ×
सबही मृजाद देखी सुनी जदपि बड़ाई हू सहित ।
यहू एक विस्तार विधि सिद्ध रूप सीमा रहित ॥ १७ ॥

दोहा

वंदन सबही सुरन कौ, बिधिहू कौ दंडोत।
कर्मन कौ फल देतु हैं, इनकौ कहा उदोत॥ १८॥
लोभ सँतोष न दूरि है, ऐसो कंचन मेर।
याकी महिमा याहि मैं, विधि रचियौ कह हेर॥ १९॥

छप्पै

कुत्सित मंत्री भूप संत बिनसत कुसग तैं।
लाड़ लड़ायैं पूत गोत कन्या कुढंग तैं॥
बिन विद्या तैं विप्र सील खल-संग लियै तैं।
होत प्रीति कौ नास बास परदेस कियै तैं॥
वनिता बिनास मदहास सौं खेती बिन देखै दृगन।
सुख जात नए अनुराग तैं अति प्रमाद तैं जात धन॥ २०॥

लज्जा-जुत जो होइ ताहि मूरख ठहरावत।
धर्मवृत्ति मन माहिं ताहि दंभी करि गावत॥
अति विचित्र जो होइ ताहि कपटी कहि बोलत।
राखै सुरता अंग ताहि पापी कहि तोलत॥
विक्रमी मीत प्रिय वचन सौं रंक तेज लंपट कहत।
पंडित लबार कहि दुष्ट जन गुन कौ तजि औगुन गहत॥ २१॥

जाति रसातल जाहु जाहु गुन ताहू के तर।
परौ सिला पर सील अग्नि मैं जरौ सु परिकर॥
सूरा तन के सीस वज्र वैरिन कौ वरसहु।
एक द्रव्य बहु भाँति रैनि-दिन घन ज्यौं सरसहु॥
जा बिना सबै गुन तृनहि सम कछु कारज नहि करि सकहि।
कंचन अधीन सब सौज गुन्य बिन कंचन जग अकथकहि॥२२॥

कुंडलिया

जैसे काहू सर्प कौ छबरे[1] पकरि धरयौ सु।
मन माहीं मेल्यौ सु वह दे सिर फूटि परयौ सु॥
दे सिर फूटि परयौ सु भयौ पीड़ित अति कैदी।
इंद्री बहबल भूख पिटारी मूसै छेदी॥
वाही कौ भखि मांस छेद ह्वै निकरयौ ऐसे।
मन कौ तू थिर राखि करै प्रभु ऐसे जैसे॥ २३॥

दोहा

कर की मारी गैंद ज्यौं, लागि भूमि उठि आत।
सतपुरुषन की त्यौं बिपति, छिनही मैं मिटि जात॥ २४॥
जैसे कंदुक गिरि उठै, त्यौं नरबर छिन दुःख।
पापी दुख सों उठत नहिं रेत पिंड ज्यौं मुक्ख॥ २५॥
पुत्र चरित, तिय-हित-करन, सुख दुख मित्र समान।
मन-रंजन तीनौं मिलैं, पूरब पुन्यहिं जान॥ २६॥

सोरठा

सतपुरुषन की रीति, संपति मैं कोमलहि मन।
दुख हू मैं इह नीति, वज्र-समानहि होत तन॥ २७॥
विद्याजुत ही होइ, तऊ दुष्ट तजि दीजियै।
सर्प जु मनिधर कोइ, भयकारी कह कीजियै॥ २८॥

कुंडलिया

पानी पय सौं मिलत ही जान्यौ अपनौ मित्त[2]।
आप भयौ फीकौ चहै जल कौ कियौ सुचित्त।
जल कौ कियौ सुचित्त तपत पय कौ जब जानी।
तब अपनौ तन वारि[3] वारि[4] मन प्रीतिहि आनी॥

---

(१) छबरी = डलिया, पिटारी। (२) मित्त = मित्र। (३) [illegible]ारि = निछावर करके। (४) वारि = जल।

उफनि चल्यौ मधि अग्नि स्वाति-जल छिरकत ठानी।
सतपुरुषन की प्रीति-रीति पय ज्यौं अरु पानी ॥ २९ ॥

छप्पै

करत साधु कौ दुष्ट मूढ़ पंडित ठहरावत।
करत मित्र कौ सत्रु अमृत कौ विष करि गावत ॥
नृपति-सभा कौ नाम चंडिका देवी कहियै।
ताकी सेवा कियै सकल सुख-संपति लहियै ॥
यह जो प्रसन्न ह्वैहै नहीं तौ गुन-बिद्या सब अफल।
सुनि बात चतुर नर तू इहै वाही सौं ह्वैहै सफल ॥ ३० ॥

कुंडलिया

कूकर[1] सिर कीरा परे गिरत बदन तैं लार।
बुरी बास बिकराल तन बुरो हाल बीमार ॥
बुरो हाल बीमार हाड़ सूके कौ चावत।
सुरपति हू की संक नैंक हूँ करत न सावत ॥
निडर महा मन माहिं देखि घुघरावत हूकर।
तैसै ही नर नीच निलज डोलत ज्यौं कूकर ॥ ३१ ॥
कूकर सूके हाड़ कौ मानत है मन मोद।
सिंह चलावत हाथ नहिं गीदर आए गोद ॥
गीदर आए गोद आँखिहू नाहिं उघारै।
महामत्त गजराज दौरि कै कुंभ बिदारै ॥
ऐसे ही नर बड़े बड़ो कृत करत दुहूँ कर।
करै नीचता नीच कूर कूछित[2] ज्यौं कूकर ॥ ३२ ॥

दोहा

पाप निबारत हित करत, गुन गनि औगुन ढाँकि।
दुख मैं राखत देत कछु, सतमित्रनु ये आँकि ॥ ३३ ॥

---

(१) कूकर = कुत्ता। (२) कूछित = कुत्सित।

माही[1] जल मृग के सु तृन, सज्जन हित कर जीव।
लुब्धक धीवर दुष्ट नर, विन कारन दुख कीव ॥ ३४ ॥

सोरठा

तवै बूँद ह्वै छीन, कमल-पत्र तैसी रहै।
मुक्ता सीपहिं कीन, थान मान अपमान ह्वै ॥ ३५ ॥
कमलन डारै खोइ, कोप करै विधि हंस पै।
पय पानी सँग होइ, जुदे करै लै सकत नहिं ॥ ३६ ॥

दोहा

विस्व करै विधि हरि दसहुँ, संकट सिव कर भीक।
रवि नभ नापत कर्म-वस, करत प्रनामहि ठीक ॥ ३७ ॥
पहुप[2]-गुच्छ सिर पर रहै, कै सूखै बन ठाहिं।
मान-ठौर सतपुरुष रहि, कै दुख सुख घर माहिं ॥ ३८ ॥
चुप गूँगो लापर वचन, निकट ढीठ जड़ु दूरि।
छमा हीन परिहार खल, सेवा कष्टहि पूरि ॥ ३९ ॥

छप्पै

नीचे ह्वैकै चलत होत सबतैं ऊँचै अति।
परगुन कीरति करत आप गुन ढाँपत इह मति ॥
आतम-अर्थ विचारि करत निसिदिन परमारथ।
दुष्ट दुर्बचन कहत छिमा करि साधत स्वारथ ॥
नित रहै एकरस सत्रन सौं बचन कोप करि कहत नहिं।
ऐसे जु संत या जगत मैं पूजाबस वे कौसुलहिं ॥ ४० ॥
भयौ लोभ मन माहि कहा तब औगुन चहियै।
निंदा सबकी करत तहैं सब पातक लहियै ॥

---

(१) माही = मछली। (२) पहुप = पुष्प, कुसुम।

सत्य वचन कहा तप्प[1] सुची मन तीरथ जानहु।
होत सजनता जहाँ तहाँ गुन प्रगट प्रमानहु॥
जस जहाँ कहा भूखन चहत सद विद्या जहँ धन कहा।
अपजसहि छयौ या जगत मैं तिन्हैं मृत्यु याही महा॥ ४१॥
रहै उघारे मूँड़ वार हू तापर नाहीं।
तप्यौ जेठ को घाम वील[2] की पकरी छाहीं॥
तहाँ वीलफल एक सीस पै परयौ सु आकै।
फूटि गयौ सु कपाल पीर वाढ़ी तन ताकै॥
सुख-ठौर जानि विरम्यौ सु वह तहाँ इते दुख कौ सहत।
निरभाग पुरुष जित जात तित वैर-विपति अगनित लहत॥ ४२॥

दोहा

विद्या आकृत[3] सील कुल, सेवा फल नहिं देत।
फलत कर्म हू समय मैं, ज्यौं तरु फलन समेत॥ ४३॥

कुंडलिया

मंडन है ऐश्वर्य कौ, सज्जनता सनमान।
बानी सजम सूरता, मंडन कौ धन-दान॥
मंडन कौ धन-दान ग्यान मंडन इंद्री-दम।
तप-मंडन अक्रोध विनय-मंडन सोहत सम॥
प्रभुता-मंडन मान धर्म-मंडन छल-छंडन।
सबहिन मैं सिरदार सील इह सबकौ मंडन॥ ४४॥

छप्पै

उत्तम नर पर-अर्थ करत स्वारथ कौ त्यागत।
साधारन पर-अर्थ करत स्वारथ अनुरागत॥

---

(१) तप्प=तप। (२) वील=विल्व, वेल (फल)। (३) आकृत=आकृति।

दुष्ट जीव निज काज करत पर-काज विगारत।
वै नहिं जाने जात रूप चौथो जे धारत॥
तिन कौन हेत निज काज कछु वोरन[1] के स्वारथ हरत।
तिनकौ न दरस छिन देहु प्रभु बात सुनत ही चित डरत॥ ४५॥

दोहा

जड़ताई मति की हरति, पाप निवारति अंग।
कीरत सत्य प्रसन्नता, देत सदा सतसंग॥ ४६॥

कुंडलिया

जानै पर के-गुन सबै महत पुरुष कौ संग।
बिद्या अपनी भारजा तिनमैं मन कौ रंग॥
तिनमैं मन कौ रंग भक्ति सिव की दृढ़ राखै।
गुरु-अग्या मैं नम्र रहै दुष्टन नहिं भाखै॥
ब्रह्म-ग्यान चित माहिं दमन इंद्रिय-सुख मानै।
लोक-बाद की संक पुरुष ते नृप सम जानै॥ ४७॥

छप्पै

ज्यौं दरपन प्रतिबिंब हाथ मैं आवत नाहीं।
त्यौं नारिन कौ हृदय कठिन ऊपर अरु माहीं॥
दुर्गम गिरि समभाव विषम जानत नहिं कोऊ।
कमलपत्र पर चपल जलहि त्यौं चित-गति सोऊ॥
सब नारि नाम इनकौ कहत विष-अंकुर की बेलि इह।
निसि-द्यौस दोषमय देखियतु कहा कहौं अतिही अगह॥ ४८॥
तृष्णा कौ तजि देहु छिमा कौ भजन करहु नित।
दया हृदय मैं धारि पाप सौं राखि दूरि चित॥
सत्य बचन मुख बोलि साधु पदवी जिय धारहु।
सत पुरुषन की सेव नम्रता अति बिस्तारहु॥

(१) वोरन=(औरन) औरों का।

सब गुन सु आपने गुप्त करि कीरति परिपालन करहु।
करि दया दुखित नर देखिकै संत रीति इह अनुसरहु ॥ ४९ ॥
भयौ सकुचित गात दंत हू उखरि परे महि।
आँखिन दीसत नाहिं बदन तैं लार परत ढहि ॥
भई चाल बेचाल हाल बेहाल भयौ अति।
बचन न मानत बंधु नारिहू तजी प्रीति-गति ॥
यह कष्ट महा दिय बृद्धपन कछु मुख तैं नहिं कह सकत।
निज पुत्र अनादर करि कहत यह बूढो यौंही बकत ॥ ५० ॥

दोहा

कारज नीकौ अरु बुरौ, कीजै बहुत विचारि।
किए तुरत नाहीं बनै, रहत हिये मैं हारि ॥ ५१ ॥
हाड़ देखि कै तजत तिय, ज्यौं कोली कौ कूप।
त्यौंही धौरे[1] केस लखि, बुरो लगत नर-रूप ॥ ५२ ॥

छप्पै

चरी लसनियाँ माहिं तिलन की खल कौ धारत।
रचि पारस कौ चूल्हि मलय कौ ईंधन दाधत ॥
कोदौ-निपजन-काज खात घनसारहि डारत।
तैसै ही नरदेह पाइ बिषया विस्तारत ॥
इह कर्मभूमि कौं पाइकै जे नहिं जप तप व्रत करहिं।
वे मूढ़ महा नर जगत मैं पाप-टोप सिर पर धरहिं ॥ ५३ ॥

दोहा

बन जल तृन अरु अग्नि मैं, गिरि समुद्र के मध्य।
निद्रा मद ठौरहि कठिन, पूरब पुन्यहि सिध्य ॥ ५४ ॥

---

(१) धौरे = धवल, श्वेत।

बन पुर ह्वै जग मित्र ह्वै, कष्ट भूमि कै रत्न।
पूरब पुन्य पुरूष कौ, होत इतै बिन जत्न ॥ ५५ ॥
बूड़ि समुद अरु मेरु चढ़ि, सत्रु जीति ब्यापार।
खेती विद्या चाकरी, खग लँघि भावी सार ॥ ५६ ॥

कुंडलिया

हिमगिर सरधुनि कै कहत कहा कियौ मैं नाक[1]।
सहिबौ हो निज सीस पै, इंद्र-बज्र-परिपाक ॥
इंद्र-बज्र-परिपाक अग्नि-ज्वाला मैं जरिबौ।
नीकी है सब भाँत उहा सनमुख ह्वै मरिबौ ॥
दुरयौ सिंधु कै माहिं कहो कौलौं ह्वैहै थिर।
निज कुल जायौ मोहि पिता नहिं जान्यौ हिमगिर ॥ ५७ ॥

छप्पै

सुरगुरु सेनाधीस सुरन की सेना जाकै।
सस्त्र हाथ लिय बज्र स्वर्ग सो दृढ़ गढ़ ताकै ॥
ऐरावत-असवार - प्रभू को परम अनुग्रहि।
एती संपति-सौंज-सहित सोहत सुर इंद्रहि ॥
सो जुद्ध माहिं दानवन सौं होत पराजय खोय पत।
सामा-समाज सबही बृथा सबसौं अद्भुत दैवगति ॥ ५८ ॥

दोहा

फलहू पावत कर्म तैं, बुद्धि कर्म-आधीन।
तद्यपि बुद्धि बिचारि कै, कारज करत प्रबीन ॥ ५९ ॥
आलस बैरी बसत तन, सब सुख कौ हरि लेत।
त्यौंही उद्यम बंधु सौं, किए सकल सुख देत ॥ ६० ॥

---

(१) नाक = पर्वत।

सोरठा

दान भोग अरु नास, तीनि भाँति धन जातु है।
करत दोइ कौ त्रास, बास नास कौ तीसरौ ॥ ६१ ॥

छप्पै

महा अमोलक रत्न नाहिं रीझत सुर तिनसौं।
महा-हलाहल जानि प्रान डरपत नहि जिनसौं॥
रहत चित्त की वृत्ति एक अमृत सौं अतिही।
तैसै ही नर धीर काज निश्चै करि मतिही॥
सबही सौं हित अरु गुन सहित ऐसौ कारिज[1] मन धरत।
ताको जु अर्थ अमृत लहत कोऊ दुख कौ नहिं करत ॥ ६२ ॥

कुंडलिया

राजा निसि अरु दिवस कौ रवि-ससि तेज-निधान।
पाँचौ ग्रह इन सम नहीं तातैं तजे निदान॥
तातैं तजे निदान आनि इनहीं सूँ अकरत।
रह्यौ सीस कौ राह[2] चाह करि जब तब पकरत॥
ऐसै ही नर धीर करत हू करत सुकाजा।
गिरत परत रन माहिं सुभट पहुँचत जहँ राजा ॥ ६३ ॥

कंकन तैं सोहत न कर कुंडल तैं नहिं कान।
चंदन तैं सोहत न तन जान लेहु यह जान॥
जान लेहु यह जान दान तैं पानि लसत है।
कथा-स्रवन तैं कान परम सोभा सरसत है॥
परमारथ सौं देह दिपत चंदन सौं टंक न।
ये सुकृति सब राखि पहरिए कुंडल कंकन ॥ ६४ ॥

---

(१) कारिज = कार्य। (२) राह = राहु ग्रह।

दोहा

सोई पंडित सो कथन, सो गुणज्ञ बलवान।
जाकै धन सोई सुघर, सुंदर सूर सुजान ॥ ६५ ॥
सबसौं ऊँचे सुकबि जन, जानत रस को सोत।
जिनके जस की देह कौ, जरा-मरन नहिं होत ॥ ६६ ॥
भाल लिख्यौ बिधिना सु वह, घटि बढ़िहै कछु नाहिं।
मरुथल कंचन मेरु जल, समुद कूप घट माहिं ॥ ६७ ॥
स्वान लेत लोए लपकि, तापर करत गरूर।
सो खावत अरु आपमन, बीर धीर गजपूर ॥ ६८ ॥
धेनु-धरा को चहत पय, प्रजा बच्छ करि मानि।
याकौ परिपोषन किए, कल्पवृच्छ सम जानि ॥ ६९ ॥

छप्पै

साँची है सब भाँति सदा सब बातन झूँठी।
कबहुँ रोस सौं भरी कबहुँ प्रिय बचन अनूठी ॥
हिंसा को डर नाहिं दयाहू प्रगट दिखावत।
धन लैबे की बानि खरचहू धन कौ भावत ॥
राखत जु भीर बहु नरन की सदा सवाँरे बहत गृह।
इहि भाँति रूप नाना रचत गनिका सम नृप-नीति इह ॥ ७० ॥

दोहा

जे अति क्रोधी भूप ते, काहू सौं न कृपाल।
होम करत हू दुजन ज्यौं, दहत अग्नि की ज्वाल ॥ ७१ ॥
दयाहीन विनु काज रिपु, तस्करता परिपुष्ट।
सहि न सकत सुख बंधु कौ, इह सुभाव सौं दुष्ट ॥ ७२ ॥
बिधि बिपत्ति दै नरवरन, करते धीरज दूरि।
दूरि होत धीरज न ज्यौं, प्रलय-सिंधु गिरि पूरि ॥ ७३ ॥

तिय-कटाच्छ सरसत न चित, दहत न कोपहि आगि ।
लोभ पासि सेवत न मन, वे विरले हैं जागि ॥ ७४ ॥

छप्पै

दियौ जनावत नाहिं गए घर करत जु आदर ।
हित करि साधत मौन कहत उपकार-बचन बर ॥
काहू कौ दुख होइ कथा वह कबहुँ न भाखत ।
सदा दान सौं प्रीति नीति-जुत संपति राखत ॥
यह खड्ग-धार व्रत धारिकै जे नर साधत मन-बचन ।
तिनकौ सु उहाँ इहलोक मैं पूरि रह्यौ जस ही-रवन ॥ ७५ ॥

दोहा

छीनपत्र पल्लवित तरु, छीन चंद बढ़वार ।
सतपुरुषन कै विपति छिन, संपति सदा अपार ॥ ७६ ॥
नम्र होत तरु भार-फल, जल भरि नमत घटा सु ।
त्यौं संपति करि सतपुरुष, नवैं सुभाव छटा सु ॥ ७७ ॥
धीरज गुन ढाँक्यौ चहै, नाहिं ढकत को ढाल ।
तैसैं नीचौ अग्नि-मुख, ऊँची निकसत झाल[1] ॥ ७८ ॥
अप्रिय बचन दरिद्रता, प्रीति-बचन धनपूर ।
निज तिय रति निंदारहित, वे महिमंडल सूर ॥ ७९ ॥
ससि कुमुदिनि प्रफुलित करत, कमल विकासत भान ।
बिन माँगे जल देत घन, त्यौंही संत सुजान ॥ ८० ॥
धीर साहसी होइ सो, काज करत झुकि झूमि ।
सूरबीर अरु सूर[2] इह, लाँघि जात रनभूमि ॥ ८१ ॥
गिरि तैं गिरि परिबौ भलौ, भलौ पकरिबौ नाग ।
अग्नि माहिं जरिबौ भलौ, बुरौ सील कौ त्याग ॥ ८२ ॥

---

(१) झाल = ज्वाला । (२) सूर = सूर्य ।

छप्पै

अग्नि होत जल रूप सिंधु डाबर[1] पद पावत।
होत सुमेरहु सेर[2] स्यंघ[3] हू स्यार कहावत॥
पुहुप-माल सब ब्याल[4] होत बिषहू अमृत सम।
बनहू नगर समान होत सब भाँति अनूपम॥
सब सत्रु आइ पाइन परत मित्रहु करत प्रसन्न चित।
जिनके सु पुन्य प्राचीन सुभ तिनकै मंगल होत नित॥ ८३॥

दोहा

बचन बान सम श्रवन सुनि, सहत कौन रिस त्यागि।
सूरज-पद-परिहार॰ तैं, पाहन उगलत आगि॥ ८४॥

छप्पै

चाकर हू दस-बीस नाहिं जो अग्या राखत।
जाति-गोत के लोग कबहुँ भोजन नहिं चाखत॥
अपनौ निज परिवार नाहिं तेहू प्रसन्नमन।
बिप्रन हू कौ दान दैन कौ मिलत नाहिं धन॥
कछु करि न सकत हित मित्र कौ, रंग राग नहिं नृत्यगति।
ए छहौं बात जौ नाहिं तौ कौन अर्थ सेवत नृपति॥ ८५॥

कमल-तंतु सौं बाँधि ब्याल बस करन उमाहत।
सिरिस-पुहुप के वार बज्र कौ वेध्यौ चाहत॥
बूँद सहत की डारि समुद कौ खार मिटावत।
तैसै ही हित-बैन खलनु के मनहिं रिझावत॥

---

(१) डाबर = कूप। (२) सेर = पत्थर का टुकड़ा। (३) स्यंघ = सिंह। (४) ब्याल = सर्प।

वे नीच अपनपौ तजत नहि ज्यौं भुजग त्यौं दुष्ट जन।
पय प्याय सुनावत राग वहु डसिवे ही मैं रहत मन ॥ ८६ ॥

दोहा

रहै अकेले हित करै, मूरखता को पोष।
भूषन पंडित-सभा बिच, मौन भरे गुन दोष ॥ ८७ ॥
दुष्ट करम निसि-दिन करत, कुल-मृजाद सौं हीन।
संपति पावत नीच नर, होत विषय-सुख-लीन ॥ ८८ ॥

कुंडलिया

विद्या नर को रूप प्रगट विद्या सुगुप्त धन।
विद्या सुख-जस देत संग विद्या सुबंधु जन ॥
विद्या सदा सहाय देवता हू विद्या यह।
विद्या राखत नाम लसत विद्या ही तैं ग्रह[1] ॥
सब भाँति सबन सौं अति बड़ी विद्या सौं ब्रह्मा कहत।
शिव विष्नू विद्या बस करत नृपति-न्याय विद्या चहत ॥ ८९ ॥

सज्जन सौं हित-रीति दया परजन सौं राखहु।
दुर्जन सौं सम भाव प्रीति संतन प्रति भाखहु ॥
कपट खलन सौं भाखि बिनै राखौ बुधजन सौं।
छिमा गुरुन सौं राखि सूरता बैरीगन सौं ॥
धूरतता रखि जुवतीन सौं जौ तू जग बसिवो चहै।
अतिही कराल कलिकाल मैं इन चालिन मैं सुख रहै ॥ ९० ॥

करत करनि तैं दान सीस गुरु-चरननि राखत।
मुख तैं बोलत साँच भुजनि सौं जय अभिलाखत ॥

---

(१) ग्रह = गृह, घर।

चित की निर्मल वृत्ति श्रवन मैं कथा-श्रवन रति।
निसि-दिन पर-उपकार-सहित सुंदर तिनकी मति ॥
वे बिना सौंज संपति तऊ सोहत सकल सिंगार तन।
उनकौ जु संग नित देहु प्रभु तौ इह सुधरै चपल मन ॥ ९१ ॥

धारि धरा कौ सीस सेस[1] अति करयौ पराक्रम।
सेस सहित सब भूमि कमठ[2] धरि रह्यौ बिना श्रम ॥
कमठ सेस अरु भूमि-भार बाराह रह्यौ धरि।
इन सबहिन को भार एक जल के आश्रित करि ॥
एक सु इक बिक्रम अधिक करत बड़े अद्भुत सुकृत।
तिनके चरित्र सीमा-रहित अति बिचित्र राखत सुव्रत ॥ ९२ ॥

दोहा

पुन्य पराक्रम करि मिली, रहति भुजन के माहिं।
प्रौढ़ा बनिता लौं बिजय, छाड़यौ चाहत नाहिं ॥ ९३ ॥
करत नाहि उपदेस कौ, तऊ करौ सतसंग।
सतपुरुषन की बासहू, देत चित्त कौ रंग ॥ ९४ ॥

कुंडलिया

मैया लज्जा गुनन की, निज मैं व्यास समानि।
तेजवंत तन कौ तजत, याकौ तजत न जानि ॥
याकौ तजत न जानि सत्यव्रतवारे हू नर।
करत प्रान कौ त्याग तजत नहि नैक बचन वर ॥
टेक आपनी राखि रह्यौ वह दसरथ रैया।
राखी बलि हरिचंद टेक इह जस की मैया ॥ ९५ ॥

---

(१) सेस = शेष (नाग)। (२) कमठ = कच्छप।

छप्पै

महा भूमि कौ भार कहा कच्छपहि न लागत।
निसि-दिन भटकत भान कहौ दुख मैं नहिं पागत॥
हार रहत नहिं सूर कमठ हू भार न डारत।
तौ कैसैं नर धीर बीर अपनाय बिसारत॥
जो लेत भार निज भुजन पर ताहि निबाहत हित-सहित।
सतपुरुषन कौ धर्म यह संचित करि राख्यौ सुबित॥ ९६॥

दोहा

सनमुख आए सत्र[1] कौ, जीत लेत धन-धाम।
मरिबे हू मैं स्वर्ग-सुख, होत स्वामि कौ काम॥ ९७॥

कुंडलिया

कामी कवि दोऊ भए औगुन गुनहु समान।
भोग दूरि तैं मन धरत, कवि गुन अर्थ बखान॥
कवि गुन अर्थ बखान वचन कामी हित बोलत।
सबद ब्याकरन-हीन तिन्हैं कवि कबहुँ न तोलत॥
बिषयी धरि पद मंद सुकबिहु मंद-पद-गामी।
दोष-रहित इकलोइ भुजन भरि पकरत कामी॥ ९८॥

दोहा

जलधर जल बरषत अतुल, पिकहू बूँद न लेत।
जेतौ जाके भाग मैं, ताहि तितौ ही देत॥ ९९॥

छप्पै

करत उबटनौ अंग न्हाइकै अतर लगावत।
चंदन-चरचित गात बसन बहु भाँति बनावत॥

---

(१) सत्र = शत्रु।

पहिरि फूल की माल रतन के भूखन साजत।
ये नहिं सोभा देत नैक बोलत जे लाजत॥
सबही सिँगार को सार यह बानी बरसत अमृत-सर।
तिहिं सुनत सबन के मन हरत रीझि रहत नित नृपतिबर॥१००॥

दोहा

नीति-मंजरी पढ़त ही, प्रगट होत है नीति।
ब्रजनिधि के परताप इह, करी प्रताप प्रतीति॥ १०१॥

इति श्रीमन्महाराजाधिराज महाराज राजेंद्र श्री
सवाई प्रतापसिंहदेव-विरचितं नीति-
-मंजरी संपूर्णम् शुभम्

(१३) शृंगार-मंजरी

छप्पै

चंद कलामय बाति[1] कांति बहु भाँतिन बरसत।
जारयौ काम-पतंग अंग बन भयौ ज परसत॥
महा मोह अज्ञान हृदय को तिमिर नसावत।
अपनौ आतम-रूप प्रगट करि ताहि दिखावत॥
दुति दिपति अखंडित एकरस अद्भुत अनुलित अधिकबर।
जगमगत संत-चित-सदन मैं ज्ञान-दिपति जय जयति हर॥ १॥

दोहा

सुभ कर्मन के उदय मैं, ग्रह[2] तिय[3] बित[4] सब ठौर।
अस्त भयँ तीनौं नहीं, ज्यौं मुक्ता बिन डोर॥ २॥
दीपग[5] बरत बिवेक कौ, तौ लौं या चित माहिं।
जौ लौं नारि-कटाच्छ-पट[6]-झपकौ[7] लागत नाहिं॥ ३॥
छीन लंक अति पीन कुच, लखि तिय के दृग-तीर।
जे अधीर नहिं करत मन, धन्य धन्य वे धीर॥ ४॥

छप्पै

करत जोग-अभ्यास आप मन बसि करि राख्यौ।
पारब्रह्म सौं प्रीति प्रगट जिन इह सुख चाख्यौ॥
तिनकौ तिय कै संग कहा सुख वा तन ह्वैहै।
कहा अधर-मधु-पान कहा लोचन-छबि छ्वैहै॥

---

(१) बाति=बत्ती। (२) ग्रह=गृह। (३) तिय=त्रिया, स्त्री। (४) बित=वित्त, जीविका। (५) दीपग=दीपक। (६) पट=वस्त्र। (७) झपकौ=झोंका।

मुख-कमल-स्वास सौं गंध कहा कहा कठिन कुच को परस ।
परिरंभन चुबनहुँ कह जोगी जन इकरस सरस ॥ ५ ॥

कुंडलिया

पंडित जन जब-तब कहत तिय तजिबे की बात ।
बकत बृथा बकवाद वह तजी नैक नहि जात ॥
तजी नैक नहिं जात गात-छबि कनक-बरन बर ।
कमलपत्र सम नैन बैन बोलत अमृत झर ॥
सोहत मुख मृदु हास अंग आभूषन-मंडित ।
ऐसी तिय कौ तजै कौन धौं ऐसौ पडित ॥ ६ ॥

दोहा

मद-गज-कुंभहि सिंह-सिर, करै सख-परिहार ।
मदन राजि जीतै जु अस पुरुष नहीं संसार ॥ ७ ॥
रस मैं त्यौंही रोस मैं, दरसत ओप अनूप ।
बोलनि चलनि चितौनि मैं बनिता बंधन-रूप ॥ ८ ॥
नूपुर कंकन किंकिनी, बोलत अमृत बैन ।
काको मन बस करत नहिं मृगनैननि के नैन ॥ ९ ॥
तीन लोक तिहुँ काल मैं, महा मनोहरि नारि ।
दुख हू की दाता इहै, देखौ सोचि विचारि ॥ १० ॥
कामिनि कसकत सहज मैं, मूरख मानत प्यार ।
सहज सुगंधित कुमुदिनी भौंरा अंध गँवार ॥ ११ ॥
अस्त्र काम कौ कामिनी, जौ नहिं होतो हाथ ।
तौ कहूँ सिर न नवावतो, तप करि होत सुनाथ ॥ १२ ॥
बन-मृगीन के दैन कौ, हरे हरे तृन लेहु ।
अथवा पीरे पान कौ, बीरा बधुवन देहु ॥ १३ ॥

जद्दिप[1] नीरस नीर अति, जुवतीजन को संग।
तऊ पुन्य तैं पाइयै, महा मनोहर अंग ॥ १४ ॥
नीति-बचन सुनि अनखि तजि, करहु काज लहु भेव।
कै तै। सेवौ गिरिबरन, कै कामिनि-कुच सेव ॥ १५ ॥
औरौ बात सुनी सबै, मुख्य बात ये दोय।
कै तिय-जोबन मैं रमै, कै बनबासी होय ॥ १६ ॥

छप्पै

करि करि बाँके नयन कहा तू हमहिं निहारति।
करत वृथा ही खेद बादि तन बसन सवाँरति ॥
हम बनबासी लोग बालपन खोयौ बन मैं।
तजी जगत की आस कामना रही न मन मैं ॥
तृन के समान जानत जगत मोह-जाल तोर्‌यौ तमकि।
आनंद अखंडित पाय हम रहे ज्ञान की छाक छकि ॥ १७ ॥

दोहा

कह कारन डारत दृगनि, कमलनयन इह नारि।
मोह काम मेरे नहीं, तऊ न तन चित हारि ॥ १८ ॥
तृष्ना-सिंधु अगाध कौ, कोउ न पावत पार।
कामिनि जोबनहीन परि, प्यार न छोड़त यार ॥ १९ ॥
घटा चढ़ी सिर मोर गिरि, हरी भई सब भूमि।
बिरही दृग डारै कहाँ, देखि रह्यौ जिय घूमि ॥ २० ॥

छप्पै

अल्प सार संसार तहाँ द्वै बात सिरोमनि।
ग्यान-अमृत के सिंधु मगन ह्वै रहै बुद्ध बनि ॥

(१) जद्दिप = यद्यपि।

नित्यानित्य-बिचार-सहित सब साधन साधै।
कै इह नवढ़ा[1] नारि धारि उर मैं आराधै॥
चैतन्य मदन अंकित परसि ससकत कसकत करत रिस।
रस मसकत बिलसत हँसत इहि बिधि बीते दिवस-निस॥२१॥

छीन लंक कुच पीन नैन पंकज से राजत।
भौंहैं काम-कमान चंद सौं मुख-छबि छाजत॥
मद-गयंद[2] की चाल चलत चितवत चित चोरत।
ऐसी नारि निहारि हाथ पंडित जन जोरत॥
अतिही मलीन सब ठौर वह, चित-गति भरी अनेक छल।
ताकौ सु प्रानप्यारी कहत अहो मोह-महिमा प्रबल॥२२॥

कबहुँ भौंह कौ भंग कबहुँ लज्जा-जुत दरसत।
कबहूँ ससकत संकि कबहुँ लीला रस बरसत॥
कबहुँक मुख मृदु हास कबहुँ हित-बचन उचारत।
कबहुँक लोचन फेरि चपल चहुँ ओर निहारत॥
छिन छिन चरित्र सुबिचित्र करि भरे कमल जिमि दसहुँ दिसि।
ऐसी अनूप नारी निरखि हरखित रहिए दिवस-निसि॥२३॥

करत चंद-छबि मंद बदन अद्भुत छबि छाजत।
कमलन बिहसत नैन रैन-दिन प्रफुलित राजत॥
करत कनक दुतिहीन अंग आभा अति उमगत।
अलकन जीते भौंर कुचन करि-कुंभ[3] किए हत॥
मृदुता सरारि मारे सुमन[4] मुख-सुबास मृगमद-कदन।
ऐसौ अनूप तिय-रूप लखि छाँह धूप नहिं गिनत मन॥२४॥

---

(१) नवढ़ा = नवोढ़ा। (२) मद-गयंद = मत्त गजेंद्र। (३) करि-कुंभ = हाथी का मस्तक। (४) सुमन = पुष्प।

दोहा

नहिं बिख नहिं अमृत कहूँ, एक तिया तू जानि।
मिलिवे मैं अमृत-नदी, बिछुरे बिख की खानि॥ २५॥

छप्पै

करत चतुरता भौंह नैनहू नचत चितैवो।
प्रगटत चित कौ चाव चाव सौं मृदु मुसिकैवो॥
दुरत मुरत सकुचात गात अरसात कहावत।
उझकत इत-वत[1] देखि चलत ठठकत छबि छावत॥
ये हैं आभूखन तियन के अंग अंग सोभा धरन।
अरु ये ही सस्र समान हैं जुव[2]-जन-मन-मृग-बध-करन॥२६॥

दोहा

बिहसत बरसत फूल से, दरसत ओप अलीक।
परसत ही मति गति हरत, रमनी अति रमनीक॥ २७॥
सुधि आए सुधि-बुधि हरत, दरसत करत अचेत।
परसत मन मोहित करत, यह प्यारी कह[3] हेत॥ २८॥

छप्पै

परम भरम कौ ठौर भौंर है गूढ़ गर्ब कौ।
अनुचित कृत कौ सिधु सदन है दोस अरब कौ॥
प्रगट कपट कौ कोट खेत अप्रतीति करन कौ।
सुरपुर कौ बटपार नरकपुर-द्वार नरन कौ॥
यह जुवति-जंत्र कौनै रच्यौ महा अमृत बिष सौं भरयौ।
थिर-चर नर-किन्नर सुर-असुर सबके गल बंधन करयौ॥२९॥

---

(१) इत-वत=इत-उत, इधर उधर। (२) जुव=युवा। (३) कह=किस (षष्ठी विभक्ति का चिह्न)।

दोहा

इंद्री-दम लज्जा विनय, तौ लौं सब सुभ कर्म।
जौ लौं नारी-नयन-सर, छेदत नाहीं मर्म ॥ ३० ॥

अधर-मधुर-मधु सहित मुख, हुतो सबन सिरमौर।
सो अब बगरे फलन ज्यौं, भयौ और सौं और ॥ ३१ ॥

छप्पै

जो असार संसार जानि संतोष न तजते।
भीर-भार के भरे भूप कौ भूलि न भजते ॥
बुद्धि-विवेक-निधान मान अपनौ नहिं देते।
हुकम बिरानौ राखि लाख संपति नहिं लेते ॥
जौ पै नहिं होती ससिमुखी मृगनैनी केहरि-कटी।
छबि-जटी छटा की सी छटी रस लटी छूटी छटी ॥३२॥

मृगनैननि के हाथ अरगजा चंदन लावत।
छुटत फुहारे देखि पुहुप-सज्या बिरमावत ॥
चारु चाँदिनी चंद मद मारुत को ऐबो।
बाजत बीन प्रवीन संग गायन को गैबो ॥
चाँदिनी उँजेरी महल की निरखत चित-गति अति डरत।
पुरुषन कौ ग्रीखम बिखम मैं ये मद मदनहि बिस्तरत ॥३३॥

सब ग्रंथन के ग्यानवान अरु नीतिवान नर।
तिनमैं कोऊ रहत मुक्ति-मारग मैं तत्पर ॥
सबकौ देत बहाइ बंकनयनी[1] यह नारी।
जाकी बाँकी भौंह नचत अतिही अति प्यारी ॥
यह कूँची[2] नरक-कपाट की खोलन कौं उमकत फिरत।
जिनकौ न लगत मन हगन मैं वे भवसागर कौ तिरत ॥३४॥

---

(१) बंक=टेढ़ी। (२) कूँची=कुंजी, ताली।

त्रिवली तरल तरंग लसत कुच चक्रवाक[1] सम।
प्रफुलित आनन कंज नारि यह-नदी मनोरम॥
महा भयानक चाल चलत भव-सागर सनमुख।
हाथ धरत ही ऐंचि जात जित कौ अपने रुख॥
संसार-सिंधु चाहत तरौ तौ तू यासौं दूरि रहि।
ताकौ प्रवाह प्रति ही प्रबल नैक न्हातही जात बहि॥३५॥

कान निरंतर गान-तान सुनिबो ही चाहत।
लोचन चाहत रूप रैन-दिन रहत सराहत॥
नासा अतर-सुगंध गहत फूलन की माला।
तुचा चहत सुख-सेज, संग कोमल-तन बाला॥
रसना हू चाहत रहत रस, खाटे[2] मीठे चरपरे।
इन पंचन खाय प्रपंच सौं भूपन कौ भिच्छुक करे॥३६॥

सोरठा

जौ नहिं होती नारि तौ तरिबौ जग मैं सुगम।
यह लंबी तरवारि मारि लेत अधबीच ही॥ ३७॥

कुंडलिया

ए रे मन मेरे पथिक तू न जाय इहि ओर।
तरुनी-तन-बन-सघन मैं कुच-परबत बरजोर॥
कुच-परबत बरजोर चोर इक तहाँ बसतु है।
कर मैं लियै कमान बान पाँचौं बरसतु है॥
लूटि लेत सब सौंज पकरि करि राखत चेरे।
मूँदि नयन अरु कान चल्यौ तू कित कौ ए रे॥ ३८॥

---

(१) चक्रवाक=चकवा। (२) खाटे=खट्टे।

छप्पै

यह जोबन घन-रूप सदा सींचत सिँगार-तर ।
क्रीड़ा-रस को सोत चतुरता-रतन देत कर ॥
नारी-नयन चकोर चौपकी चंद बिराजत ।
कुसुमायुध कौ बंधु सिंधु सोभा कौ साजत ॥
ऐसौ यह जोबन पायकै जे नहिं धरत बिकार मन ।
वे धरम-धुरंधर धीरमति सूरसिरोमनि संत जन ॥३९॥

इंद्रिन कौ सुखधाम काम कौ मित्र महाबर ।
नरक-दुःख कौ देत मोह कौ बीज मनोहर ॥
ज्ञान-सुधाकर-सीस सजल सावन कौ बादर ।
नानाविध बकवाद करन कौ बड़ा बहादर ॥
सबही अनर्थ कौ मूल यह जोबन अव्रत कौ कवच ।
या बिना और को करि सकै सुंदर मुख पर स्याम कच ॥४०॥

कहा देखिबे जोग प्रिया कौ अति प्रसन्न मुख ।
कहा सूँघिकै सोंधि स्वास सौगंध हरत दुख ॥
कहा दीजिए कान प्रानप्यारी की बातन ।
कहा लीजिए स्वाद अधर के अमृत अघात न ॥
परसियै कहा ताको सुतन ध्यान कहा जोबन सुछबि ।
सब भाँति सकल सुख को सदन जानि सुजस गावत सुकबि ॥४

जातिहीन कुलहीन अंध कुत्सित कुरूप नर ।
जरा-ग्रसित कृसगात ललित-कुष्ठी अरु पाँवर[1]॥
ऐसौ हू धनवान होइ तौ आदर वाकौ ।
अपनौ गात बिछाय लेत रस सरबसु जाकौ ॥

---

(१) पाँवर = पामर, अधम ।

गनिका विवेक की वेलि कौ काटन करवारी[1] निरखि।
बचि रहैं बड़े कुलवंत नर रचत पचत मूरख हरखि ॥४२॥

सोरठा

गनिका के मृदु ओठ, को कुलीन चुंबन करै।
नट-भट-विट-ठग-ठाठ, पीक-पात्र है सबन कौ ॥ ४३ ॥

दोहा -

गनिका कनिका अगनि कौ, रूप-समाधि मजूत[2]।
होम करत कामी पुरुष, जोबन-धन आहूत ॥ ४४ ॥
रितु बसंत कोकिल-कुहक, त्यौंही पौन अनूप।
बिरह-विपत्त के परत ही, होत अमृत बिष-रूप ॥ ४५ ॥
बुद्धि बिबेक कुलीनता, तबही लौं मन माहिं।
काम-बान की अगनि तन, जौ लौं भभकत नाहिं ॥ ४६ ॥
बिधि-हरि-हर हू करत हैं, मृगनैनिन की सेव।
बचन-अगोचर चरित अति, नमो कुसुमसर देव ॥ ४७ ॥

कुंडलिया

कामिनि मुद्रा काम की, सकल अर्थ कौ हेत।
मूरख याकौ तजत हैं झूठे फल कौ हेत ॥
झूठे फल कौ हेत तजत तिनही कौ डाँड़ै।
गहि गहि मूँड़ै मूँड़ बसन बिन करि करि छाँड़ै ॥
भगुवा करि करि जात जटिल ह्वै जागति जामिनि।
भीख माँगिकै खात कहत हम छोड़ी कामिनि ॥ ४८ ॥

---

(१) करवारी=करवाल, तलवार। (२) मजूत=मजबूत।

दोहा

काम-कीर भव-सिंधु मैं, फंसी[1] डारी नारि।
मीन-नरन कौ गहि पचत, प्रेम-अग्नि कौ बारि ॥ ४९ ॥
मृगनैनी हँसि रहसि मैं, हित-बचनन सुख देत।
करत काम कौ उदित अति, कछु अद्भुत हरि लेत ॥ ५० ॥
केसरि सौं अँगिया सुँधी, बनी नयन की नोक।
मिली प्रानप्यारी मनौं, घर आयौ सुरलोक ॥ ५१ ॥

कुंडलिया

केसरि-चरचित पीन कुच ढरकत मुक्ता-हार।
नूपुर झनकत नचत दृग लचकत कटि सुकुमार ॥
लचकत कटि सुकुमार छुटी अलकैं छबि छलकैं।
मुरि मुरि मोरत गात जुरत बिछुरत सी पलकैं ॥
लसत हँसत सी भौंह फँसत चित देखत बेसरि।
अतुलित अद्भुत रंग अंग सी नाहिन केसरि ॥ ५२ ॥

दोहा

कामिनि कौ अबला कहत, वे मतिमूढ़ अचेत।
इंद्रादिक जीते दृगनि, सो अबला किहि हेत ॥ ५३ ॥
अरुन अधर कुच कठिन दृग भौंह चपल दुख देत।
सुथिर रूप रोमावली, ताप करत किहि हेत ॥ ५४ ॥
मन मैं कछु बातन कछू, नैनन मैं कछु और।
चित की गति कछु औरही, यह प्यारी किहि ठौर ॥ ५५ ॥
नारिन की निंदा करत, वे पंडित मतिहीन।
स्वर्ग गए तिनहूँ सुनैं, सदा अपछरा[2] लीन ॥ ५६ ॥

---

(१) फंसी=मछली पकड़ने की वंसी। (२) अपछरा=अप्सरा, स्वर्ग की वेश्या।

नारि बिरहनी तरु तरै, ढाढ़ी ससि सोभागि।
चंद-किरनि कौ चीरिकै, दूरि करत दुख पागि ॥ ५७ ॥

छप्पै

बिन देखे मन होत वाहि कैसे करि देखैं।
देखे ते चित होत अंग आलिंग विसेखैं॥
आलिंगन तैं होत याहि तनमय करि राखैं।
जैसे जल अरु दूध एकरस त्यौं अभिलाखैं॥
मिलि रहे तऊ मिलिबो चहत कहा नाम या विरह कौ।
बरन्यौ न जात अद्भुत चरित प्रेम-पाट की गिरह कौ॥ ५८ ॥

खुले केस चहुँ ओर फेरि फूलन कौ बरसत।
सद मद छाके नयन दुरत उघरत से दरसत॥
सुरत-खेद के स्वेद-कलित सुंदर कपोल गहि।
करत अधर-रस-पान परम अमृत समान लहि॥
वे धन्य धन्य सुकृती पुरुष जो ऐसे उरझत रहत।
हित भरे रूप जोबन भरे दंपति सुख-संपति लहत॥ ५९ ॥

कुंडलिया

जैहै नहिं जौ पथिक तौ भादौं मैं निज भौन[1]।
तौ तिय जियत न पाइहै करि जैहै वह गौन[2]॥
करि जैहै वह गौन पौन पुरवाई आए।
मोरन कौ सुनि सोर घोर घन के घहराए॥
देखत बन के फूल हूल हियरा मैं ह्वैहै।
चपला चमकत चाहि आहि करि करि मरि जैहै॥ ६० ॥

---

(१) भौन = भवन। (२) गौन = (गवन) चला जाना।

दोहा

गेह गए कह होतु है, जौ इह जीवत नाहिं।
जीवत है तौऊ कहा, घटा उठी नभ माहिं॥ ६१॥
जौ न होत सुख परसपर, विहरत सुरति समाज।
तौ वे दोऊ करतु हैं, काम निबाहन काज॥ ६२॥

छप्पै

ना ना करि गुन प्रगट करत अभिलाख लाज-जुत।
सिथिल होत धरि धीर प्रेम की इच्छा करि उत॥
निर्भय रस कौ लेत सेज रस खेतहि माहीं।
क्रीड़ा माहिं प्रबीन नारि सुकिया मनभाही॥
यह सुरत माहिं अतिही सुरति करत हरत चितगति टरै।
कुलवधू कामिनी केलि करि कलह काम की सब टरै॥६३॥

दोहा

जौ लौं नारी-नयन ढिग, तौ लौं अमृत-बेल।
दूरि भए तें जहर सम, लगत विरह के सेल॥ ६४॥
मंत्र दवा अरु आप[1] सौं, बेढब मिटै न बेद[2]।
काम-बान सौं भर्मि चित, कैसे मिटिहै खेद॥ ६५॥
कामिनिहूँ कौ काम यह, नैन सैन प्रगटात।
तीन लोक जीत्यौ मदन, ताहि करत निज हात॥ ६६॥
दीप अगनि मनि चंद्रमा, जगमग जोति सुढार।
मृगनैनी कामिनि बिना, लागत सबै अँधार॥ ६७॥
चंद्रकांति सन[3] मुख लसत, नीलम केसहि पास।
पुसपराग[4] सम कर लसैं, नारी रत्न-प्रकास॥ ६८॥

---

(१) आप = जल। (२) बेद = वेदना, पीड़ा। (३) सन = सदृश। (४) पुसपराग = पुष्पराग, पुखराज।

छप्पै

केस राहु सम जानि चंद सौं सोहत आनन।
पास रहे द्वै अर्क नैन, केतू अलकानन॥
मंद हास है शुक्र, बुधहि बानी कहि जानौ।
सुर-गुरु वाहि उरोज, करन मंगलहि बखानौ॥
अति मद चाल सोइ मंदगति[1], महामनोहर जुबति यह।
सबही फलदायक देखियतु, जाकौ सेवत नवौ ग्रह॥ ६९॥

दोहा

भौहैं कारी कुटिल अति, हैं नागिनी-समान।
फसत लसत ऐसी मनौं, फन करि दौरत खान॥ ७०॥
अति अद्भुत कमनैति तिय, कर मैं बान न लेत।
देखौ यह बिपरीति गति, गुन तैं बेधत चेत॥ ७१॥

छप्पै

अनुरागी जग माहिं एक संकर सरसानै।
पारबती अरधंग रहत निसि-दिन लपटानै॥
बीतरागहू एक प्रगट श्रीरिषभदेव बर।
तज्यौ तियन कौ संग सदा तप ही मैं ततपर॥
जड़ जीव और या जगत के मदन-महाठग के ठगे।
नहिं बिषय-भोग नहिं जोगहू यौंही डोलत डगमगे॥ ७२॥

दोहा

बिधिना द्वै अनुचित करी, वृद्ध नरन तन काम।
कुच ढरकत हू जगत मैं, जीवत राखी बाम॥ ७३॥
मंत्र जंत्र औषधिन तैं, तजत सर्प बिष लाग।
यह क्यौंहू उतरत नहीं, नारि-नयन कौ नाग॥ ७४॥

(1) मंदगति = शनिग्रह।

बिछुरन ही मैं मिलन है, जौ मन माहिं सनेह।
बिना नेह के मिलन मैं, उपजत बिरह अछेह।
नारी-नागिन नयन तैं, डसत दूरि रहि मित्र।
जतन करत ज्यौं ज्यौं बढ़त, इह बिष परम बिचित्र॥ ७६ ॥
क्यौं तेरे चित चटपटी, सोभा-संपति पाइ।
पुन्यपात्र कौ परसि कै, करै क्यौं न मन भाइ॥ ७७ ॥

छप्पै

बिरही-जन-मन-ताप-करन वन आव जु मैारे[1]।
पिकहू पंचम टेरि घेरि बिरही किय बैारे[2]॥
भैांर रहे भननाय पुहप पाटल[3] के महकत।
प्रफुलित भए पलास[4] दसौं दिसि दव[5] सी दहकत॥
मलयागिरवासीहू पवन काम-अगनि प्रफुलित करत।
बिन कंत बसंत असंत ज्यौं घेरि रह्यौ कहुँ नहिं टरत॥ ७८ ॥

दोहा

दमकति दामिनि मेघ इत, केतकि-पुहप-बिकास।
मोर-सोर रस-दिनन मैं, बिरही-जन-मन त्रास॥ ७९ ॥
नव तरुनी रति मैं चतुर, बिजय काम कौ देत।
अद्भुत करत बिलास इह, चित कौ चोरे लेत॥ ८० ॥
कोकिल-रव[6] फूली लता, चैत - चाँदनी रैनि।
प्रिया-सहित निज महल ये, सुकृती करत सुचैन॥ ८१ ॥
ससि-बदनी अरु सरद-ससि, चंदन-पुहप-सुगंध।
ये रसिकन के हरत चित, संतन के चित बंध॥ ८२

(१) मैारे=मोर। (२) बैारे=पागल। (३) पाटल=गुलाब। पलास=टेसू। (५) दव=दावानल, वनाग्नि। (६) रव=स्वर।

महा अंध तम नभ जलद, दामिनि दमकि डरात।
हरष सोक दोऊ करत, तिय कौ पिय ढिग जात ॥ ८३ ॥

छप्पै

संजम राखत केस नयन हू कानन-चारी।
मुखहू माहिं पवित्र रहत दुजगन सुखकारी ॥
उर पर मुक्ता-हार रहत निसि-दिन छवि छायौ।
आनन-चंद-उजास रूप उज्जल दरसायौ ॥
तेरौ तन तरुनी मृदुल अति चलत चाल धीरज सहित।
सब भांति सतोगुन कौ सदन तऊ करत अनुराग चित ॥ ८४ ॥

दोहा

तबही लौं मन मान यह, तबही लौ भ्रू - भंग।
जौ लौं चंदन सौं मिल्यौ, पवन न परसत अंग ॥ ८५ ॥
पीन पयोधर कौ धरत, प्रगट करत है काम।
पावस अरु प्यारी निरखि, हरखित होत तमाम ॥ ८६ ॥
नभ बादर अवनी हरित, कुटज - कदंब-सुगंध।
मोर-सोर रमनीक बन, सबकौ सुख-संबंध ॥ ८७ ॥

छप्पै

महा माह[1] मैं सीत इतै पर जलधर बरसत।
महलनु बाहरि पाँव परत नहिं अवनी परसत ॥
कंप होत जब गात तबहिं प्यारी ढिग सोवत।
उठत अनंग-तरंग अंग मैं अंग समोवत ॥
रति-खेद-स्वेद-छेदन-करन जाल-रंध्र आवत पवन।
इहि भाँति वितावत दुर्दिवस[2] वे सुकृती सुख के भवन ॥ ८८ ॥

---

(१) माह = माघ मास। (२) दुर्दिवस = ऐसा दिन जिसमें निरंतर वृष्टि होती रहे।

छके मदन की छाक, मुदित मदिरा के छाके।
करत सुरत-रन-रंग, जंग करि कछुइक थाके॥
पौढ़ि रहे लपटाय अंग अंगन मैं उरझे।
बहुत लगी जब प्यास तबहि चित चाहत सुरझे॥
उठि पियत राति आधी गए अति सीतल जल सरद कौ।
नर पुन्यवंत फल लेत हैं निज सुकृत की फरद[1] कौ॥ ८९॥

दोहा

जिनकै या हेमंत मैं, तिया न तन लपटाति।
तिनकौ जम के सदन सी, दागति है यह राति॥ ९०॥

सोरठा

दही-दूध-घृत-पान, वसन मँजीठी रंग कै।
आलिंगन रति-दान, केसरि-चरचित अंग कै॥ ९१॥

छप्पै

बिलुलित कर तन केस नयनहू छिन छिन मूँदत।
बसननि ऐंचे लेत देह रोमांचन रूँदत॥
करत हृदय कौ कंप कहत मुखहू तैं सी सी।
पीड़ा करत सु प्रौढ बयारिहु नारि सरीसी॥
यह सीतल रुत मैं जानियै अद्भुत-मति-धारन पवन।
निसि-द्यौस दुरे दबके रहौ निज नारी-सँग निज भवन॥ ९२॥

चुंबन करत कपोल मुखहि सीकार करावत।
हृदय माँझ धँसि जात कुचन पर रोम बढ़ावत॥

---

(१) फरद = फर्द, लिस्ट।

जंघन कौ थहरात वसनहू दूरि करत झुकि।
लग्यौ रहतु है संग द्वार कौ रोकि रह्यौ ढुकि॥
यह सिसिर-पवन वटु[1] रूप धरि गलिन गलिन भटकत फिरत।
मिलि रह्यौ नारि नर घरनि मैं याही भट भेरन[2] भिरत॥९३॥

दोहा

जो जाकै मन भावतौ, तासौं ताकौ काम।
कमल न चाहत चाँदनी, बिकसत परसत घाम॥ ९४॥
वास कीजिए गंग-तट, पातिक डारत धारि।
कै कामिनि-कुच-जुगल कौ, सेवन करत विचारि॥ ९५॥

कुंडलिया

जे वै सुख-दुख-रहित हैं गुरु-अग्या मन धन्य।
त्याग कियौ संसार मैं ब्रजनिधि-भक्ति अनन्य॥
ब्रजनिधि-भक्ति अनन्य गुफा हेमाचल सेवै।
तप करि जोबन छीन कियौ सुखही मैं रैवै॥
कुच कठोर की नारि रूप जोबन कीने वै।
ताहि अंग मैं धारि सेज सोवत धन से वै॥ ९६॥

दोहा

पुहुप-माल पंखा-पवन, चंदन चंद सुनारि।
वैठि चाँदनी जल-लहरि, जेठ महिन पट धारि॥ ९७॥
अधरन मैं अमृत बसत, कुच कठोरता वास।
यातैं इनकौ लेत रस, उनकौ मर्दन खास॥ ९८॥

---

(१) वटु रूप=वटुक रूप, छोटा स्वरूप। (२) भट भेरन=ताक-झाँक।

जैसे रोगी पथ्य कौ, खायो जानत नाहिं।
तैसे ही तिय-मुख निरखि, रुचि मानत मन माहिं॥ ९९॥
महामत्त या प्रेम कौ, जब तिय करत उदोत।
तब वाके छल-बल निरखि, बिधिहू कायर होत॥ १००॥
काहू कै बैराग रुचि, काहू कै रुचि नीति।
काहू कै शृंगार रुचि, जुदी जुदी परतीति॥ १०१॥
यह सिंगारी मंजरी[1], पढ़त होत चित धीर।
सुनत गुनत बाँचत लखत, हरत जगत की पीर॥ १०२॥

इति श्रीमन्महाराजाधिराज महाराज राजेंद्र श्री
सवाई प्रतापसिंहदेव-विरचितं शृंगार-
मंजरी संपूर्णम् शुभम्

(१) सिंगारी मंजरी = शृंगार-मंजरी।

(१४) वैराग्य-मंजरी

सोरठा

सर्व दिसा सब काल, पूरि रह्यौ चैतन्य-घन ।
सदा एकरस चाल, बंदन वा परब्रह्म कौ ॥ १ ॥

कुंडलिया

पंडित मत्सरता भरे भूप भरे अभिमान ।
और जीव या जगत के मूरख महा अजान ॥
मूरख महा अजान देखिकै संकट सहियै ।
छंद-प्रबंध-कवित्त-काव्य-रस कासौं कहियै ॥
वृद्ध भई तन माहि मधुर बानी गुन-मंडित ।
अपने मन कौ मारि मौन गहि बैठे पंडित ॥ २ ॥

छप्पै

या जग सौं उतपत्य भए जे चरित मनोहर ।
ते सबही छिन भंग प्रगट इह पूरि रह्यौ डर ॥
जग्यादिक तैं स्वर्ग गए तेऊ भय मानत ।
इंद्र आदि सब देव अवधि अपनी कौ जानत ॥
फल-भोग करत जे पुन्य कौ तिनकौ रोग-वियोग-भय ।
दुख-रूप सकल सुख देखिकै भए संत जन ज्ञानमय ॥ ३ ॥

भटक्यौ देस-विदेस तहाँ फल कछुहु न पायौ ।
निज कुल कौ अभिमान छाड़ि सेवा चित लायौ ॥
हँसी गारि अरु खीझ[1] हाथ झारत घर आयौ ।
दूरि करत हू दौरि स्वान ज्यौं पर-घर धायौ ॥

---

(१) खीझ = झिड़की ।

इहि भाँति नचायौ मोहिकैं वहु थौं दै दै लोभदल ।
अबहूँ न तोहि संतोष कहुँ तृष्ना तू डायनि प्रबल ॥ ४ ॥

खोदत डोल्यौ भूमि गड़ी कहुँ पावै संपति ।
ठोंकत रह्यौ पखान कनक के लोभ लगी मति ॥
गयौ सिंधु के पास तहाँ मुक्ता नहिं पाए ।
कौड़ी कर नहिं लगी नृपन कौ सीस नवाए ॥
साधे प्रयोग समसान[1] मैं भूत-प्रेत-बेताल लजि ।
कितहूँ न भयौ बंछित कछू अब तो तृष्ना मोहि[2] तजि ॥ ५ ॥

सहे खलन के बैन इतै पर तिनहिं रिझाए ।
नैनन को जल रोकि सून्य मुख मन मुसकाए ॥
देत नहीं कछु वित्त तऊ कर जोरि दिखाए ।
करि करि चाव करोरि भोर ही दौरत आए ॥
सुनि आस प्यास तेरी प्रबल तू अद्भुत मति गति गहत ।
इहि भाँति नचायौ मोहि अब और कहा करिबो चहत ॥ ६ ॥

उदै-अस्त रवि होत आयु कौ छीन करत नित ।
गृह-धंधे के माहिं समय बीतत अजान चित ॥
आँखिन देखत जनम जरा अरु विपति मरन हूँ ।
तऊ डरत नहिं नैक नयन हूँ नाहिं करन हूँ ॥
जग-जीव मोह-मदिरा पिए छाके फिरत प्रमाद मैं ।
परत उठत फिरि फिरि गिरत विषय-वासना-स्वाद मैं ॥ ७ ॥

फट्यौ पुरानौ चीर[3] ताहि खैंचत अरु फारत ।
छोटे मोटे बाल[4] भूख ही भूख पुकारत ॥

---

(१) समसान = श्मशान । (२) मोहि = मोह । (३) चीर = वस्त्र । (४) बाल = बालक ।

घर मैं नाहीं अन्न नारि हू निरदय यातैं।
भई महा जड़रूप कछू मुख कढ़त न बातैं॥
यह दसा देखि अनवरत चित जीभ थरथरत रुकत मुख।
आपनै जरठ[1] बाउर[2] रहत देह कहै को सतपुरख॥ ८॥

भगी भोग की चाह गयौ गौरव-गुमान सब।
मित्र गए सुरलोक अकेले आप रहे अब॥
उठत लकरिया टेकि तिमिर आँखिन मैं आयौ।
सबद सुनत नहिं कान वचन बोलत बहकायौ॥
यह दसा भई तन की तऊ चकित होत मरिबो सुनत।
देखो विचित्र गति जगत की दुखहू कौ सुख सौं लुनत॥ ९॥

बिन उद्यम बिन पायँ पवन सर्पनि कौ दीनौ।
तैसै ही सब ठौर घास पसुवन कौ कीनौ॥
जिनकी निर्मल बुद्धि तरन भव-सागर समरथ।
तिनकी दुर्लभ प्रीत हरत गुन ग्यान गरथ गथ॥
विधि अविधि करी बातैं अधिक यातैं नर पर-घर फिरत।
निसि-द्यौस पचत तन-मन तचत रचत खचत उरझत गिरत॥ १०॥

विधि सौ पूजे नाहिं पायँ प्रभु के सुखकारी।
हरि कौ धरयौ न ध्यान सकल भव-दुख को हारी॥
खोलै स्वर्ग-कपाट धर्महू करयौ न ऐसौ।
कामिनि-कुच के संग रंग भरि रह्यौ न तैसौ॥
हरि! हाय आप कीनौ कहा पाय पदारथ नर जनम।
निज-जननी-जोबन-बन-दहन अग्नि-रूप प्रगटे सु हम॥ ११॥

---

(१) जरठ = वृद्ध। (२) बाउर = बावला।

भोग रहे भरपूरि आयु यह बीति गई सब।
तप्यौ नाहिं तप मूढ़ अवस्था तपति[1] भई अब॥
काल न कतहूँ जाइ बैस इह चली जात नित।
वृद्ध भई नहिं आस वृद्ध बय भई छाँड़ि हित॥
अजहूँ अचेत चित चेत करि देह-गेह सों नेह तजि।
दुख-दोष-हन[2] मंगल-करन श्रीहरिहर के चरन भजि॥ १२॥

छिमा छिमा विन कीन बिना संतोष तजे सुख।
सहे सीत घन घाम बिना तप पाय महादुख॥
धरयौ विषै को ध्यान चंद्रसेखर[3] नहिं ध्यायौ।
तज्यौ सकल संसार प्यार जबहू न बिरायौ॥
मुनि करत काज सोई करै फल दीखत बिपरीत अति।
अब होत कहा चिंता किए अजहूँ करि हरि-चरन-रति॥ १३॥

दोहा

सेत केस भे, दसन बिनु बदन भयौ ज्यौं कूप।
गात सबै सिथलित भए, तृष्ना तरुण-सरूप॥ १४॥
इक अंबर[4] के टूक कौ, निसि मैं ओढ़त चंद।
दिन मैं ओढ़त ताहि रवि, तू क्यों कर छरछंद॥ १५॥

छप्पै

जैबेवारे भोग कहा जो बहु विधि बिलसे।
सदा सर्वदा संग रहत नहिं क्यौं हू मिलसे॥
तू तौ तजिहै नाहिं आप येही उठि जैहैं।
तब ह्वैहै संताप अधिक चित चिंता ह्वैहै॥

---

(१) तपति=बूढ़ी। (२) हन=(हरन) हरनेवाला। (३) चंद्र-सेखर=चंद्रशेखर, शिव। (४) अंबर=आकाश।

जो तजै आप यह बिषै-सुख तौ सुख होत अनंत अति।
दुस्तर अपार भव-सिंधु के पार होत वह बिमलमति ॥ १६ ॥

दुबरौ कानौ हीन स्रवन बिन पूँछ दबाए।
बूढ़ो बिकलसरीर खार बिन छार लगाए॥
झरत सीस तैं राधि रुधिर कृमि डारत डोलत।
छुधा-छीन अति दीन गरगना[1] कंठ कलोलत॥
इह दसा स्वान पाई तऊ कुतिया सौं उरझत गिरत।
देखौ अनीति या मदन की मृतकन कौ मारत फिरत ॥ १७ ॥

भीख-अन्न इक बार लौन[2] बिन खाइ रहत हीं।
फटी गूदरी ओढ़ि बृच्छ की छाँह गहत हीं॥
घास-पात कछु डारि भूमि परि नित प्रति सोवत।
राख्यौ तन परिवार भार ताही कौ ढोवत॥
इहि भाँति रहत, चाहत न कछु, तऊ बिषय बाधा करत।
हरि ! हाय हाय तेरी सरन आइ परयौं इनसौं डरत ॥ १८ ॥

कुच आमिष[3] की गाँठि कनक के कलस कहत कबि।
मुखहू कफ को धाम कहत ससि के समान छबि॥
झरत मूत्र अरु धात भरी दुरगंध ठौर सब।
ताकौ चंपक-बेलि कहत रस रेलि ठेलि जब॥
यह नारि निहारी निंद्यतन वहके बिषयी बावरे।
याको बढ़ाय बाँको बिरद बोलैं बहुत उतावरे ॥ १९ ॥

जानत नाहिं पतंग अग्नि कौ तेजमयी तन।
गिरत रूप कौ देखि जरत अपने अविवेकन॥

---

(१) गरगना = कीड़े। (२) लौन = नमक। (३) आमिष = मांस।

तैसैही इह मीन मांस के लोभ लुभायो।
कंटक जानत नाहिं लालचहिं कंठ छिदायो॥
हम जानि बूझि संकट सहत छाँड़ि सकत नहिं जगत-सुख।
यह महा-मोह-महिमा प्रबल देखु दुहुन कौ देत दुख॥ २०॥

दोहा

भूमि-सयन बलकल-बसन, फल-भोजन जल-पान।
धन-मद-माते नरन कौ, कौन सहै अपमान॥ २१॥

छप्पै

भए जगत मैं धन्य धीर जिन जगत रच्यौ है।
कोऊ धारत ताहि सु तौ नहिं नैक लच्यौ है॥
काहू दीनौ दान जीति काहू बसि कीनौ।
भुवन चतुर्दस भोग करयौ काहू जस लीनौ॥
इक सौं इक अधिकै भए तुमहू तिनमैं तुच्छवित।
दस-बीस नगर के नृपति ह्वै यह मद को जुर[1] तोहि कित॥ २२॥

तुम पृथिवी-पति भूप भरे अभिमान विराजत।
हम पाई गुर-गेह बुद्धि, ताके बल गाजत॥
तुम धन सौं विख्यात सुकवि गावत कछु पावत।
हम जस सौं विख्यात रहत निसि-द्यौस बढ़ावत॥
हम तुमहि बीच अंतर बड़ौ देखौ सोचि बिचारि चित।
एते पर जौ मुख फेरिहौ तौ हमकौ एकांत हित॥ २३॥

छिनकहुँ छाँड़ी नाहिं भोग भुगती बहु भूपति।
कुलटा सी यह भूमि लाख मानत महीप मति॥

---

(१) जुर = ज्वर।

ताहू के इक अंग अंग के अंगहि पावत।
राखत है करि कष्ट दिवस-निस चहुँ दिस धावत॥
आपनिहुँ और की होत यह यातैं पचि पचि रचि रहे।
दृढ़ ज्ञानी गोपीचंद से बुरी जानि कै बचि रहे॥ २४॥

इक मृतिका को पिंड रहत जल माहिं निरंतर।
सोऊ सबही नाहिं तनक सो ताहू मैं डर॥
करत हजारन जंग भूप तब भोग करत नित।
मिटत न अपनी प्यास दान कौ होत कहा चित॥
ऐसे दरिद्र दूषक भरे[1] तिनहू सौं जो कहत धन।
धिक्कार जनम वा अधम कौ सदा सर्वदा मलिन मन॥ २५॥

दोहा

नट भट विट गायक नहीं, नहीं बादि के माहिं।
कौन भाँति भूपति मिलत, तरुणी हू हम नाहिं॥ २६॥
ऐसेहू जग मे भए, मुंडमाल सिव कीन।
धन-लोभी नर नवन लखि तुमकौ मद ज्वर लीन॥ २७॥
भीख असन[2] अरु दिक[3] बसन,[4] भूमि सयन तरु धाम।
अब मेरे इन नृपन सौं, रह्यौ नहो कछु काम॥ २८॥

छप्पै

तुम अवनी के ईस ईस हमहू बानी के।
तुम हौ रन मैं धीर वीर गाढ़े अति जी के॥
त्यौंही विद्या वाद करत हमहू नहिं हारैं।
प्रतिपच्छी कौ मान मारि अपनौ विस्तारैं॥

---

(१) दूषक भरे=दोष भरे। (२) असन=भोजन। (३) दिक=देश (दसों दिशाएँ)। (४) बसन=वस्त्र।

लोभी नर सेवत तुम्हैं हमकौ सिष[1] श्रोता भले।
तुमकौ न हमारी चाह तौ हमहू ह्याँ तैं उठि चले॥ २९॥

जब हौं समझ्यौ नैक तबहिं सरबग्य भयौ हौं।
जैसै गज मदमत्त अंधता छाइ गयौ हौं॥
जब सतसंगति पाइ कछुक हौं समझन लाग्यौ।
तबहिं भयौ हौं मूढ़ गर्व गुन कौ सब भाग्यौ॥
ज्वर चढ़त बढ़त अति ताप ज्यौं उतरत सीतल होत तन।
त्यौंही मन को मद उतरिगो लयौ सील संतोष पन॥ ३०॥

दोहा

गयौ मान जोबनरु धन, भिच्छुक जाति निरास।
अब तौ मोकौ उचित है, श्री गंगा-तट-बास॥ ३१॥
तू ही रीझत क्यौं नहीं, कहा रिझावत और।
तेरे ही आनंद तैं, चिंतामणि सब ठौर॥ ३२॥

कुंडलिया

जैसै पंकज-पत्र पर, जल चंचल ढुरि जात[2]।
त्यौंही चंचल प्रानहू, तजि जैहै निज गात॥
तजि जैहै निज गात बात यह नीकै जानत।
तौहू छाँड़ि विवेक नृपन की सेवा मानत॥
निज गुन करत बखान निलजता उघरी ऐसै।
भूलि गयौ सब ग्यान मूढ़ अग्यानी जैसै॥ ३३॥

---

(१) सिष=शिष्य। (२) ढुरि जात=ढुलक जाता है, लुढ़क-जाता है।

दोहा

नृपति सैन संपति सचिव, सुत कलत्र परिवार।
करत सबन कौ मगन मन, नमो काल करतार॥ ३४॥

छप्पै

जे जनमे हम संग सु तौ सब स्वर्ग सिधारे।
जे खेले हम संग काल तिनहूँ कौ मारे॥
हमहू जर्जर-देह निकट ही दीसत मरिबौ।
जैसै सरिता-तीर वृच्छ कौ तुच्छ उखरिबौ॥
अजहूँ नहिं छाँड़त मोह मन उमगि उमगि उरझ्यौ रहत।
ऐसै असंग के संग तैं हाय जगत कौ दुख सहत॥ ३५॥

बहुत रहत जिहिं धाम तहाँ एकहि कौ राखत।
एक रहत जिहिं ठौर तहाँ बहुतहिं अभिलाखत॥
फेरि एकहू नाहिं करी तहँ राज दुराजी।
काली कै सँग काल रची चौपरि की बाजी॥
दिन-रात उभय पासे लिए इहि विधि सौं क्रीड़ा करत।
सब प्रानी खेलत सारि[1] ज्यौं मिलत चलत बिछुरत मरत॥ ३६॥

दोहा

तप तीरथ तरुनी-रमन, विद्या बहुत प्रसंग।
कहाँ कहाँ मुनि रुचि करैं, पायौ तन छिनभंग॥ ३७॥

छप्पै

सर्प सुमन कौ हार उभ वैरी अरु साजन।
कंचन मनि अरु लोह कुसुम-सज्या अरु पाहन॥

---

(१) सारि = पासा।

तृन अरु तरुनी नारि सबनपै एक दृष्टि चित ।
कहूँ राग नहिं रोस दोष कितहूँ न कहूँ हित ॥
ह्वैहै कब मेरी इह दसा गंगा के तट तप तपत ।
रस भींजे दुर्लभ दिवस ये बीतैंगे शिव शिव जपत ॥ ३८ ॥

दोहा

ब्रह्म-ध्यान धरि गंग-तट, बैठैंगो तजि संग ।
कबहूँ वह दिन होइगो, हिरन खुजावत अंग ॥ ३९ ॥
जग के सुख सौं दुखित ह्वै, भरिहै ढरिहै नैन ।
कब रहिहौं तट गंग के, शिव शिव आरत बैन ॥ ४० ॥
ईस-सीस तजि स्वर्ग तजि, गिरवर तजे उतंग ।
अवनी तजि जलनिधिहि मिलि, पर सौं परमुख गंग ॥ ४१ ॥

छप्पै

नदी-कूप यह आस मनोरथ पूरि रह्यौ जल ।
तृष्ना तरल तरंग राग है ग्राह महाबल ॥
नाना तर्क बिहंग संग धीरज-तरु तोरत ।
भँवर भयानक मोह सबनकौ गहि गहि बोरत ॥
नित बहत रहत चित-भूमि मैं चिंता-तट अतिही बिकट ।
कढ़ि गए पार जोगी पुरुष उन पायौ सुख तट निकट ॥ ४२ ॥

दोहा

ऐसौ या संसार मैं, सुन्यौ न देख्यौ धीर ।
बिषया हथनी सँग लग्यौ, मन-गज बाँधे बीर ॥ ४३ ॥

कुंडलिया

छोटे दिन लागत तिन्हैं जिनकै बहु विधि भोग ।
बीति जात बिलसत हँसत करत सुरत-संजोग ॥

दोहा

सतसंगति स्वच्छंदता, बिना कृपनता भच्छ।
जान्यौ नहिं किहि तप किए, इह फल होत प्रतच्छ ॥ ४८ ॥

कुंडलिया

जैसै चंचल चंचला त्यौंही चंचल भोग।
तैसैही यह आयु है ज्यौं घन-पवन-प्रयोग ॥
ज्यौं घन-पवन-प्रयोग तरल त्यौंही जोबन-तन।
विनसत लगै न बार गात ह्वै जात ओस-कन ॥
देख्यौ दुस्सह दुःख देहधारिन कौ ऐसै।
साधन संत समाधि व्याधि सौं छूटत जैसै ॥ ४९ ॥

छप्पै

भोजन कौ कर पत्र दसौं दिसि बसन बनाए।
असन भीख कौ अन्न पलँग पृथवी पर छाए ॥
छाँड़ि सबनकौ संग अकेले रहत रैन-दिन।
निज आतम सौं लीन पीन संतोष छिनहिं छिन ॥
मन के बिकार इंद्रियन के डारे तोरि मरोरि तिन।
वे धन्य धन्य संन्यास-धनि किए कर्म निर्मूल जिन ॥ ५० ॥

दोहा

नृप-सेवा मैं तुच्छ फल, बुरी काल की व्याधि।
अपनौ हित चाहत कियौ, तौ तू तप आराधि ॥ ५१ ॥

सोरठा

बिप्रन के घर जाइ, भीख माँगिबौ है भलौ।
बंधुन सौं सिर नाइ, भोजन कौ करिबौ बुरौ ॥ ५२ ॥

दोहा

बिप्र सूद्र जोगी तपी, सुकबि कहत करि टोक।
सबकी बातैं सुनत हौ, मोकौ हरख न सोक ॥ ५३ ॥

छप्पै

प्रगट करत दुख-दोष भरे बिष बिषय-भोग-सुख।
इनसौं परमुख होत,[1] होत सबही सुख सनमुख ॥
ए रे चित्त चलाँक चाल तेरी तू तजि रे।
बैठि ग्यान के गोख[2] सुमति-पटरानी सजि रे ॥
छिनभंग[3] जगत की ओर तू जिन ढरिकावै मोहि अब।
संतोष-सत्य-स्रद्धा-सहित सम-दम-साधन साधि सब ॥ ५४ ॥

दोहा

बकल-बसन फल-असन करि, करिहौं बन-बिस्राम।
जित अबिबेकी नरनि कौ, सुनियत नाहीं नाम ॥ ५५ ॥

छप्पै

मोह छाँड़ि मन-मीन प्रीति सौं चंद्रचूड़ भजि।
सुर-सरिता[4] के तीर धीर धरि दृढ़ आसन सजि ॥
सम-दम-जोग-बिराग-त्याग तप कौ तू अनुसरि।
बृथा बिषै के बाद स्वाद सबही तू परिहरि ॥
थिर नहिं तरंग-बुदबुद-तड़ित-अग्निसिखा-पन्नग-सरित।
त्यौंही तन जोबन धन अथिर चलदल दल[5] के से चरित ॥ ५६ ॥

---

(१) परमुख होत = मुख फेरते ही। (२) गोख = गौख। ब्रज-भाषा में दरवाजे के ऊपर के कमरे को गौख कहते हैं। (३) छिनभंग = क्षणभंगुर। (४) सुर-सरिता = गंगा। (५) चलदल-दल = पीपल के पत्ते।

छहौं रागिनी राग गुनी गावत हैं निसि-दिन ।
कवि जन पढ़त कवित्त छंद छप्पय छिनहूँ छिन ॥
लिए चहूँधा[1] चँवर करत बाढ़ी नवनारी ।
झनक-मनक धुनि होत लगत कानन कौं प्यारी ॥
जौ मिलै सकल सुख-सौंज यह तौ तू करि संसार-रति ।
नहि मिलै इती हू तौ इतै साधत क्यौं न समाधि-गति ॥ ५७ ॥

सोरठा

तजि तरुनी सौं नेह, बुद्धि-बधू सौं नेह करि ।
नरक निबारत येह, वहै नरक लै जाति है ॥ ५८ ॥

छप्पै

तजै प्रान की घात और पर-धन नहिं राखै ।
पर-तिय धिय[2] सम गिनै झूठ मुख तैं नहि भाखै ॥
निज स्रद्धा-जुत दान देत तृष्ना कौं रोकत ।
दया सबन पै राखि गुरन के चरनन ढोकत[3] ॥
यह सम्मत है स्रुति-सम्रृति कौ सबकौं सुखदायक सुभग ।
जे चलत धीर ते धन्य हैं उनहीं सौं जगमगत जग ॥ ५९ ॥

दोहा

मोकौ तजि भजि और कौ, अरे लच्छमी मात ।
हौं पलास के पात मैं, माँग्यौ सतुवा खात ॥ ६० ॥

छप्पै

महल महा-रमनीक कहा बसिबे नहिं लायक ।
नाहिन सुनिवे जोग कहा जो गावत गायक ॥

---

(१) चहूँधा = चारों ओर । (२) धिय = धी, कन्या । (३) ढोकत = दंडवत् करना ।

नव तरुनी के संग कहा सुख उनहि न लागत।
तौ काहे कौ छाँड़ि छाँड़ि ये बन कौ भागत॥
इन जानि लियौ या जगत कौ दीपक रहत न पवन मैं।
बुझि जात छिनक मैं छवि भरयौ होत अँधेरौ भवन मैं॥ ६१॥

दोहा

भयौ नाहिं सबही प्रलै, कंद-मूल-फल-फूल।
क्यौं मद-माते नृपन की, सेवा करत कबूल॥ ६२॥
गंगा-तट गिरवर-गुहा, उहाँ कहाँ नहिं ठौर।
क्यौं एते अपमान सौं, परत पराई पौर[1]॥ ६३॥
मेरु गिरत सूकत[2] समद,[3] धरनि प्रलै ह्वै जात।
चलदल के दल सी चपल, कहा देह की बात॥ ६४॥
एकाकी[4] इच्छारहित, पानिपात्र[5] दिगबस्त्र।
शिव शिव हौं कब होहुँगो, कर्म-सत्रु कौ सस्त्र॥ ६५॥
इंद्र भए धनपति भए, भए सत्रु के साल।
कलप जिए तोऊ गए, अंत काल के गाल॥ ६६॥
मन विरक्त हरि-भक्ति-जुत, संगी बन-तृन-डाभ।
याहू तैं कछु और है, परम अर्थ को लाभ॥ ६७॥
ब्रह्म-अखंडानंद-पद, सुमिरत क्यौं न निसंक।
जाकै छिन संसर्ग सौं, लगत लोकपति रंक[6]॥ ६८॥

कुंडलिया

फाँधौ तैं आकास कौ, पैठ्यौ तू पाताल।
दसौं दिसा मैं तू फिरयौ, ऐसी चंचल चाल॥

---

(१) पौर=द्वार, दरवाजा। (२) सूकत=सूख जाता है। (३) समद=समुद्र। (४) एकाकी=अकेला। (५) पानिपात्र=हाथ (का चुल्लू) है बरतन जिसका। (६) रंक=भिखारी।

ऐसी चंचल चाल इतै कबहूँ नहिं आयौ।
बुद्धि-सदन कौ पाय पाँय छिनहू न छुवायौ॥
देख्यौ नहि निज रूप कूप अमृत कौ छाँयौ।
ए रे मन मति-मूढ़ क्यौं न भव-बारिधि फाँघौ॥ ६९॥

वे ही निसि वे ही दिवस वे ही तिथि वे वार।
वे ही उद्यम वे क्रिया वे ही बिषय-बिकार॥
वे ही बिषय-बिकार सुनत देखत अरु सूँघत।
वे ही भोजन भोग जागि सोवत अरु ऊँघत॥
महा निलज यह जीव मोह मैं भयौ बिदेही।
अजहूँ अहुटत नाहिं[1] कढ़त गुन वे के वे ही॥ ७०॥

छप्पै

पृथ्वी परम पुनीत पलँग ताकौ मन मान्यौ।
तकिया अपनौ हाथ गगन कौ तंबू तान्यौ॥
सोहत चंद चिराग बीजना करत[2] दसौं दिस।
वनिता[3] अपनी वृत्ति संग ही रहति दिवस-निस॥
अतुलित अपार संपति सहित सोवत है सुख मैं मगन।
मुनिराज महानृपराज ज्यौं पौढ़े हम देखत दृगन॥ ७१॥

सोरठा

कहा बिषय कौ भोग, परम भोग इक और है।
जाकौ होत सँजोग नीरस लागै इंद्र-पद॥ ७२॥

छप्पै

स्रुति अरु सम्रिति पुरान पढ़े बिस्तार-सहित जिन।
साधे सब सुभ कर्म स्वर्ग कौ बास लह्यौ तिन॥

---

(१) अहुटत नाहिं=नहीं हटता। (२) बीजना करत=व्यजन (पंखा) करती हैं। (३) वनिता=स्त्री।

करत तहाँ ऊँ चाल काल कौ ख्याल भयंकर।
ब्रह्मा और सुरेस सबन कौ जनम मरन डर॥
ये बनिक-बृत्ति देखी सकल अंत नहीं कछु काम की।
अद्वैत ब्रह्म को ग्यान यह एक ठौर आराम की॥ ७३॥

जल की तरल तरंग जाति त्यौं जात आयु यह।
जोबनहू दिन चारि चटक की चौप चहाचह॥
ज्यौं दामिनी-प्रकास भोग सब जानहु तैसै।
वैसै ही इह देह अथिर थिर ह्वैहै जैसै॥
सुनि ए रे मेरे चित्त तू होहु ब्रह्म मैं लीनगति।
संसार-अपार-समुद्र तरि करि नौका निज-ग्यान-रति॥ ७४॥

दोहा

ज्यौं सफरी[1] कौ फिरत लखि, सागर करत न छोभ[2]।
अंडा से ब्रहमंड कौ, त्यौं संतन कै लोभ॥ ७५॥
काम-अंध जब भयौ तब, तिय देखी सब ठौर।
अब बिवेक-अंजन कियौ, लख्यौ अलख सिरमौर॥ ७६॥

छप्पै

चंद-चाँदनी रम्य रम्य वन-भूमि पुहुप-जुत।
त्यौंही अति रमनीक मित्र कौ मिलिबौ अद्भुत॥
वनिता के मृदु बोल महा रमनीक बिराजत।
मानिक मुख रमनीक दृगन अँसुवन-झर साजत॥
ये कहे परम रमनीक सब ये सबही चित मैं चहत।
इनकौ बिनास जब देखिए तब इनमैं कछु ना रहत॥ ७७॥

---

(१) सफरी = मछली। (२) छोभ = क्षोभ।

सोरठा

हूँछ वृत्ति[1] मन मानि, समदृष्टी इच्छा-रहित।
करत तपस्वी ध्यान कंथा कौ आसन किए॥ ७८॥

छप्पै

अरे मेदनी मात तात मारुत सुनि ए रे।
सजे सखा जल भ्रात व्योम बंधू सुनि मेरे॥
तुमकौ करत प्रनाम हाथ उन आगे जोरत।
तुमरेई सतसंग सुकृत कौ सिंधु झकोरत॥
अज्ञान-जनित वह मोह हू मिल्यौ तिहारे संग सौं।
आनंद अखंडानंद कौ छाइ रह्यौ रस-रंग सौं॥ ७९॥

जौ लौं देह निरोग और जौ लौं न जरा तन।
अरु जौ लौं बलवान आयु अरु इंद्रिनु के गन॥
तौ लौ निज कल्यान करन कौ जतन उचारत।
वह पंडित वह धीर बीर जो प्रथम बिचारत॥
फिरि होत कहा जर्जर भए जप तप संजम नहिं बनत।
भभकाय उठ्यौ निज भवन जब तब क्यौं तू कूपहिं खनत॥ ८०॥

दोहा

विद्या पढ़ी न रिपु दले, रह्यौ न नारि-समीप।
जोवन यह यौंही गयौ, ज्यौं सूने घर दीप॥ ८१॥

---

(१) हूँछ वृत्ति=उञ्छवृत्ति। "उञ्छ कणश आदानं कणिशाद्यर्जनं शिलम्।"—फसल कट चुकने पर खेत मे जो अन्न के दाने बच रहते है उन्हें बीनकर, उनसे निर्वाह करने को उञ्छवृत्ति कहते है।

छप्पै

मन के मन ही माहिं मनोरथ वृद्ध भए सब।
निज अंगन मैं नास भयौ वह जोबन हू अब॥
बिद्या ह्वै गइ बाँझ बूझवारे नहिं दीसत।
दौरयौ आवत काल कोप करि दसननु पीसत॥
कबहूँ नहिं पूजे प्रीति सौं चक्रपानि प्रभु के चरन।
भव बंधन काटै कौन सब अजहूँ गहि रे हरि-सरन॥ ८२॥

प्यास लगै जब, पान करत सीतल सु-मिष्ट जल।
भूख लगै तब खात भात, घृत, दूध और फल॥
बढ़त काम की आग तबहिं नव बधू संग रति।
ऐसै करत बिलास होत बिपरीति दैवगति॥
तब जीव जगत के दिन भरत खात पियत भोगहु करत।
ये महारोग तीनौं प्रबल बिना मिटाए नहिं सरत॥ ८३॥

दोहा

नर-सेवा तजि ब्रह्म भजि, गुरु-चरनन चित लाय।
कब गंगा-तट ध्यान धरि, पूजौगो शिव पाय॥ ८४॥
पंकज-नयनी ससि-मुखी, सब कबि कहत पुकारि।
जाकौ हम ऐसै कहत, हाड़-मांस-मय नारि॥ ८५॥

छप्पै

अरे काम बेकाम धनुष टंकारत वर्जत।
तऊ कोकिला व्यर्थ बोल काहे कौ गर्जत॥
जैसै ही तू नारि वृथा ये करत कटाछैं।
मोहि न उपजत मोह छोह सब रहिगो पाछैं॥
चित चंद्रचूड़ के चरन कौ ध्यान अमृत बरसत इतै।
आनंद अखंडानंद कौ ताहि जगत सुख कौ हितै॥ ८६॥

कंथा[1] अरु कौपीन[2] महा जर्जर है जिनकै।
बैरी मित्र समान संकहू नाहीं तिनकै॥
बन-मसान मैं बास भीख ल्यावैं अरु खावैं।
सदा ब्रह्म मैं लीन पीन[3] संतोषहि पावैं॥
इहि भाँति रहत धुनि ध्यान मैं ज्ञान-भान[4] जिनकै उदित।
नित रहत अकेले एकरस वे जोगी जग मैं मुदित[5] ॥ ८७ ॥

अति चंचल ये भोग जगत हू चंचल तैसौ।
तू क्यौं भटकत मूढ़ जीव संसारी जैसौ॥
आसा-फाँसी काटि चित्त तू निर्मल ह्वै रे।
साधन साधि समाधि परस-निजपद कौ छ्वै रे॥
करि रे प्रीती मेरे बचन धरि रे तू इहि चोर कौ।
छिन यहै यहै दिनहू भलौ जिन राखै कछु भोर कौ॥ ८८ ॥

जोगी जग बिसराय जाय गिरि-गुहा बसत हैं।
करत जोग कौ ध्यान प्रेम आँसू बरसत हैं॥
खग-कुल बैठत अंक पियत निस्संक नयन-जल।
धनि धनि हैं वे वीर धरयौ जिन यह समाधि-बल॥
हम सेवत[6] बारी[7] बाग सर सरिता बापी कूपतट।
खोवत हैं यौं ही आयु कौ भए निपट ही निघरघट[8] ॥ ८९ ॥

ग्रस्यौ जनम कौ मृत्यु जरा जोबन कौ ग्रास्यौ।
असिबे कौ संतोष लोभ इहिं प्रगट प्रकास्यौ॥

---

(१) कंथा = चीथड़ों का वस्त्र-विशेष, कथरी। (२) कौपीन = लँगोटी। (३) पीन = कठिन, मजबूत, पूर्ण। (४) भान = भानु, सूर्य। (५) मुदित = प्रसन्न। (६) सेवत = व्यवहार में लाना, भोगना, विलसना। (७) बारी = खेती-बारी, क्यारी। (८) निघरघट = बेडर, निडर।

तैसै ही सम दृष्टि असत वनिता-विलास वर।
मत्सर गुन ग्रसि लेत ग्रसत मन कौ भुजंग-स्मर॥
नृप ग्रसित कियौ इन दुर्जननि कियौ चपलता घन ग्रसित।
कछुहू न दिख्यौ बिन ग्रसित जग याही तैं चित अति त्रसित॥९०॥

दोहा

रोग बियोग बिपत्ति बहु, देह आयु-आधीन।
निडर विधाता जग रच्यौ, महा अथिरता-लीन॥ ९१॥
सह्यौ गरभ-दुख जनम-दुख, जोवन-तिया-बियोग।
वृद्ध भए सबहुन तज्यौ, जगत कियौ इह रोग॥ ९२॥

छप्पै

सौ बरसनु की आयु राति मैं बीतत आधे।
ताके आधे-आध वृद्ध बालकपन साधे॥
रहे यहै दिन आधि-व्याधि-गृह-काज-समोए।
नाना बिधि बकबाद करत सब हित कौ खोए॥
जल की तरंग बुदबुद सदृस देह खेह[1] ह्वै जात है।
सुख कहाँ कहा इन नरन कौ जासौं फूलत गात है॥ ९३॥

दोहा

बड़े बिबेकी तजत हैं, संपति-सुत-पित-मात।
कंथा अरु कौपीनहू, हमसौं तजी न जात॥ ९४॥
कुपित सिंहनी ज्यौं जरा, कुपित सत्रु ज्यौं रोग।
फूटे घट जल ज्यौं जगत, तऊ अहित जुत लोग॥ ९५॥

सोरठा

देत और कौ ज्ञान, तज धन जोबन अथिर कहि।
निज मन धरत न ध्यान, जगत रिझावत फिरत हम॥ ९६॥

---

(१) खेह = धूल, राख।

दोहा

पढ़ि विद्या दृढ़ होत जब, सबही भाँति सुछंद।
तबही नर कौ तन हरत, बड़ो बिधाता मंद ॥ ९७ ॥

छप्पै

है वह कच्छप धन्य धरी जिहिं धरनि पीठि पर।
दूजौ ध्रुव हू धन्य सूर-ससि राखत परिकर ॥
वृथा जगत मैं जनम जीव निज स्वारथ सींचे।
परमारथ के काज नाहिं ऊँचे अरु नीचे ॥
वे जानत नाहीं हित-अहित करि प्रपंच पेटहि भरत।
गूलर-फल-ब्रह्मांड मैं मच्छर से उपजत मरत ॥ ९८ ॥

छिन मैं बालक होत होत छिन ही मैं जोबन।
छिन ही मैं धन होत होत छिन ही मैं निरधन ॥
होत छिनक मैं वृद्ध देह जर्जरता पावत।
नट ज्यौं पलटत अंग स्वाँग नित नयौ दिखावत ॥
यह जीव नाच नाना रचत निचलौ[1] रहत न एकदम।
करिकै कनात[2] संसार की, कौतुक निरखत रहत जम ॥ ९९ ॥

बहुत भोग कौ संग तहाँ इन रोगन कौ डर।
धन हू कौ डर भूप अग्नि अरु त्यौंही तस्कर ॥
सेवा मैं भय स्वामि, समर मैं सत्रुन कौ भय।
कुल हू मैं भय नारि, देह कौ काल करत छय ॥
अभिमान डरत अपमान सौं, गुन डरपत सुनि खल-सबद।
सब गिरत परत भय सौं भरे अभय एक बैराग्य पद ॥१००॥

---

(१) निचलौ = निश्चल, स्थिर। (२) कनात = परदा, यवनिका।

दोहा

करी भरथरी-सतक पर, भाषा भली प्रताप।
नीति-महल रस-गोख मैं, बीतराग प्रभु आप ॥१०१॥
श्री राधा गोबिंद के, चरन सरन बिस्राम।
चंद्रमहल चित चुहल मैं, जयपुर नगर मुकाम ॥१०२॥
संवत अष्टादस सतक, बावन्ना सुभ वर्ष।
भादौं कृष्णा पंचमी, रच्यौ ग्रंथ करि हर्ष ॥१०३॥

इति श्रीमन्महाराजाधिराज महाराज राजेंद्र श्री
सवाई प्रतापसिंहदेव-विरचितं वैराग्य-
मंजरी संपूर्णम् शुभम्

(१५) प्रीति-पचीसी

कवित्त

भोग मैं न जोग मैं न कहूँ भोग जोग सुन्यौ,
भोग जोग दोऊ क्यौं न लेत मन मानी कै।
आसन मिल्यौ है पाकसासन[1] कौ सेय तिन्हैं,
जिनकी कृपा तैं बोल कढ़ै बाकबानी[2] कै॥
सिव-सनकादि परासर सुकदेव आदि,
धरि धरि धारना रहत सुख सानी कै।
भुगति मुकति दोऊ जुगति चहै तौ ऊधौ,
सेइ लै चरन व्रजनिधि व्रजरानी कै॥ १ ॥

दोहा

मथुरा तैं गोकुल गए, जोग दैन व्रज-बाल।
उद्धव गोपी-बचन सुनि, आप भए बेहाल॥ २ ॥

कवित्त

ऊधौ तुम ल्याए जोग बूड़यौ है सँजोग सब,
कान दैकै सुनि लेत कान्ह प्रेम-गाथ[3] ही।
संग हम नाचे राचे अधर-सुधा सौं सींचे,
ताही कौ बिगोवै[4] मूढ़ पकरिकै हाथ ही॥

---

(१) पाकसासन = इंद्र। (२) बाकबानी = सरस्वती। (३) [गाथ] = कथा, कहानी। (४) बिगोवै = बिगोना, निंदा करना।

कौन कौ करैंगे गुर, गुर है हमारो वह,
व्रजनिधि प्यारो जाहि लियौ भरि बाथही।
प्रानायाम साधैं सुद्ध प्रान होयँ ताके अरे,
बावरे गए रे प्रान प्राननाथ साथ ही ॥ ३ ॥

दैन लग्यौ जोग-छटा कही सिर बाँधौ जटा,
ऐसै बोल बोलै मति पाछै पछितायगो।
दासी हैं बिहारी जू की खास हो खवासी हुतीं,
पूँछि लीज्यौ उनही कौ साँच जब पायगो ॥
व्रजनिधि बिरह ये बैरी सिर पाँव तक,
जापै यह करि जरे लौन सौं लगायगो।
कछु नहीं कही जात प्रानन की घात हमैं,
ऊधो करे खोटी बात मुँह जरि जायगो ॥ ४ ॥

जोग न हमैं है हम नाहिं जोग लायक हैं,
मोहन सँजोगी करि जस कब लैगो रे।
तेरी कहा गावैं बात, बात तू हमारी सुनि,
सीस कौ धुनैगो जब हाय हाय कैगो रे[1] ॥
औरापान नाहीं हमैं ध्यान व्रजनिधि जू कौ,
बानौ ताय ताए त्यौं ही तूहू ताप तैगो रे।
अकबक रही जक नैक ना हिये मैं सक,
होत प्रान हक्क हमैं कहा जोग दैगो रे ॥ ५ ॥

सुधि आवै प्रीतम की होत हैं बिसुधि अरे,
राखे प्रान पोस दै दै गुन सब गाय गाय।
ल्यायौ है सँदेसो अब जोग दैन हमही कौ,
चाहत संजोग जाय दियो हियो दाय दाय ॥

---

(१) कैगो रे=(कहैगो रे) कहेगा।

स्याम रंग रँगी गईं व्रजनिधि संग भईं,
ताकौ फल भयौ यहै लगी मैं न ल्याय ल्याय।
दसा तुम देखौ आय सोचन ही प्रान जाय,
वा पर न पीरे ऊधो दया नहीं हाय हाय॥ ६॥
हमैं नहीं जोग भावै करि दै सँजोग अरे,
मानिहैं सुजस तेरौ ल्यावै हरिवर कौ।
यहै नहिं होय तो तू एक बात करि लै रे,
सिर काटि लैकै चलि नाखि जाहु धर कौ॥
जीवौ दुःख लागै महा मरिवोई मान्यौ सुख,
व्रजनिधि संग छोड़्यौ लोक-लाज डर कौ।
चुप रहौ ऊधो सिर काहे लेत तूहो अरे,
हीयो दूख रूधो सूधो वूधो तेरे घर कौ॥ ७॥
हम तो कियौ हो गुन औगुन कियौ हो नाहिं,
चेली सब कहैं याहि तापर मरत हैं।
प्रीति ही करी ही परतीति दैकै प्रानन की,
रीति मैं अनीति भई जिय सौं लरत हैं॥
प्यारी वे कहत हमैं हुंकरत प्यारो व्रज,
व्रजनिधि भूलि सवै अव क्यौं टरत हैं।
भयौ वेवफा रे ऊधो दिल कौ करत कफा,
नैक न नफा रे जान सफा क्यौं करत हैं॥ ८॥
जे वे रंगमहल मैं रस की चुहल करी,
तिनही कौ वन माँझ झेरत हैं ताव रे।
जे वे चोवा चंदन औ अतर लगात अंग,
तिनकौ तू ल्यायो अव भसमी को भाव रे॥
जिन गान-नृत्य सवै कीनो व्रजनिधि संग,
तिहूँ तू कहत सीखैा प्रानायाम दाव रे।

ऊधो चुप रहौ अब ऐसी बात कैसै कहौ,
नैक जीय लाज गहौ ए रे मति-बावरे ॥ ९ ॥
आयौ हो अक्रूर सो तौ महा मति-क्रूर हुतो,
आँखिन मैं धूरि दैकै कर दीनौ परदै।
अब तुम आए ऊधो जोग-सोग-रोग लाए,
लागत अभाए अब काहि कौ जु डर दै॥
ब्रजनिधि कही सो तौ सब बात सुनी हौं,
कहैं हम सो भी तू धरम-काज कर दै।
पंचागनि कहा साधैं पंचौबान[1] हमैं दाधै[2],
हृदै बेदरद होय अग्नि माँझ धर दै॥ १० ॥
दैन लाग्यौ जोग सो तौ हमसौं कहैं न होत,
भोग कुबिजा सौं सुनै याही दुख मरियै।
हमकौ बैराग बगसीस होत भाँति भाँति,
दासी करी दुलहनि रीझि[3] देखि जरियै।
कहा अब करियै क्यो तरै नाव पाहन[4] की,
ब्रजनिधि ऐसी करी कौ लौ दिन भरियै॥ ११ ॥
अबला हैं हम सब नाहि चलैं बल अब,
कहै हैं सपथ खाय साँच यह जानौ रे।
चाह जीयै मिलन की सो तौ कहा जात रही,
ग्यान ही इठावत है लायौ तू बिगानौ रे॥
अकलै न आनौ हो रे ब्रजनिधि स्यानौ हो रे,
करनौ हो काज यहै, तू तो है दिवानौ रे।
ऊधो जोग नाहिं मानौं, कृष्न सिर हमैं वानौ,
नैक होहु स्यानौ मन काहे देत तानौ रे॥ १२ ॥

---

(१) पंचौबान = पंचबाण, कामदेव। (२) दाधै = दागे, जलावे।
(३) रीझि = समझ। (४) पाहन = पत्थर।

आए हे जमामरद[1] ग्यान कर करद लै,
दरद न जान्यौ अब जिन दिन पार रे।
कहा कहैं मूढ़ तोय हियौ जोग टूक करै,
देख प्रीति आगे जीति नाहिं तेरी हार रे॥
आगही तो मारि राखी ब्रजनिधि ने ही अरे,
तापै सरुजोर हू कै करत है वार रे।
रहे हिये हार अब काहे काहे बोल सार,
लगत दुसार तन मरे कौ न मार रे॥ १३॥
आयौ मधुबन तैं तू बात कहि भेज्यौ माधो,
साधौ जोग-पंथा कौ जु कैसौ लायौ झटपट।
अटक हमारी लगी वाही मनमोहन सौं,
पटकत सीस कौ मिलन मन हटपट॥
जानै नाहिं कपटी हैं ब्रजनिधि प्रानप्यारे,
न्यारे ह्वै करत सुख फिरैं हम सटपट।
लटपटी डरी रहैं चटपटी लगी हियै,
बात अटपटी ऊधौ काहे करै खटपट॥ १४॥

सवैया

रंचक हू सुधि नाहि हमैं, जिनको पढ़ि जोग की देत कहा सिख।
जैसेइ वे तुम तैसेइ हौ अजु जानि परे सु दिखावै कहा लिख॥
दासी पियारी करी ब्रज की निधि, ए सुनि बात उठै हिय मैं धख।
साँवरे साँप डसी हैं सवै, तिन्हैं ग्यान सों मूढ़ उतारै कहा विख॥१५॥

कवित्त

कहा कहैं तोहि सुनि यहै बात नाहिं होय,
जोग ग्यान बातैं घोंटि यामैं ना रहत क्यौं।

---

(१) जमामरद = जवाँमर्द, बहादुर।

कौन मति तेरी सब कहा लागि रहौं हठि,
रसना रटत नाम प्यारो देखियत क्यौं ॥
मिले जानि ब्रजनिधि हमकों करैंगे सिद्धि,
होय है प्रसिद्ध तापै तन यौं हवत क्यौं।
वाकी सुधि आए अदा जिय मैं जरत सदा,
प्रान फिदा किए सदा तापै चिदरत क्यौं ॥ १६ ॥

सवैया

प्रीति करी परतीति लै प्रेम की, कीन्हीं अनीति पै आई है लाल न।
नाचते गावते हे हम संग ही, रंग ही सौं करि वंसी बवाजन ॥
वे ब्रज की निधि हूँ करि भावनि, राधिका कौ कहते सिरताजन।
आहि रे आहि कछू न बसाय रे, मारि गयौ वह साँवरो साजन ॥१७॥

कवित्त

नाचे ज्यौंही नाची हम गाए त्यौंहीं गाई सब,
अब यह ग्यान की न हमकौ सुहावै पौन।
अधर-सुधा कौ पान करयौ हमनै निदान,
तिनकौ तू प्रानायाम सिखवत नाहिं हौन ॥
ब्रजनिधि भेजे तुम जाने सुख दैन आए,
जाके पर करी यह लागे सब ब्रज पौन।
ऊधो अरे रहि मौन बीती है सु जानै कौन,
प्रीति मध्य जोग देव खीर माहि डारै लौन ॥ १८ ॥
आयौ तू कहाँ से इहाँ कौन सौ ह काज तेरौ,
जिय धरि लाज मुँह ऐसी जिन कहै बात।
काहे सिर बाँधै पाप जोर कर देत ज्ञान,
मरैंगी न लैंगी जोग तेरे कहा आवै हात ॥
तजी क्यौं रे ब्रजनिधि छोड़ि गए ब्रज मधि,
उनही के लीयै हम छाँड़े सब मात-तात।

पीर तैं पिरात बिललात हहरात प्रान,
तापर तू अनाघात जोग सौं जरावै गात ॥ १९ ॥

कहाँ यह जोग कहाँ सरस संजोग भोग,
कहाँ गान-तान कहाँ प्रानायाम प्रान कौ।
कहाँ वह कुंज मंजु कहाँ गिरि-कंदरा हैं,
अंबर अतर कहाँ भसमी निदान कौ॥
कहाँ वह ब्रजनिधि निरगुन ब्रह्म कहाँ,
कौन भाँति मानैं मन तेरौ गुन ग्यान कौ।
ऊधो यह तेरी बात डावाँडोल सी दिखात,
बघुरे को पात ज्यौं जमीन आसमान कौ॥ २० ॥

जानी हुती कबहूँ तौ लैहिंगे हमारी सुधि,
जापै करी विना सुधि बेनिसाफ[1] लेखौ रे।

× × × × ×
× × × × ×

कौन कौं पुकारैं अरे प्रानन हमारे हरे,
ढरे कुबिजा की ओर अचरज देखौ रे॥
ब्रजनिधि हेत कियौ भाँति भाँति सुख दियौ,
जानी बात ऐसै कियौ प्रेम कौ अलेखौ रे॥ २१ ॥

जोग की जुगति सींगी भसम अधारी मुद्रा,
ग्यान उपदेस सुनि सुनि मन मैं डरैं।
इहाँ हम सब ही सवादी रास-रंगन की,
स्याम-अंग-संगन की पागी पन क्यौं टरैं॥
तुम तौ हो नेमी हम प्रेमी ब्रजनिधि के हैं,
कागद समेट लेहु देखि अँखियाँ जरैं।
आगिहु तवाती अवी छाती हहराती यह,
प्रानघाती काती असी पाती लै कहा करैं॥ २२ ॥

---

(१) बेनिसाफ = बेइंसाफ।

बाँसुरी बजा बुलाई सैनन चला मिलाई,
नृत्य करि तान गाई वे। छवि हिये भरी।
अधर-सुधा कौ पाइ प्रीति-रीति सरसाई,
चित्त-सुखदायी हुते सु तो चित्त ना धरी॥
मिली व्रजनिधि जू सौं वापै इह फैज करी,
हमकौ तो जोग ऊधो दासी[1] नैन सैं अरी।
बात कहा गिरधारी तातैं सब राखी न्यारी,
बिना अपराध मारी बिहारी भली करी॥२३॥

करती बिहार संग प्रीति हुती एक रंग,
भरै सुख स्याम अंग जिन्हैं देत जोग तम।
उनही के ध्यान रहैं रसना सैा कृष्ण कहैं,
नित ही मिलन चहैं रह्यौ तन वे ही रम॥
व्रजनिधि मिलैं नहीं भेजी बात यह कही,
सुनत ही ऐसैा लागै मानैा तुम आए जम।
ऊधो अब बोलि कम, नाहीं हम साँझ दम,
सुख दुख भयौ सम तैाहू नाहीं खात गम॥२४॥

× × × ×
× × × ×
× × × ×
× × × ×
× × × ×
× × × ×
× × × ×
× × × × ॥२५॥

---

(१) दासी = सेविका, नौकरनी। यहाँ कंस की दासी "कुब्जा" से अभिप्राय है।

ऊधे जू तिहारे संगी नवल त्रिभंगी जू की,
कहियै कहा लौं कथा बिथा मन सोयगो।
रास-रस-रंगी करी ताहू मैं कुढंगी करी,
ढंगी करी मीर तें पठंगी ह्वैके सोयगो॥
अब यह जोग तूठ्यौ चेरी करि दियौ झूठौ,
ब्रजनिधि ऐंठि बैठ्यौ बिछुरि बिगोयगो।
प्रान चीर चोरै अरु कोरी छिटकाई सब,
मैया कौ न बाप कौ हमारो कब होयगो॥ २६॥

ग्यान सौं रतन लैकै ऊधो तुम दैन आए,
नगर मैं काहू निधिवान को दिखाइयौ।
हम हैं गँवेलि ग्वालि गोपन की बेटी तिन्हैं,
दीबे कौ सँकोच अति स्याम पासि ल्याइयौ॥
दासी वह कंसजू की कुबजा चतुरता कौ,
नीको नेम-प्रेम ब्रजनिधि मन भाइयौ।
मुक्त-माल जोग ही जवाहर जलूस जेव,
नई करी प्यारी ताहि जाय पहराइयौ॥ २७॥

सवैया

प्रीति मैं घातकी बात ही मैं सु दगा कौ कियो रे कियो रे कियो।
कूबरी पायकै धै लपटाय कै, यौं रे जियो रे जियो रे जियो॥
जोग को रोग लै आय ऊधो अवै, हैं रे दियो रे दियो रे दियो।
पोउनै साँप लौं प्रानैं ब्रजैनिधि, चाहैं पियो रे पियो रे पियो॥२८॥

कवित्त

संवत अठारह इक्यावन बरख मास,
कातिग[1] उँन्यारी[2] तिथि पंचमी सुहाई है।

(१) कातिग = कार्तिक। (२) उँन्यारी = उजेली, शुक्ला।

ताही समै श्रीगुविंदचंद के चरन वंदि,
मेरी मति मंद छवि-छंद सौं छकाई है॥
ऊधौ प्रति पूरव प्रसंग रस रंग भरयौ,
गोपिन प्रगट करयौ कथा वह गाई है।
ब्रजनिधि-दास पता निहारजौ है नेह-लता,
बिरह-भवा लै **प्रीति-पचीसी** बनाई है॥ २६॥.

इति श्रीमन्महाराजाधिराज महाराज राजेंद्र श्री
सवाई प्रतापसिंहदेव-बिरचितं प्रीति-
पचीसी संपूर्णम् शुभम्

(१६) प्रेम-पंथ

दोहा

गनपति सारद सुमिरि कै, यह बर माँगौं देह ।
राधे-कृष्न-उपास मैं, प्रेम बढ़ै जु अछेह ॥ १ ॥

सोरठा

प्रेम-पंथ कौ तंत, संत सबै यह मानियौ ।
श्री राधे कौ कंत, सुख सरसंवहि जानियौ ॥ २ ॥
प्रेम न कीजै दौरि, अंग अगनि मैं जारियै ।
कहत सबन सौं तोरि, प्रानन पूँजी हारियै ॥ ३ ॥
जो कहुँ कीजै प्रेम, यहै नेम-ब्रत धारिकै ।
पायौ दंपति हेम, तौ जग दीजै वारिकै ॥ ४ ॥
प्रेम प्रान के साथ, प्रेम विना ये प्रान नहि ।
प्रेमहि कीजै हाथ, प्रानपती रह हाथ महि ॥ ५ ॥
प्रेम पयोधर माहि, दामिनि ह्वै दमक्यौ नहीं ।
गुन लै गरज्यौ नाहिं, वृथा जन्म पायौ तुहीं ॥ ६ ॥
नैनन प्रेमहि धार, तरल सरल है नहि चलै ।
हारतु जन्महि सार, भूनी भाँगहु नहिं फलै ॥ ७ ॥
प्रेम-समुद्र के बीच, एकहु गोता ना लियौ ।
जगत कीच मैं नीच, नालायक लायौ हियौ ॥ ८ ॥
अजहूँ चेत अचेत, भूल्यौ क्यौं भटक्यौ फिरै ।
कर दंपति सौं हेत, तौ तू भवसागर तिरै ॥ ९ ॥

दोहा

प्रेम सतेसा बैठिकै, रूप-सिंधु लखि हेरि ।
जुगल माधुरी लहरि कौ, पावैगो नहिं फेरि ॥ १० ॥

सोरठा

नीठि[1] मिली नर-देह, देह-गेह सौं प्रीति तजि ।
हिय धरि जुगल-सनेह, रसिकन की रस-रीति भजि ॥ ११ ॥
जुगल-रूप सौं नेह, पारस कौ सौ परसिवौ ।
तन कंचन कर लेहु, वृथा विखै-रस बरसिवौ ॥ १२ ॥
गौर-स्याम की ओर, देखि देखि छवि छकि रहौं ।
जैसै चंद चकोर, तैसै इकटक तकि रहौं ॥ १३ ॥
या जग के व्यौहार, चपला कौ सौं चमकिवौ ।
यह अखंड त्यौहार, गौर-स्याम-सँग रमकिवौ ॥ १४ ॥
जल तरंग ज्यौं एक, त्यौं हरि-राधे एकतन ।
लीला करत अनेक, एक-बरन-वय एक-मन ॥ १५ ॥
व्रज की नवल निकुंज, गुंज करत भ्रमरी जहाँ ।
प्रगट प्रेम के पुंज, मंजुलता उलहत तहाँ ॥ १६ ॥
सदा अखंड विलास, विलसत हुलसत हिव टरे ।
उमगत अंग सुवास, दंपति सुख संपति भरे ॥ १७ ॥
यह सुमरन यह ध्यान, यहै प्रेम अरु नेम यह ।
राखहु रसिक सुजान, यह रौताई खेम यह ॥ १८ ॥

दोहा

मंथन करि चाखे नहीं, पढ़ि पढ़ि राखे ग्रंथ ।
थंथ[2] करत पग परत नहिं, कठिन प्रेम को पंथ ॥ १९ ॥

सोरठा

निपट अटपटी राह, मनमोहन के मोह की ।
वे तो बेपरवाह, सीखे बानि विछोह की ॥ २० ॥

---

(१) नीठि=कठिनता ।
(२) थंथ=नृत्य (ता ता थेई इत्यादि) ।

अपनो सर्वस खोय, प्रीतम कूँ अपनाय लै।
जौ वह रुखो लेय, तौ तू चित चिकनाय लै॥ २१॥
एक ओर कौ प्रेम, जोर करत बरजोरिए।
ज्यौं टंकन तैं हेम, पिघरत प्रान अकोरिए॥ २२॥
प्रीतम की रुख राखि, ज्यौं राखै त्यौं ही रहौ।
अपनी अरज न भाखि, भली बुरी सब ही सहौ॥ २३॥
आठ पहर इकसार, धूनी धधकौ ध्यान की।
चुप ह्वै करौ पुकार, दरसन के धन-दान की॥ २४॥
प्रेम पदारथ पाय, नेम निगोड़ो गरि गयौ।
आँसुन को झर लाय, हीय-सरोवर भरि गयौ॥ २५॥
अब कछु रही न प्यास, आस सबै पूरन भई।
कीन्हौ व्रजनिधि दास, ड्योढ़ी की सेवा दई॥ २६॥

दोहा

अपत[1] कहा पहिचानिहैं, पता[2] पते[3] की बात।
जानैंगे जिनके हिये, प्रेम भक्ति दरसात॥ २७॥

इति श्रीमन्महाराजाधिराज महाराज राजेंद्र श्री
सवाई प्रतापसिंहदेव-विरचितं प्रेम-
पंथ संपूर्णम् शुभम्

---

(१) अपत = बिना पत (प्रतिष्ठा) वाले अथवा बिना पता के अर्थात् लापता। (२) पता = ठिकाना, मतलब। (३) पते = प्रतापसिंह।

(१७) व्रज-शृंगार

दोहा

श्री व्रजनिधि वृषभानुजा, व्रजवासी व्रजनारि।
पतौ दास बरनन करै, बास आस मन धारि॥ १॥

दोहा

बहु बाहन हैंगे सबै, हय[1] गय रथ सुखपाल[2]।
इहाँ त्यजेई फिरत हैं, व्रज में रसिक गुपाल॥ २॥

कवित्त

गरुड़-विमान त्यागे हय-गय-रथ त्यागे,
सुखपाल त्यागि सुखमानन अतोलते।
त्रिभुवननाथ-पनौ छोड़िकै गुवाल भए,
गोपन कौ भैया भैया कहि सुख बोलते॥
प्रीतिपन पारिबे कौ व्रजनिधि जन्म लियौ,
बाबा कहि नंदजू कौ दधि-माठ खोलते।
छाँड़्यौ बयकुंठ-धाम कियौ व्रज विसराम,
निसि-दिन आठौ जाम कुंजन में डोलते॥ ३॥

दोहा

तीर्थ सबै देखे सुने, कोऊ नहिं या तूल[3]।
व्रज-अवनी रंगमगि रही, कृष्न-चरन-अनुकूल॥ ४॥

कवित्त

ठंढहि परत अति बरसै बरफ नित,
सो तौ एक धाम बद्रीनाथ हू कहत हैं।

---

(१) हय = घोड़ा। (२) सुखपाल = पालकी। (३) तूल = तुल्य, समान।

जगन्नाथ राय जहाँ एकमेक खात दूजी,
तीजी धाम रामनाथ द्वारका दिपत हैं॥
यहै व्रजभूमि जहाँ जमुना सुभग बहै,
व्रजनिधि-रास-हास मन कौ हरत हैं।
ब्रह्मादिक इंद्रादिक वंदना करत तिन,
चरन की छाय[1] व्रज छायौ ही रहत हैं॥ ५ ॥

दोहा

सुर-नर-किन्नर-उरग हू, कहत रहैं यह बैन।
धन्य हमारौ भाग जौ, कहुँ पावैं व्रज-रैन[2]॥ ६ ॥

कवित्त

ब्रह्मा इंद्र कहैं हम चाहैं नाहि पदवी कौ,
व्रज के न वृच्छ भए बैठे इहाँ हारिकै।
वर्नत हैं गोपी हम हारी नाहि लाल संग,
मान हिय हारि रहे वारि मन मारिकै॥
कहत कुबेर होते व्रज के बटेर तौ तो,
बेर बेर व्रजनिधि रहत निहारिकै।
व्रज-रज मैं लोटत गुपाल हैं करत ख्याल,[3]
यहै देखि हाल[4] डारौं तीर्थ सबै वारिकै॥ ७ ॥

दोहा

सबतैं नीकी अति लगै, व्रज की धरा सुहाव।
बाल-विनोदहि मोद सौं, लाल मृत्तिका खाव॥ ८ ॥

---

(१) छाय=छाया या छार, रज। (२) रेन=रेणु, धूलि।
(३) ख्याल=खेल। (४) हाल=तुरंत।

कवित्त

कौन अहै तीरथ औ कौन सी जमीं है ऐसी,
　　याके नाहि लवे लागै कौन कहै झूठी बात।
ऐसी तौ यही है औ पुराननि कही है सो तौ,
　　सत्य ही सही है और मन माहिं नाहीं आत॥
ब्रज है अटल धाम ब्रजनिधि कौ बिसराम,
　　सुखलीला करैं लाल लली लिए दिन-रात।
ब्रजनिधि भाई रुचि मृत्तिका गुपाल खाई,
　　प्रभुताई याकी कहौ कैसै अब कही जात॥ ९॥

दोहा

कही जात नहिं एक मुख, कैसै करौं बखान।
जड़-जंगम ब्रज-अवनि के, मोहन-मई प्रमान॥ १०॥

कवित्त

मोहन हैं ब्रज-कुंज जमुना हू मोहन है,
　　सब ही कौ मोहन-सरूप मन जानिए।
मोहन हैं बेली बृच्छ घाट बाट मोहन हैं,
　　गोहन गुवाल मनमोहन ही मानिए॥
मोहन मराल मोर कोकिला कपोत कीर,
　　गाय अरु बच्छी मनमोहन पिछानिए।
मोहन हैं नारी मोहैं ब्रजनिधि सारी और,
　　गोबरधन वंसीबट मोहन बखानिए॥ ११॥

दोहा

ब्रज की अस्तुति कह करौं, जो ब्रज गोपन प्रेम।
नेह-रीति इहँ अटपटी, नहीं बेद नहिं नेम॥ १२॥

कवित्त

संकर-सुरेस हू के ध्यान मैं न आवैं तिन्हैं,
ब्रज के गुवाल-बाल ख्याल[1] मैं हरावैं हैं।
जोग-जग्य कीने हू प्रतच्छ नाहिं होत सोई,
नंदरायजू के घर माखन चुरावैं हैं॥
ब्रजनिधि नेति नेति गावत हैं वेद जाकौ,
जसुमति रानी ताहि बाँधि डरपावैं हैं।
नाचहू नचावैं मनमाने ही गवावैं देखौ,
ब्रज की अहीरी प्रीति बाँधि ललचावैं हैं॥ १३॥

दोहा

स्वाति-बूँद श्रीकृष्न हैं, चातक सब ब्रज-लोग।
कृष्न पपीहा स्वाति ब्रज, नित अति सरस सँजोग॥ १४॥

कवित्त

ावत बुलायै चलि जात हैं पठायै नित,
हँसत हँसायै हित चित अभिलाख्यौ है।
सोवत सुवायै सदा जागत जगायै गुन,
गावत गवायै उन कह्यौ सोई भाख्यौ है॥
ब्रजनिधि रिझायै तैं जु रीझत हैं भीजत हैं,
चरित करत अति चौंप-रस चाख्यौ है।
करि करि मंद हास डारि गर प्रेम-फाँस,
कसि रस मोहन सौं वस करि राख्यौ है॥ १५॥

दोहा

राधे राधे कहत मुख, साधे श्री ब्रजराज।
काम-केलि-क्रीड़ा करैं, यहै मनोरथ काज॥ १६॥

---

(१) ख्याल = खेल।

कवित्त

इंद्र और ब्रह्मा सिव नित प्रति ध्यान धरैं,
करैं हैं उपाव तऊ मन मैं न आवैं बनि ।
अमर औ असुर हू करैं बड़ी प्रभुताई,
महिमा न पावैं फल एक छठकौ भी गनि ॥
कमला चरन चापैं ब्रजनिधिजू के सदा,
सोई स्याम कहैं यह भान-लली फेर धनि ।
बंसीबट-धाम जपैं कृष्न आठौं जाम नाम,
और नाहिं काम कहैं राधिका मुकटमनि ॥ १७ ॥

दोहा

सुर-नर-किन्नर-उरग हू, चाहत कृष्न सुइष्ट ।
वही कृष्न राखत हिये, श्रीराधा ही इष्ट ॥ १८ ॥

कवित्त

वेनु जाकी सुनिबे कौ देव औ अदेव चहैं,
स्रवनन मैं आय परे भागन सौं यहै सुख ।
सबही कै चाहना है मोहन-दरस पावैं,
मोहन कै चाहना है राधा की कृपा-रुख ॥
औरन के दुख कौ मिटैया हैं कन्हैया सोई,
ब्रजनिधि चाहैं राधे मेटिहैं मदन-दुख ।
राधा नाम मुख कहैं सोइ ध्यान हिय रहै,
घाम सीत सिर सहैं कारन दरस मुख ॥ १९ ॥

दोहा

इकटक चितवत द्वार कौ, धीरे है बेहाल ।
भान-कुँवरि के दरस कौ, ठाढे रहत गुपाल ॥ २० ॥

कवित्त

भोर ही तैं नंद को किसोर मोर-पच्छ धरै,
पौरि वृषभानजू की ओर दृग दै रह्यौ।
बार बार चौंकत सो चकृत सो चाहि चाहि,
उझकि उझकि देखवे कौ तन तै रह्यौ॥
बड़ी बेर पाछै क्यौं हू निकसी अचानक ही,
देखत निहाल ह्वैकै दरपन लै रह्यौ।
मुकट कौ छाहाँगीर किये ब्रजनिधि ठाढ़ौ,
मुख की छटा की छवि छाकनि छकै रह्यौ॥ २१॥

दोहा

लोक चतुर्दस ही सदा, हरि-चरनन नित ध्यान।
चहै कृष्न राधे-चरन, अलता[1] देत सु आन॥ २२॥

कवित्त

काली कहै मो मैं है रु सिव कहै मो मैं है रु,
ब्रह्मा कहै मो मैं जाको थाह ना परत है।
इंद्र कहै मो मैं है बरुन कहै मो मैं है रु,
कहत कुबेर नित ध्यान कौ धरत है॥
जम कहै मो मैं है रु सेस कहै मो मैं है रु,
ब्रजनिधि सबहू कृपालना करत है।
तीन लोक को ही नाथ ताके सब विस्व हाथ,
सो तौ ब्रजरानी पग जावक[2] भरत है॥ २३॥

---

(१) अलता = महावर। (२) जावक = महावर।

दोहा

प्रिया-चरन कौ लखत ही, रहे कृष्न ललचाय।
कर लै मोहे देत रँग, दियौ जाय नहिं पाय ॥ २४ ॥

कवित्त

धायकै गुलाब-जल तन सुख सौंचि पौछि,
रचना चरचिबे कौं वे शौ हैं सुघर राय।
नैनन सौं नैनन ही दोउन के मिले जाव,
प्रेमहि पै सरसात मनमानी समै पाय ॥
सुधि हू कौ भूलत हैं ब्रजनिधि बेर बेर,
सखी कहैं टेरि टेरि रहैं तौऊ सिर नाय।
पाय लैकै कर मैं सु मैन-विथा भरसैं,
× × × × × ॥ २५ ॥

दोहा

लियै अतर कगही करन, सरस सुगंध समाज।
चुटिया-गुंथन कारनै, हिय हुलसत ब्रजराज ॥ २६ ॥

कवित्त

कंचन की चौकी पर बैठी वृषभान-सुता,
सनमुख आरसी मैं दोऊ दरसत हैं।
पीठ पाछै कान्ह आछैं[1] बारन सँवारत हैं,
छवि कौ निहारि नीकौ अंग परसत हैं ॥
कँगही के देत प्यारी फसकत मसकत,
पुलकि ललकि तन स्वेद बरसत हैं।

---

(१) आछैं = हैं।

ब्रजनिधि प्रीतम हू रह्यौ ललचाय छाय,
सेवा को मजूरी पाय सुख सरसत हैं ॥ २७ ॥

दोहा

छुवत राधिका-अंग कौ, कंप-स्वेद ह्वै जाय।
होय न नैंक सिंगार हू, कैसे ब्रजनिधि राय ॥ २८ ॥

कवित्त

राधिका कौ परसत ही बिहारी बिवस भए,
कंपित करन टेढ़ौ तिलक बनायौ है।
फूलन की माला पहराय न सकत चित,
चकृत भए हैं मन चेटक सो धायौ है ॥
बीरी हू न दई जाय ब्रजनिधि यौं लुभाय,
प्रियाजू कौ अद्भुत ही रूप दरसायौ है।
सकल-कला-निधान सुंदर सुजान कान्ह,
प्यारी को सिगार चारु करन न पायौ है ॥ २६ ॥

दोहा

प्यारी को सृंगार करि, पीव[1] देत मुख पान।
मुसकाती झाँकी प्रिया, लगी आन मन बान ॥ ३० ॥

कवित्त

रूप-उँजियारी गुन-भारी है किसोरी प्यारी,
ताकी अति रूप-छटा चंद्रिका-प्रकास मैं।

(१) पीव = पति।

बाँकी भौंह बड़े नैन मारि डारौं रति-मैन,
बैन सुधा पूरत सी हित के बिलास मैं॥
लैकै कर बीरी ब्रजनिधि आनि दैन लागे,
करत खवासी मति न्हासी जात या समै।
मनहू न आगै बगे टकटकी नैन लगे,
आगै कौ न पाय पगे प्रिया-मंद-हास मैं॥ ३१॥

दोहा

राधे-आनन निरखिकै, चकित रहे नँद-नंद।
प्रीति-रीति है अटपटी, भयौ चकोरहि चंद॥ ३२॥

कवित्त

छबि की छटा है बढ़ी रंग की अटा है लखि,
मदन-हटा है सो बिलास बेलि कंद है।
जगमग दिवारी है कि दामिनि उज्यारी है कि,
देवता-सवारी है कि मंद हास पंद है॥
ब्रजनिधिजू की प्यारी लली वृषभानुवारी,
सोभा की सरित मनौ अद्भुत छंद है।
रूप है अगाधे चितवनि दृग आधे साधे,
राधे-मुख-चंद को चकोर ब्रजचंद है॥ ३३॥

दोहा

लाल लगावत अतर वर, राधे तन सुकुमार।
चलत गिलगिली[1] कुचन पर, लखत झिझक रिझवार॥ ३४॥

कवित्त

सोरह सिंगार सजि गोरी हित-बोरी राधा,
प्रीतम कै पास बैठी महारस-रंग मैं।

---

(१) गिलगिली=गुदगुदी।

ललिता बिसाखा सखी बीजना[1] चँवर लियै,
प्यासै भौंर चंचरीक गुंजत उमंग मैं ॥
ताही समै ब्रजनिधि अतर मैं तर करि,
दोऊ कर प्यारी के लगाए अंग अंग मैं।
नासिका-सकोरन मैं नैनन की कोरन मैं,
जकि थकि रहे बाँकी भौंहन उतंग मैं ॥ ३५ ॥

दोहा

नवल बिहारी नवल तिय, जोरी परम प्रवीन।
गान दोऊ करि परसपर, भए अधिक आधीन ॥ ३६ ॥
वंसी-तान-तरंग इत, उत मुख अति गुन-गान।
होड़ परी जू परसपर, सरस कौन की तान ॥ ३७ ॥
बीन मृदंगहि जलतरँग, सारंगी रु रवाब।
तान मान की आन पर, बाजत सुघर हिसाब ॥ ३८ ॥
प्रिया किसोरी गान करि, कियौ आन बिस्तार।
लाल मूरछित करि दिए, तानन-बानन मार ॥ ३९ ॥

कवित्त

प्रेम मैं छके हैं दोऊ रस की चुहल बढ़ै,
गान कियौ आनि पिय प्यारी अति आन सौं।
तानन उपज माँझ बढ़ी है किसोरी गोरी,
बढ़यौ अति रंग अंग आनँद गुमान सौं ॥
सुनत ही राग ब्रजनिधि अनुराग पागि,
बिथा तन मैन जागि गिरे मुरझान सौं।
नृत्य-गान-तान ही मैं अति ही प्रबीन लाल,
ताहि कियौ बाल बेहवाल मारि तान सौं ॥ ४० ॥

(१) बीजना = पंखा।

दोहा

राधे-आनन-कमल पर, रहत भ्रमर ज्यौं लाल।
निरखत हैं इक टकटकी, आनँद-प्रेम-निहाल ॥ ४१ ॥

कवित्त

आनन-कमल बीच अलि जिमि लागि रह्यौ,
मन अरु देह कर नैंक हू हलैं नहीं।
प्रेम की उमंगनि मैं हाव-भाव-रंगनि मैं,
रूपहि लुभानौ और दृगन हलैं नहीं ॥
करत सिंगार चारु फूलन वनाय हार,
व्रजनिधि बीरी लियै ठाढ़े हैं चलैं नहीं।
मोहन गुपाल लाल करत्तौ प्रियाजू की प्रीति,
हाल है बेहाल सेवा-टहल टलैं नहीं ॥ ४२ ॥

दोहा

मोद मढ़े सुख सौं बढ़े, पढ़े प्रेम-चटसार।
दंपति रस-संपति भरे, कुंजन करत बिहार ॥ ४३ ॥

कवित्त

गलबाँही दियै दोऊ देखैं तरु-बेलिन कौ,
महकत फूलन सुगंध सरसायौ है।
तैसीयै खिली है चंद-चाँदनी अमंदछबि,
सुंदर सुहाई रैन मैन उमगायौ है ॥
सुक-पिक-सारिका हू काम की कुमारिका सी,
व्रजनिधि राधे राधे कहिकै सुनायौ है।
अंग अँगराय कै रहे हैं लपटाय छाय,
गौर घटा साँवरे पै रंग बरसायौ है ॥ ४४ ॥

दोहा

करैं बिहारहि प्यार सौं, कोटि-मार-छवि वार[1] ।
दंपति रस-संपति लहैं, सुरति-कला बिस्तार ॥ ४५ ॥

कवित्त

आनँद कौ चाहि चाहि दोऊ तन मैन घाय,
सोई गुन गाय गाय कोकिल चकी रही ।
रस के बिलासनि मैं भाव के हुलासनि मैं,
चाँदनी-प्रकासनि मैं उपमा थकी रही ॥
राधे-ब्रजनिधि रीझि स्वेद-कन भींजि भींजि,
देखन सकैं न कोऊ लाज हू जकी रही ।
कुंज-द्वार अड़िकै जु गुंजत भ्रमर-पुंज,
भरिकै सुबास राख्यौ थकित छकी रही ॥ ४६ ॥

दोहा

राधे-छवि दृग अधखुले, सुरति रैनि कै मत्त ।
लखैं कृष्न मुख इकटकी, प्रीति-भाव मैं रत्त ॥ ४७ ॥

कवित्त

सरक्यौ सिँगार अंग-भूखन दरकि रहे,
मुख पै अलक छूटि रस सरसानौ है ।
तरकी तनी हू और अँगिया दरकि रही,
नीवी-बंध ढीलौ नीवी सरस सुहानौ है ॥
ब्रजनिधि देखत ही रीझि अति भींजि रहे,
इकटक देखैं मनौं मैन-भूप-थानौ है ।
रूप कौ खजानौ है कि छवि-जीत-बानौ है कि,
प्रेम सरसानौ है कि बड़े भाग मानौ है ॥ ४८ ॥

---

(१) वार = निछावर ।

दोहा

मिलैं मिलैं रतिपति दलैं, इकटक हलैं जु नाहिं।
प्यारी-लोचन निरखि पिय, तन मन मैं सरसाहिं॥ ४९॥
दृग झपकत आरस भरे, हैं रस मैं सरसान।
अरुन[1] घुरे प्यारी-नयन, पिय-हिय चुभे जु आन॥ ५०॥
पल झपकत दृग नींद मैं, तान चूकि लिय लाल।
खोलि नैन प्यारी कहत, कहा करत यह ख्याल॥ ५१॥
नींद की अँखिया धुकी, निरखी नंदकुमार।
करत पायँ मैं गुदगुदी, खुले नैन मद-भार॥ ५२॥
बदन-माधुरी निरखि पिय, होत आप बलिहार।
दै सीटी जस गावहीं, नैन मैन सरसाय॥ ५३॥
कुंज-ओट लखि कै सखी, भई थकी सी आय।
छकी छबी नहिँ सब जकी, उपमा कही न जाय॥ ५४॥
प्यारी आरस निरखि कै भयौ रैनि कौ भोर।
पिय-नैननि पलकनि लगे, रीझि रह्यौ ह्वै मोर॥ ५५॥
मुख कर दैकै लखत है, पिय अरसानी बान।
रूप छके ह्वैकै रहे, सोवत नाहिं सुजान॥ ५६॥
दृग सौं दृग ही चुभि गए, खुबे[2] हिये के माहिं।
उरझे पिय अरसान मैं, छूटन पावैं नाहिं॥ ५७॥
पिय-प्रीतम उरझे रहौ, यह छबि रहौ सु जोय।
ब्रजनिधि-दास पवो कहै, राखौ चरन समोय॥ ५८॥
ब्रजशृंगार हि ग्रंथ कौ, जब रस पावैं भाय।
ब्रज मैं आवैं प्रीति सौं, सिर के पायँ बनाय॥ ५९॥

---

(१) अरुन = लाल। (२) खुबे = चुभे।

जहँ ब्रज दंपति सुख लख्यौ, भयौ सुफल सो जान।
तेई नर हैं जगत मैं, और जु पसू-समान ॥ ६० ॥
क्रीड़ा दंपति-भाव सौं, रसिकन हिये सुहाय।
और न जानै भाव कौ, ब्रजनिधि दासहि पाय ॥ ६१ ॥
परम ब्रह्म को ब्रह्म यह, जुगल रूप ब्रजनार।
मन दैकै पढ़ि लेहु तू, ग्रंथहि ब्रज-सिंगार ॥ ६२ ॥
ब्रज की महिमा कह कहौं, मोहन सो भरतार।
चरन छिपी सारी मटी[1], जमुना सो उर-हार ॥ ६३ ॥
श्री गुबिंद सी निधि जहाँ, जैपुर नगरहि माँझ।
जिहि वह सुख दृग ना लह्यौ, ताकी जननी बाँझ ॥ ६४ ॥
संबत अष्टादस सतक, इक्यावन बर साल।
माघ कृष्ण षष्ठो सुरबि, पूरन ग्रंथ बहाल ॥ ६५ ॥

इति श्रीमन्महाराजाधिराज महाराज राजेंद्र श्री
सवाई प्रतापसिंहदेव-विरचितं ब्रजशृंगार
संपूर्णम् शुभम्

---

(१) मटी = मिट्टी।

राग सारंग (चौताल)

बैठे दोऊ उसीर-बँगला मैं ग्रीषम सुख बिलसत दंपति वर।
अंसन धरे तँबूरे रूरे गान करत मन हरत परसपर॥
तान लेत चित की चोपन सौं मोहे बृंदाबन के थिर-चर।
ब्रजनिधि राधा रूप अगाधा बरसायौ अति आनँद को झर॥ १॥

चलि री मग जोवत हैं स्याम।
निज कर फूलन सेज सवाँरी बिथा बढ़ी हिय काम॥
बंसी अधर धारि तेरौ ही गावत राधा नाम।
ब्रजनिधि सुनत वचन सजनी के चली कुंज अभिराम॥ २॥

बिहरत राधे संग बिहारी।
कुंज-भवन सीतल द्रुम-छैयाँ चंद-ज्योति उजियारी॥
गलबाँही दै करत नृत्य दोउ उघटत सँग ललिता री।
बहसि बढ़ी आपस में दुहुँवनि रंग रह्या अति भारी॥
बाजत ताल मृदंग झाँझि डफ मुरली की धुनि न्यारी।
ब्रजनिधि तान लेत रँग भीनी अति अनूप पिय प्यारी॥ ३॥

परगट दीसत अंग अंग रँग-पीक लीक काजर कीयो कौन संग।
पीत पट छाँड़िके नीलपट ओढ़ि आए कौन धौं रिझाए रीझे॥
रस-मद से भीजे समर-संग्राम जीति सुरति मैं भए दंग।
मया करि आए मेरे सूरज सरूप लिये ऐसी दिपत मानों
जेठ की दुपहरी संग॥

ब्रजनिधि लाल तुमे जानत न वहै बाल होवेगी निहाल छे ।
एक न रखोगे प्रीत वासौं भी करोगे तुम प्रेम को निदान भंग ॥४॥

राग सारंग वृंदावनी (चौताल)

कौन तेरे साथ जात ग्रीवा पर धरे हाथ
कोमल-कमल-गात आज ही मैं देखी प्रात ॥
मंद मुख हास जाके भेंटे मिटै मैन-त्रास
मन को हुलास करैं सुख रस भरी बात ॥
भूलों नाहि जस तेरो ब्रजनिधि नाम मेरो
वाको ह्वै रहोंगो चेरो आनँद उर ना समात ॥ ५ ॥

राग सारंग (तिताला)

तुम्हें हम ऐसे न हे पहिचानें ।
जैसे स्याम सरूप प्रगट हे तैसे हिये न जानें ॥
छैल चतुर रिझवार महा अति अब कपटी करि मानें ।
ब्रजनिधि राज कहे ब्रज-सुंदरि हूक उठत हिय व्याकुल प्रानें ॥६॥

मोहन मदन मंत्र पढ़ि डारयौ ।
घर मैं रह्यौ जात नहिं सजनी बंसी मैं लै नाम उचारयौ ॥
सूझत स्याम मनोहर सब दिसि रज को हेरत जैसे न्यारयौ ।
ब्रजनिधि किए प्रान चलनी सम मन नहिं धीर धरत क्योंहू धारयौ॥७॥

राधे तुम मोकौ अपनायौ ।
हौं मतिमूढ़ कछू नहिं समुझौं तासौं सुजस गँवायौ ॥
करुना करी जानि निज सेवक हिय आनंद बढ़ायौ ।
रसिक जनन में कियौ उजागर ब्रजनिधि दास कहायौ ॥ ८ ॥

राग सारंग ख्याल (जल्द तिताला)

हमारी बृंदावन रजधानी।

निधि बन महाराज ब्रजराज लाडिलो श्रीराधा पटरानी ॥
निधि बन सेवा कुंज पुलिन बंसीवट सुख-धानी।
ब्रजनिधि ब्रजरस सौ मन अटक्यौ निधि पाई मनमानी ॥ ९ ॥

राग सारंग ख्याल (तिताला)

प्यारौ ब्रज ही को सिंगार।

मोर-पखा वा लकुट बाँसुरी गर गुंजन को हार ॥
बन बन गोधन संग डोलिबो गोपन सौं कर यारी।
सुनि सुनिकै सुख मानत मोहन ब्रजबासिन की गारी ॥
बिधि सिव सेस सनक नारद से जाको पार न पावैं।
ताकौ घर-बाहर ब्रज-सुंदरि नाना नाच नचावैं ॥
ऐसौ परम छबीलौ ठाकुर कहौ काहि नहिं भावैं।
ब्रजनिधि सोई जानिहै यह रस जाहि स्याम अपनावैं ॥१०॥

आज कछु बानिक नई बनाई।

छूटि रहीं अलकैं कपोल पर नैन-कंज सोहत अरुनाई ॥
अंग अंग अलसाने जाने पलक अधखुली अति छबि छाई।
बिन गुन माल बाल पहराई ब्रजनिधि कैसे छिपत छिपाई ॥११॥

उपासक नेही जग मैं थोरे।

जिनके दरस करत ही हिय मैं आवैं साँवल-गोरे ॥
यह रस अति दुर्लभ सबही तैं जानि सकैं नहिं कोरे ॥
ब्रजनिधि कृपा पाय दंपति की जुगल रंग मैं बोरे ॥१२॥

राग सारंग ख्याल (तिताला)

कुतूहल होत अवधपुर ओर।
सुर सौं बजत सरस सहनाई सुर-दुंदुभि की घोर॥
रघु-कुल-तिलक राय दसरथ के प्रगट भए रघुराई।
कौसल्या की कूँखि सिरानी मनमानी निधि पाई॥
कोसल देस बढ़्यौ अति आनँद गावत नारि बधाए।
ब्रजनिधि खरभर परी लंक मैं संतन मन हुलसाए॥१३॥
जमुना-तट बंसीवट-छैयाँ ठाढ़ो बेन बजावै हो हो।
कोउ इक नटनागर रस-सागर गुन-आगर गुन गावै हो हो।
गलबहियाँ दैकै प्यारी कौ राग सुनाय रिझावै हो हो।
रसिक-सिरोमनि स्यामसुंदरबर ब्रजनिधि हियो सिरावै हो हो॥१४॥
आज को सुख न कह्यौ कछु जाय।
रंगमहल मैं राधा-मोहन रहे रंग बरसाय॥
ललिता बीन बजावत प्यारी गावत राग जमाय।
ब्रजनिधि रीझि लई बंसी तहाँ बजई सुरनि मिलाय॥१५॥

राग सारंग ख्याल (इकताल)

जमुना-तट दोऊ गरबहियाँ गान रंग बरसावै हो।
चोपन चढ़ि चढ़ि बिपिनराज की सोभा कौं दुलरावै हो॥
बढ़ि बढ़ि मुदित प्रसंसित छबि कौ आनँद उर न समावै हो।
ब्रजनिधि सौ कछु कहि नहिं आवत देखै ही बनि आवै हो॥१६॥

राग सारंग (सुर फाख्ता चर्चरी)

मन मैं राधा-कृष्न रचाव।
विषय-बासना अनल-उझाल हैं तासौं करौ बचाव॥
सुख संपति दंपति वृंदावन वाही बुद्धि नचाव।

धन दारा रु मित्र बंधव सो तृष्ना को जु लचाव ॥
दै कौड़ी मनि गाँठ बाँधि ले यामें नाहिं कचाव।
गौर स्याम सुदर बर सागर ता मधि तनहिं जँचाव ॥
बुरी भली क्यों सहै जगत की अब जिन सीस खिचाव।
ब्रजनिधि के चरना में चित दे वाही खेम पचाव ॥ १७ ॥

राग सारंग ख्याल (इकताला)

मन तू सुमिरि हरि को नाम।
अर्क-सुत[1] की त्रास माहीं कृष्न रामहिं काम ॥
चित्त धरि ले सुभग लीला गौर स्यामा स्याम।
चरन-छाया रहै निरभै हरी सीतल भाम ॥
क्लेस भव के दे अवै तू भजन की दृढ़ खाम।
विषय-सुख-आसा न कर तू त्याग दुख की धाम ॥
दाम एक न लगै तेरो मिलै तोहि तमाम।
कहैं ब्रजनिधि दास ले तू अटल पदवी पाम ॥ १८ ॥

राग सारंग ख्याल (ताल होरी)

हम तो चाकर नंदकिसोर के।
रहैं सदा सनमुख रुख लीए गौरी गरब गरूर के ॥
ब्रजनिधि के संगी कहायकैं अब नहिं हैहैं और के ॥ १९ ॥

राग सारंग ख्याल (इकताला)

प्यारी पिय महल उसीर दोऊ बिलसैं नाना सुख के पुंजैं।
हिलियाँ मिलियाँ सब रंगरलियाँ कुंजन-गलियाँ अलियाँ गुंजैं ॥
लखिकैं रसकेलि अलबेलि नवेलि उभै रति-मैन भये लुंजैं।
ब्रजनिधि कल कौतिक[2] को बरनैं जेवे विहरैं कुंजैं कुंजैं ॥२०॥

---

(१) अर्क सुत = यमराज। (२) कलकौतिक = सु दर कौतुक (लीला)।

राग सारंग (तिताला)

ऐसी निठुराई न चहिए नवरंगी टेव परी ये कौन।
तिहारी हँसी अरु और को मरन है सुख बरखो जू सुखभौन॥
जानि परत चितवृत्ति कहुँ बिथुरी हमहिँ गने तुम गौन।
व्रजनिधि आन उपाव न तुमसों अब करिहैं मुख मौन॥२१॥

राग सारंग (जल्द तिताला)

हमने नेह स्याम सों कीनो।
जबही तें वह दुख सगरो ही सब सौतिन को दीनो॥
अष्ट सिद्धि नव निद्धि मिली री सफल भयो अब जीनो।
कोटि काम वारों व्रजनिधि पर नैन रूप-रस पीनो॥२२॥

कृष्ण कीने लालची अतिही।
भौहैं बंक कमलदल लोचन खंजन मीन रहे ये कितही॥
व्रजनिधि नेक कृपा करि झाँकत अष्टसिद्धि है जितही॥२३॥

राग सारंग (बधाई ख्याल ताल)

भयो री आज मेरे मन को भायो।
बड़ी बैस मे महरि जसोदा सुंदर धोटा जायो॥
गोपी छबि ओपी मिलि गावत आनँद को झर लायो।
धन्य भाग नँदराय महर के व्रजनिधि गोद खिलायो॥२४॥

राग सारंग (ख्याल ताल)

ललन को जसुमति माइ झुलावे।
सुंदर स्याम पालने झूलें गीत गाइ दुलरावें॥
किलकि किलकि मैया तन हेरें तब हँसि कंठ लगावें।
व्रजनिधि चूमि बदन मोहन को आनँद उर न समावें॥२५॥

राग सारंग

रस भरयो रसिया मोहन छैल ।
फागुन आगम के मिस सों री करत अनोखे फैल ॥
रंग रँगीले सखन संग ले हों निकसों तब रोकत गैल ।
बचिए कहो कहाँ लगि सजनी ब्रजनिधि करत रंग की रैल ॥२६॥

राग सारंग ख्याल (जल्द तिताला)

अरी हौं हिय की बेदनि कहौं कौन सों जिय मेरो अकुलाइ ।
जाके लगी सोई पहचाने और सके नहिं पाइ ॥
एक दिना हौं अपने मारग चली जाति ही सहज सुभाइ ।
कोऊ छली छबीली मूरति छलछाया सी गयो दिखाइ ॥
वा बिरियाँ की या बिरियाँ लों ललक लोइन वे नहिं जाइ ।
अधरनि धारि बाँसुरी में कछु टोना सो मोहि दियो सुनाइ ॥
हितू जानि मैं तोहि सुनाई फिरि पूछे तू आगे हाइ ।
ब्रजनिधि की सौं साँच कहति हौं तब तें तन-मन गयो बिकाइ ॥२७॥

बिहारनि करि राखे हरि हाथ ।
बीरी देत लिए कर में कर हँसि रहत नित साथ ॥
ह्याँ तो टहल करत निज महलों हैं त्रिभुवन के नाथ ।
प्यारी देत रीझि ब्रजनिधि को लेत कबहुँ भरि बाथ ॥२८॥

राग सारंग ख्याल (इकताला)

छबीली डफ लिए गारी गावैं ।
दे तारी जु कहैं हो हो री मोहन सनमुख धावैं ॥
अंजन आँजि गाल गुलचा दे मुख गुलाल लपटावैं ।
ब्रजनिधि रीझि-भीजि राधे पर यह औसर नित पावैं ॥२९॥

राग सारंग ख्याल (जल्द तिताला)

बरसाने सों बनि बनि बनिता नंदगाँव को आईं हो।
चंग बजावत गारी गावत भारी धूम मचाई हो॥
यह सुनि सखा संग ले निकसे सुंदर स्याम कन्हाई हो।
हो हो कहि पिचकारिन-धारन रंग की झरी लगाई हो॥
रपटि परसपर झपटि के रपटत अबिर-गुलाल उड़ाई हो।
अंकहि भरत निसंक लाल को मुख रोरी लपटाई हो॥
ग्वालन के वाच्यो दे आँछो प्रीति-रीति सरसाई हो।
मुरली लई छिनाय स्याम की कुंज-धाम गहि ल्याई हो॥
फगुवा दियो मोद करि अतिही तापहि मदन मिटाई हो।
मन सो रतन दियो तब छूटे ब्रजनिधि है बलि जाई हो॥२०॥

आली आहा आहा रे होरी आई रे।
फागुन मास सुहावनो सजनी करिहैं मन चित भाई रे॥
हिलि मिलि चोप चौगुने चित सों रतिपति-चाप मिटाई रे।
रूप सलोनो छैल साँवरो हिव की झरी लगाई रे॥
गावत गारि कुढंगी मोहन लागत परम सुहाई रे।
हैंसन भरे धौस या रितु के अति मति रस सरसाई रे॥
श्री ब्रजनिधि वृषभान-किसोरी जोरी यह छबि छाई रे॥२१॥

भनि हे महिँ कौ आँखिन माहिं डारी।
गुलाल ढीठ लँगर यह नंदकुँवर ने बरजोरी कर कर॥
सनमुख होकर मटकत है लटकावत कटि कौं।
नैन नचावत भौंह उचकावत मुसकावत है धावत इत कौं।
कर पिचकारी ले केसरि भर भर॥

बाट-घाट निसि-दिन टोकत है रोकत मग कौ।
मन में बात घात को घर घर॥
ब्रजनिधि आगे सकुचि गात को लाज मरत हौं।
निकसत ना या घर तें डर डर॥३२॥

राग सारंग चर्चरी (ताल जत)

मुखहिं अंबुज सुनी तान अमृत-स्रवी।
सप्त सुर सों सुघर राग सारंग के,
रंग में रीझि के मान राधे द्रवी॥
अली पंक्त्यावली गुंज कुंजन हिली,
जहाँ चली प्रिया सोतें चली ले क्रवी।
निरखि ब्रजनिधि पिया रूप लखि छकि जिया,
मोद सों मिलि तिया रसहि हँसि के टवी॥३३॥

राग सारंग ख्याल (जल्द तिताला)

छाँड़ो मोरी बहियाँ ढीठ लँगर
बरजोरी करत हौ परौं हौं तिहारे पइँयाँ।
या ब्रज के सब लोग चवैया जाय कहेगी
कोऊ बजमारी सास ननँद लरिहै घर गइँयाँ॥
औसर में मौसर न चूकिहौं दाऊ की सौं खइँयाँ।
ऐसे चपल न हूजे ब्रजनिधि कहत चलो अँबरइयाँ॥३४॥

राग गौड़ सारंग ख्याल (ताल दुताला)

राधे सुंदरता की सींवाँ।
मनमोहन कौ हू मन मोह्यो निरखि करत अध ग्रीवाँ॥
चितवनि चलनि हसनि प्यारी की देखे बिन क्यों जीवाँ।
ब्रजनिधि की अभिलाष निरंतर रूप-सुधा-रस पीवाँ॥३५॥

राग गौड सारंग (दुताला)

मोहन मुरली मैं मदन-मंत्र पढ़ि डारयो।
मनहिं मरोरि लियो री मेरो बिन मोलन चेरो ह्वै हारयो॥
मुख की मृदु मुसकानि मनोहर नैन-कटाछि जिवाय के मारयो।
व्रजनिधि लाल ख्याल ही मे यह इंद्रजाल बिस्तारयो॥३६॥

राग सारंग वृंदावनी ख्याल (जल्द तिताला)

मोहन उदमाद्याजी म्हाँरे आयाछै मिजमान।
नृत्य करो अरु भाव बतावो गावो मीठी तान॥
मंगल कलस बँधावो सब मिलि करो री रूप रस-पान।
केसरिया माँग करो री कसूँभा फूल पान ल्यावो अतरदान॥
राधेने महलाँ पहुँचावो जहाँ सुंदर स्याम सुजान।
पूजन करि बाँटे री बधाई गोरलरो सनमान॥
जनम जनम व्रजनिधि वर दीजो यह माँगों वरदान॥३७॥

राग लूहर सारंग (जल्द तिताला)

गोरल पूजत नवल किसोरी।
संग सहेली सब अलबेली लिए फूल-फल-रोरी॥
गान करत कोकिल सी कुहकत उमँगि उमँगि रँग बोरी।
रमकि झमकि चमकत चपला सी धमकत मिलि इक ठोरी॥
रुनक झुनक आभूषन खनकत छनकत बिछिया डोरी।
लचकत कटि उचकत दे तारी चाँचर की चित ढोरी॥
फागन माहिं लाल मतवारे चैत हेत-मतवारी गोरी।
व्रजनिधि छैल छक्यो छवि निरखत कीरतिजू की पोरी॥३८॥

राग सारंग ख्याल (जल्द तिताला)

भयो री आली फागुन मन आनंद।
बहुत दिना के हाव दिलों में अब मिलिहैं री रसकंद॥
वह वृंदावन धूम मचाई कुंजबिहारी व्रजचंद।

डफ बाजत मुरली घनघोरत नाचत हैं री नँदनंद ॥
सुनत स्रवन धुनि मुनि-मन डगमगे प्रीत-रीति को फंद ।
होरी में दौरीं सब गोरी करि करि छबि के छंद ॥
मन-अंच्छ्या पूरन भई सबकी मिट्यो री मदन-दुख-दंद ।
रीझि-भीजि रही सब व्रजनिधि पै वारत तन मन जिंद ॥३६॥

राग सारंग लूहर ख्याल होरी (जल्द तिताला)

चलो री हेली होरी धूम मचावे ।
हेत-खेत बृंदावन माहीं प्रीतम पकरि नचावे ॥
अंजन आँजि नीको नैनन में मुखहि गुलाल लगावे ।
टीको भाल गाल गुलचा दे तीखी तान गवावे ॥
गारी गावें नंदराय को हँसि हँसि डफहि बजावे ।
मोहन सों सब अँग दलमल के यह औसर कब पावे ॥
फागुन में फगुवा ले रति को स्मर-संताप मिटावें ।
व्रजनिधि को अधरा-रस इहि विधि पीवे प्रान छकावे ॥ ४० ॥

राग सारंग लूहर ख्याल (जल्द तिताला)

थे थाँजी हठीला राज म्हाँहे जावादो ।
म्हाँहें क्यों रोको दधिदान प्यारो ल्यो ॥
जोर थारो चालै नहीं काँई करस्यो ।
व्रजनिधि पिय म्हारो मन तो मथ्यो ॥ ४१ ॥

राग सारंग लूहर (ताल पस्तो)

कानाँजी कामँणगाराहो थे तो म्हाहें वाला लागाजी राज ।
खरी दुपेरी कुंजाँ माँहीं थाँसूँ म्हारो काज ॥
रँगरा भीना छैल छबीला केसरियाँ कियाँ साज ।
व्रजनिधि म्हारे मन में बसैया आधा आवो आज ॥४२॥

राग सारंग ख्याल (ताल होरी)

बसें हिय सुंदर जुगल किसोर ।
नागर रसिक रूप के सागर स्याम भाम तन गोर ॥
सोहन सरस मदन मनमोहन रसिकन के सिरमौर ।
बिहरत ललित निकुंज-भवन में व्रजनिधि चित के चोर ॥४३॥

राग सारंग (चौताल)

प्यासन मरत री नेक प्यावो मोहिं पानी ।
लेहु जल पीवो लाल जब इन ओक कीन्हीं ॥
ढीली अँगुरिन जल चुचावत नैन सैन मिलावत
निरखि ग्वारि मुसकायके कहत प्यास जानी ॥
फिरि गागरि भरि सिर पर धरि घर चाली
तब लाल गैल रोक्यो मग भई बाल अनखानी ॥
जान देहु व्रजनिधि कंस को अमानो राज
इतनी कहत ही प्रीति-रीति उमगानी ॥ ४४ ॥

राग सारंग ख्याल (जल्द तिताला गाँवणों)

अनि हो महिं सों जिन बोलो तुम घर घर डोलो प्रीत न तोलो ।
बात कपट की जिन खोलो चुप रहो अबै ना छतियाँ छोलो ॥
एकन सों तुम नैन मिलावत एकन सों तुम सैन चलावत ;
एकन सों तुम वैन बनावत एकन के रजनी रहि आवत ॥
एकन को डहकावत तापर सनमुख होकर सौहें खावत ;
एकन की बहियाँ झकझोलो ॥
काहू को तुम गाय रिझावत काहू को तुम नाच नचावत ;
काहू को तुम नाचत भावत तापर कोऊ थाह न पावत ;
हाय दई तू कैसो भोलो ॥
करत सनेह भई देह खेह छुट्यो सब गेह जावो व्रजनिधि
अबै हलाहल मति घोलो ॥४५॥

राग सारंग ख्याल (जल्द तिताला)

नृपति घर आज हरख-भर बरखैं।
श्री दसरथ महिपालरे रावले आनँदरी निधि परखैं॥
रामचन्द्ररो जनम हुवो सुणि सुर बिमान चढ़ि निरखैं।
ऐही ब्रजनिधि होसी ब्रज में या मन साँच रखैं॥४६॥

राग सारंग वृंदावनी ख्याल (जल्द तिताला)

पिय प्यारी भोजन भेलेहूँ करत मनौं मन हरैं।
काँसो कनक रु सुबरन चौकी रचना रचि ललिता जु धरैं॥
भक्ष्य भोज्य अरु लेज्य चोज्य औ चोस्य पेय ले अमित भरैं।
गुपचुप लाय प्रिया मुख दीनी अर्ध पान ले आप करैं॥
समुझि सकुचि चतुराई को प्यारी नैनन माँझ लरैं।
खाँड खिलौना नटनी लेकरि प्रीतम के सनमुखहि अरैं॥
नोक ठठोलहि समुझि लालजू हसनि दसन से फूल झरैं।
श्रीराधे-ब्रजनिधि को कौतिक सखियाँ अँखियन माहिं चरैं॥४७॥

राग सोरठ ख्याल (जल्द तिताला)

ठगौरी डारि गयो इत आय।
टोना सो पढ़िके बंसी में सैननि चित्त चुराय॥
नैननि चुभी साँवरो सूरति जियरा अति अकुलाय।
कल न परति दिन-रैनि सखी री ब्रजनिधि मोहि मिलाय॥४८॥

राग सोरठ ख्याल (तिताला)

प्यारो लागे री गोबिंद।
केसरिया फैंटा सिर सोहै माथे पर मृगमद को बिंद॥
नव घनस्याम मदन-मद-मर्दन दुख-मोचन लोचन अरबिंद।
ब्रजनिधि छैल छबीले मुख पर वारों कोरि सरद के इंद॥४९॥

सलोने श्याम ने मन लीता।
रच दिहाडे कल नहिं पड़दी क्या जाणूँ क्या कीता॥
कहर बिरहदी लहर उठंदी दिल नहिं रहे सुचीता।
व्रजनिधि मिहरि नजरबा जूं अब क्यों होवे चित चीता॥५०॥

राग सोरठ (तिताला)

देखा जहान बीच एक नाम का नफा है।
अपना न कोई सच्चा दुनिया से दिल खफा है॥
दिलवर की यादि बिन खोना दम का बेवफा है।
व्रजनिधि की महर से होवे दुख रफा दफा है॥५१॥

राग सोरठ ख्याल (तिताला)

हरि सो नाहि कोऊ रिझवार।
नाम के नाते अजामिल कियो भवनिधि पार॥
और साधन नाहिं कलि मैं कियो स्रुति निरधार।
यहै निहचै जानि व्रजनिधि ग्रहन कीयो सार॥५२॥

हे हेली री म्हारी साँवरो सलोनो प्यारो।
मोर मुकट कुंडल छवि सोहै पीत पिछौरीवारो॥
जमुना-तट फूले कदंब-तर ठाढ़ो रूप उजारो।
निरखि निरखि के जीऊँ सजनी व्रजनिधि गुन को भारो॥५३॥

राग सोरठ ख्याल (जल्द तिताला)

साँवरे सलोने हेली मन मेरो हरि लीनो।
बंसी में कछु गाय सखी री टोना सो पढ़ि दीनो॥
घर-अँगना न सुहाय बीर मोहिं लगि रह्यो रोग नवीनो।
को ऐसी जो बिकै न व्रज में व्रजनिधि छैल रँगीनो॥५४॥

राग सोरठ ख्याल (तिताला)

पिय मुख देखे बिन नहि चैन।
तलफत हैं ये प्रान बिचारे अरबरात दिन-रैन ॥
मोर-मुकट कर लकुट सोहनो छबि पर वारौं कोटिक मैन।
ब्रजनिधि रूप-उजागर नागर सब ब्रज कौ सुख दैन ॥५५॥

राग सोरठ (धीमा तिताला)

ऊधो अपने सब स्वारथ के लोग।
आप जाय कुबिजा सँग कीनो हमें सिखावत जोग ॥
हम तो दुखिया भई सबै अब बिरह लगाए रोग।
ब्रजनिधि अधर-अमृत-रस प्यायो कैसे सहैं बियोग ॥५६॥

राग सोरठ सारंग लूहर ख्याल (जल्द तिताला)

साँवनियाँ री लूमाँ झूमाँ मेहड़ो रमझम बरसे हे।
हिय सरसे हे अति ही मास सुहावनो आली हे ॥
गहर घटा चहुँ दिस तें गाजे ता बिच दामिनि चमके हे।
मन रमके हे देखें हरष बढावनो आली हे ॥
दादुर मोर पपीहा बोले कोयल कूकि सुनावे हे।
... ... ॥५७॥

राग सोरठ ख्याल (जल्द तिताला)

राधे गुनाह किया सब माफ करो।
जोरौं कर ठाढ़ो मैं सनमुख औगुन मेरे चित्त न धरो ॥
अब तो चरन सरन गहि लीनो रूप-माधुरी हिये भरो।
अपनाए की लाज स्वामिनी बेगी ब्रजनिधि ओर ढरो ॥५८॥

राग सोरठ ख्याल (तिताला)

अरी तू क्यों विरही मुरझाय, तोहि घर आँगन न सुहाय।
पनियाँ भरन गई ही पनघट आई रोग लगाय॥
मैंचक सी ह्वै रही न बोलत वेदन मोहि बताय।
करौं उपाय सखी री तेरो व्रजनिधि वैद बुलाय॥५९॥

राग सोरठ ख्याल (इकताला)

नैणाँरी हो पड़ि गई याही बाँण।
अलबेली री छवि बिन देख्याँ जिय नहिं लागे आँण॥
मगज भरी अति तीखी चितवनि चढ़ी रूप-खर-साँण।
मनड़ो वेधि कियो बस सुंदर व्रजनिधि रसिक सुजाँण॥६०॥

राग सोरठ ख्याल (आड़ा चौताल)

फुलवन सौं झुकि रही लता महिँ ठाढ़े जहाँ कुँवर नटनागर।
नव द्रुम पल्लव नव कुसुमावलि नव फल वृंदावन गुन आगर॥
नव निकुंज अलि-पुंज गुंज नव मंजु कंज प्रफुलित नव सागर।
नवल लाल नव बाल माल गल बसन नए भूषनहि उजागर॥
नयो गान नइ तान मान अरु नई सखी सबही सँग सोहैं।
नयो विलास रास रस रँग सो हास प्रकास मैन-मन मोहैं॥
ताल-मृदंग-बीन-नूपुर-धुनि नई नई तामैं गति होहैं।
नए दोऊ रिझवार परसपर रूप रीझ दोऊ बक सोहैं॥
नए नए लीला रस बरसत नई नई अति हित की बातैं।
नए प्रेम छके तके दोउ जके थके हैं सद मद मातें॥
नई कटाछि घुमड़ रति उमड़नि रमड़े रहत द्यौस अरु रातें।
नव सुख लखि राधे व्रजनिधि हित बढ़यो विनोद मोद चहुँघा तें॥६१॥

राग सोरठ ख्याल (तिताला)

जी मोही छूँ हँसि चितवनि मन लेणीं ।
मोही हसनि लसनि दसनावलि रस बरसैं सुखदेणीं ॥
लोक-बेद-कुल-कानि तजी चित चढ़ि गयो नेह-निसेणीं ।
व्रजनिधि हाथ निभाछै म्हारो हूँ तो रँगी इथारी हित रेणीं ॥६२॥

अरे सठ हठ क्यों नाहिन छाँड़े ।
छोड़ि गैल बलि जाउँ जान दे क्यों कुरारि यह माँड़े ॥
अंचर पकरि रह्यो तू मेरो कुल-बधुवनि जिनि भाँड़े ।
व्रजनिधि भयो अनोखो दानी नाहक अब मति ताँड़े ॥६३॥

राग सोरठ (रेखता)

मेरी कहानी सुनि री यह बात ख्वाब की है ।
देखी सरद जुन्हाई पारे की आब सी है ॥ १ ॥
सौंधे को लिए पवन मंद तहाँ आवती थी ।
सारो मधुर सुरन सौं रस-केलि गावती थी ॥ २ ॥
ताब सी महताब-लबों आब चमकती थी ।
नीलोफरन पै भँवर की ओा भीर रमकती थी ॥ ३ ॥
इलमास तख्त ऊपर खिलवत करें बिराजे ।
छबि को निहारि दंपति की मार-रति भी लाजें ॥ ४ ॥
इकबारगी दोनों में न रही होसयारी ।
प्यारी कहे कहाँ पिय पिय कहे प्यारी प्यारी ॥ ५ ॥
मैं तो अजाइब इस्क देखि अजब माहिं रही ।
व्रजनिधि गुजरी मुझ पर सो जाय नाहिं कही ॥ ६ ॥ ६४ ॥

राग सोरठ ख्याल (जल्द तिताला)

मेरी सुनिए अबै पुकार ।
कृपासिंधु ब्रजराज लाड़िले परयो तिहारे द्वार ॥
चरन सरन आए जे तिनके मेटे दुःख अपार ।
मेरी बेर कहो क्यों ब्रजनिधि इतनी करी अबार ॥६५॥

राग सोरठ

कैसे आगे जाऊँ री मैं तो ठाढ़ो नंदलाल री ।
धूम परत पिचकारिन की अति उड़त अबीर-गुलाल री ॥
झाँझि मृदंग ताल डफ बाजत जोर मच्यो यह ख्याल री ।
दइया ब्रजनिधि घेरि लई हौं निपट भई बेहाल री ॥६६॥

(बधाई प्रियाजू की) राग सोरठ

बरसाने बजत बधाई रे ।
श्री वृषभान नृपति के मंदिर सोभा की निधि आई रे ॥
धन्य भाग कीरतिदा रानी जाने लाड़ लड़ाई रे ।
ब्रजनिधि स्यामसुंदर की जोरी गोरी दरस दिखाई रे ॥६७॥

कान्हा तैं मेरी पीर न जानी ।
बिन देखे तलफों दिन-रैना छबि को निरखि लुभानी ॥
अरे निरदई निठुर नंद के अँखियन बरसत पानी ।
ब्रजनिधि तेरी चितवनि माहीं को तिय नाहिँ बिकानी ॥६८॥

राग सोरठ (धीमा तिताला)

ऊधो कहूँ प्रेम-चोट नहिं लागी ।
जाहि लगै सोही वह जाने हम बिरहनि अनुरागी ॥
सँग दासी के करत केलि हरि हमैं करत बैरागी ।
जब सुधि आवत ब्रजनिधि जू वह रैन-धौस रहैं जागी ॥६९॥

राग सोरठ ख्याल

रसिक दोऊ झूलत रंग हिँडोरे।
ललित निकुंज तरनि-तनया-तट बढ़ि सुख सिंधु हिलोरे॥
गावत झोटा दे सहचरि गन सघन घटा घनघोरे।
प्यारी छवि निरखत हरखत पिय व्रजनिधि ले तन तोरे॥७०॥

राग सोरठ ख्याल (जल्द तिताला)

थाँरी व्रजहो नैणाँरी सैन बाँकी छै।
मोर मुकट छवि अद्भुत राजे रूप ठगौरी नाँकी छै॥
बिन देख्याँ कल पल न परे जी म्हौ जक लगी थाँकी छै।
व्रजनिधि प्राँणपीवरी चितवन निपट सनेह अदाँ की छै॥७१॥

राग सोरठ

आज हिँडोरे हेली रँग बरसैँ।
झूलैं श्री बृषभानकिसोरी सुंदरता सरसैँ॥
धन्य भाग अनुराग पीय को दृग सुहाग दरसैँ।
झोटाँरे मिस व्रजनिधि नेही प्रिया-अंग परसैँ॥७२॥

मोहन मोह्यो छै किसोरीजीरी झूलनि में।
झलके गजमोत्याँरा गहणाँ गल के अंग दुकूलणि में॥
लचके लंक मचणे मचकीरी ज्यों मनमथ गज हूलणि में।
व्रजनिधि छैल रूपरा लोभी नैन सैन रस फूलणि में॥७३॥

राग सोरठ (जल्द तिताला)

मोहन थाँरी बाँसुरी मे रंग।
मोह लई सब अद्भुत नारी ले अति ताज तरंग॥
राग भरी यह मधुर सुरन सों बाज रही सुघंग।
व्रजनिधि को अब भुज भर लीजे कीजे रँगरो संग॥७४॥

राग सोरठ पद (इकताला)

हे री मनमोहन ललित त्रिभंगी।
नूपुर बजत गजत मुरली-धुनि ललितकिसोरीजीरो संगी॥
रास रसिक रस अद्भुत राजत तान तरंगन रंगी।
व्रजनिधि राधा प्यारी चित पर मननि भरे हैं उमंगी॥७५॥

राग सोरठ ख्याल (तिताला)

महबूबाँदी जुल्फें वे साड़े जिगर
विच जकड़ जँजीर जड़ी वे।
बिन देखें पल पलक न लगदी अँखियाँ
उसदी प्यासी खड़ी वहाँ रहत अड़ी वे॥
सब्ज हुस्न अँग अजब सजावट
उन बिन चस्मों लगी झड़ी नहीं टरत घड़ीवे।
व्रजनिधि की चितवन जु लड़ी वह
मानो इस्कदी सेग पड़ी वे॥ ७६॥

स्याम पै नित हित चित की चाय।
परिहों पाय धाय के जाय याहै फेर मिलाय॥
साही की ये बाय लगी ही ये बिरह-लाय खायहैं हाय।
छाए व्रजनिधि नैनन भाए मेरो कहा बसाय॥७७॥

राग सोरठ ख्याल (जल्द तिताला)

म्हारे गरे लागो हो स्याम सलोना।
कृपा करी म्हारे महल पधारया मोहन मनहिं लगोना॥
सुंदर सरस सोभा-सुख-सागर मुरली मदन-मंत्र को टोना।
भई दासी व्रजनिधिजी थारी अब कछु और न होना॥७८॥

मोहनॉने ल्याज्यो हे सहेली म्हारी हे।
बिनती तो कीज्यो कांई पायन पड़िज्यो करो पावन दासी थाँरी हे॥
बिरह-बिथा निवेदन कीज्यो दसा जनाज्यो सारी हे।
ब्रजनिधि हित सों हिय उमग्यो अति मांझल राति मँझारी हे॥७९॥

राग सोरठ ख्याल (तिताला)

अब कैसे करि जीहैं सजनी स्यामसुंदर अहिलोइन सर्प।
रोम रोम में फैलि गयो विष मार्‌यो तन-मन को सब दर्प॥
याकी लहर कहर की अति ही नहिं निकसत मुख सों इक हर्फ।
ब्रजनिधि बंसी धरे अधर पर जड़ी मंत्र जानों यह सर्फ॥८०॥

राग सोरठ ख्याल (जल्द तिताला)

अरी यह बात अटपटी हित की।
जाके लगै सोई तन जाने तू कहा जानत चित की॥
दिन दिनहू नीच बढ़त खुमारी प्रीति बढ़त नित नित की।
ब्रजनिधि रसियो मन में बसियो तब तें नहिं उत इत की॥८१॥

ये री थे विहारी बन्यो री बनरो
अलबेलो लटपटी सज पर वारी हौं तो।
देखत ही चित रीझि भीजि गयो
तन मन धन बलिहारी हौं तो॥
केसरि भीनो अतिहि प्रवीनो
निरखि लाज तोरि डारी हौं तो।
ब्रजनिधि दूलह दुलहनि राधा
प्यारी यह जोरी हिय धारी हौं तो॥८२॥

ये री रँग भीनों बड़ेना हेली मनडारोछै है मोहनहारो।
गरबीलो अति लाड़लड़ीलो अलबेलो गुणगारो॥
मोत्याँरो सिर सेहरो सोहे जगमग रूप उजारो।
रँगरो भीनो परम प्रवीनो व्रजनिधि फूल हजारो॥८३॥

राग सोरठ ख्याल (तिताला)

आज हौं निरखत छकि जकि रही।
लाल लाड़िली दर्पन देखत द्वै सुंदर छबि च्यारि लही॥
द्वै प्रतिबिंब प्रतच्छ लखे दोऊ सोभा मुख नहि जात कही।
अंग अंग की अमित माधुरी अँखियाँ परत ढही॥
भूषन-बसन रहे नग जगमग रस रगमगे सही।
बैठे रहसि बहसि बटि दोऊ ग्रीवाँ भुजन गही॥
संपति सुरति लूटिबे काजें चित गति अति उमही।
व्रजनिधिजू बृषभाननंदिनी हित-कटाछि करि दृगन फही॥८४॥

कैसे कटैं री दइया परबत सम री रतियाँ।
घन गरजत अति चपला चमकत बरषत झर जिय पर इह घतियाँ॥
सुरत दिखावत पीय पपीहा मारत मदन बदन की कतियाँ।
व्रजनिधि बिन छिन नाहीं जीवन दारौं ज्यों दरकत हैं छतियाँ॥८५॥

कही नहीं जावै वीर बात इकोसे की री।
कहा करौं री मइया दइया चलत पीर अति मरम मरी री॥
घर गुरजन की त्रास लगी रहै यही सोच देह भई री पीरी।
वा व्रजनिधि के मिलन हुए बिन भयो करेजा लीरी लीरी॥८६॥

राग सोरठ ख्याल (इकताला)

हेली हे नहिं छूटैं म्हारी कांण ।
क्यूँ चोघाँ सांवलिया साम्हाँ दाजीरी म्हाँहैं आँण ॥
वाँसैं क्यूँ लागी तू म्हाँरे गोठँणि भूँडाँ वाँण ।
कुण चाले व्रजनिधिरी सेजाँ मत ताँणे पर्ज़ादे जाँण ॥८७॥

राग सोरठ ख्याल (धीमा तिताला)

होरी के बावरे हैं बिहारी ।
मुख मीड्यो सब देखत मेरो लोक-लाज तोरि डारी ॥
नंदगांव बरसाने के बिच धूम मचाई भारी ।
काहू को डर नेक न मानत व्रजनिधि बड़ो खिलारी ॥८८॥

राग सोरठ

लोयँण अणियालाजी रूड़ी गोरलरा धजदार ।
कैलासबासी अनँद निवासी सोह्यो शिव सिरदार ॥
रीझि रह्यो महादेव महेश्वर महिमा कहि हिव बारंबार ।
पूजन करि रावे थाँरो पायो व्रजनिधि सो भरतार ॥८९॥

राग सोरठ ख्याल (तिताला)

बनी जी थाँरो बनड़ो ललितकिसोर ।
अलबेलो उदमाद्यो अड़ोलो आँखड़ियारो चोर ॥
होसी आज उछाह ब्याहरो जोसी लेसी लाख करोर ।
थाँरी अरु थाँका व्रजनिधिरी जोड़ी बणसी जोर ॥९०॥

बना जी थाँरी बनड़ीरे चित चाव ।
थाँरो रूप-रंग-गुण सुँणि सुँणि खिँण खिँण करेछै उछाव ॥
× × × × × × ।
× × × × × × ॥९१॥

जी गुमानी कान्हाँ थे नहिं म्हाँसूँ छाना।
कहता सुणियाँ छाँना रहोजी म्हे सारी बाताँ जानाँ॥
कूड़ा क्यों हाहा थे खावो थोक घणी थाँहे अब नहीं मानों।
गरज पड्याँरा गाहक ब्रजनिधि हद सीख्या थे कपट बनानाँ॥६२॥

राग सोरठ ख्याल (जल्द तिताला)

मानूँ हो राज इतनी बिनती म्हारी हो राज।
हिल मिल करि रस-रेल करौं निस आज
रहों मैं दासी थारी हो राज॥
नैंण बिंध्या अलबेलिया सों अब
लाज जगत री क्यांरी हो राज।
तन मन सुफल करो अब म्हारो
ब्रजनिधि विपिन-विहारी हो राज॥ ६३॥

ऊधो हम कृष्न-रंग अनुरागी।
दृष्टि पर्‌यो जब तेंवह सुंदर रहै मूरत हिय मैं नित पागी॥
तिरछी बंक कटाछि दृगन की उर में फँसिके लागी।
दासी भईं हम सब ब्रजनिधि की तो क्यों हमको त्यागी॥६४॥

राग सोरठ ख्याल (तिताला)

लाल तो गुलाली लोयण क्यों
राज कियाजी करिया।
चलदल लोल किधों कसूंमल चोल
किधों दोय नैण मानूँ माणक धरिया॥

डाँक प्रीत निसरति दे कुंदन
प्रेम सुघर जड़िए जड़िया।
उणरी झलक अंग अंग पर लाली
व्रजनिधि भला जी थे भाव में भरिया ॥९५॥

लाड़ीजो री खिजण मे मुरड़ घणी हो रूड़ी।
ठाढ़ी डरड़ मौन में गाठी आड़ी छवि वाढ़ा राज नहीं कहुँ कूड़ी ॥
झीणा पटरा घूँघट माहीं कर चमके कंकण अर चूड़ो।
यह सोभा देखणरी व्रजनिधि बात बणावो काई अति अल भूड़ी ॥९६॥

होजी व्रजराज नवेला आज म्हारे आव्योजी म्हेलाँ।
छवि छाक्या नैणाँ मतवाला साँवरा बिहारी ने म्हे भुज भर झेलाँ ॥
मनरी उमँग थाँसूँ म्हारी लो मीरी गरसब बसारेलाँ।
कृपा करो व्रजनिधि अब म्हांपर कोक-कला कब पगसाँ पेलाँ ॥९७॥

राग सोरठ (तिताला)

होजी म्हे तो जाणीछै जी राज
काज आज किणीरे सिधारया।
उण बस कीया निस रसरँग पाग्या
नैंण उणींदा म्हे तबही निहारया ॥
छलियानूँ छललीधो छबीलो
मनरा मनोरथ सारया।
व्रजनिधि सुघर सलोणी प्यारी
अँग रँग सँग करि सबही सँवारया ॥ ९८ ॥

राग सोरठ ख्याल (जल्द तिताला)

मोहन नैननि वैठ्यो कीकी।
कहा कहौं ए री यह ही की मूरति चढ़ी चित्त में पी की ॥
चोप चौगुनी चाह चटक सों लगी रहे री जी की।
व्रजनिधि की अँखियाँ अति तीखी मारि जिवावत सीखी नीकी ॥९९॥

नैना सैन मैन सर मारे।
मैन उठावत अंग अंग मैं वैन कहे नहिं जात उचारे ॥
रूप-पनारे अदा-अगारे मोहन पर मन वारे।
अँखियन तारे सूरत लारे व्रजनिधि सों यह ही उरझारे ॥१००॥

राग सोरठ ख्याल (पस्तो)

मोहि रैन-दिना नहिं सोवन दे यह सुपने आय विगोवे री।
गोरो अँग लखि चोरे दौरे मोहि केसरि-रंग भिजोवे री ॥
मेरो रूप भयो मो बैरी मो सनमुख ही जोवे री।
नहिं निकसौं घर तें कहुँ बाहिर रोकि राह टकटोवे री ॥
जो जाऊँ जमुना-जल सजनी तो मेरे सँग होवे री।
चितवनि वंक निसंक डारिके मन-मानिक को पोवे री ॥
जो कोउ नारि निहारे वाको लोक-लाज सो खोवे री।
मदन-अगनि तें तनहि जरावे हिलि मिलि फेरि समोवे री ॥
कुल के करम धरम अरु धीरज सबर सरम को धोवे री।
अब तो प्रीति-रीति में रचिहौं व्रजनिधि प्रान विलोवे री ॥ १०१ ॥

राग सोरठ ख्याल (तिताला)

थाँरा थे रसराहो लोभी राज मोसूँ हो भली जी करी।
अंगहि रंग प्रगट सो मन में प्रीति-रीति राज यामें छरछरी ॥

कूड़ा कोल किया सबसोंही इण मुख कूड़ी बात भरी।
ब्रजनिधि अब म्हें थांहें जाण्यो विधि ठगबाजीरी बाँधि धरी ॥ १०२ ॥

राग सोरठ (जल्द तिताला)

होजी म्हाँसूँ बोलो क्योंने राज अणबोले नहीं बणसी।
चूक पड़ी काई सोही कहो जी साँच झूठ यों छणसी ॥
सो क्योंरा सिखलाया खिजोतो प्रीत-रीत कुण गणसी।
ब्रजनिधि कपट-लपटरी झपटों सीखणहारो थाँसों भणसी ॥ १०३ ॥

राग सोरठ ख्याल (जल्द तिताला)

झूठी ही खिजण क्यों ठाँणीं
जाँणीं ऊँ सजणसों मिलिया।
भों लजाँणीं नैणाँ प्रीति घुलाणीं
घूँघटड़ा बिचि अँग रस रलिया ॥
अनोखी उरड़ पर मारी मुरड़ वारों
दीखे राज नँदरा कुँवर मन भिलिया।
ब्रजनिधि ठग सिरताज अड़गऊँ
चटक मटक कर लटक सों छलिया ॥ १०४ ॥

राग सोरठ ख्याल (तिताला)

लोयण सलोणाँ हो थाँरा
अमल अछक छक छकिया।
साजनरा हित मदरी खुमारी
जियामें घुल घुल रुल रुल पकिया ॥
साँवलिया सैंणरा रसमें
थहर थहर जक थकिया।
हिय टकटकी ठग्या सा क्यों अब
निहचै ब्रजनिधि प्रीतमें ठकिया ॥ १०५ ॥

नैण तो लग्यारी हेली उण अलबेलिया लारें।
पकड़ि जकड़ि लोभीड़ा मन मे लैर लगाय लियो छै जी वाँरे ॥
अब तो कोंणि तोणि के निकली ओंण नहीं म्हे किणरे सारें।
बाँका बिहारी व्रजनिधि वालमसूँ मिलि रहस्याँ या मनमानी म्हारें १०६

नैणाँ माँहीं क्योंजी माँन मरोड़।
मरजीरो गरजी गिरधारी थे क्यों राख्या जी तोड़ ॥
पहली तो हित करि अपणाया चाहिजे अबें निभाणों ओड़।
बाँका बिहारी व्रजनिधि ने देखो उभा छे कर जोड ॥ १०७ ॥

राग सोरठ ख्याल (जल्द तिताला)

हे गाजें बाजें गहरे निसान घुरें।
आज दसरथ महाराजरे ऊपर जसरा चँवर ढुरे ॥
रामचंद्र को जनम हुवो सुनि इच्छ्या अमरापुरे।
बंदीजन हय-गज-धन पावत गहगट द्वार जुरें ॥
आनँद मोद उछाह हरष सों नचत नटिय झमकती सुरें।
कवि रसना कीरति सों बाढ़ी उक्ति अनूठी फिरें ॥
स्याम सुंदर सुभ निरखण आवत बहुवा दौरि दुरें।
व्रजनिधिदास कहे चिर जीवो खल जन सबहि डरें ॥ १०८ ॥

राग सोरठ रेखता (तिताला)

वह सब्ज सनम प्यारा इकदम न कीजे न्यारा।
रखिए समोय सारा चश्मों का करके तारा ॥
जब होय दिल गुजारा मतलब यही हमारा।
सब सब रहे पुकारा मेरा जनम विचारा ॥
खलकत की नींद खोई इकदम भी मैं न सोई।
व्रजनिधि को कहिए तुझ पै आहि लोक-लाज धोई ॥ १०९ ॥

राग सोरठ ख्याल (जल्द तिताला)

दोहा

छवा महल याते' कियो, सब समझो यह भाव ।
राधे कृष्न सिधारसी, दरस परस को हाव ॥

ख्याल

दसमीं दिहाड़े घर आवज्योजी
राज म्हारे श्रीराधे नें लेलारजी ।
सब थांरो थे देखि रीझिस्यो
करिस्यां जी म्हे मंगलचार जी ॥
दासी तो म्हे जनम जनम री
तीनलोकरा थें सिरदार जी ।
थारी तरफ गया थे ब्रजनिधि
मानूँ दियो दरस सुखसारजी ॥ ११० ॥

राग सोरठ ख्याल (इकताला)

निगोड़ा नैणां पकड़ी बुरी छै जो बाणि ।
जा लिपट्या कपटी मोहन सों नहीं मानीछैजी आणि॥
लाज सैातिरे म्हारे याते तोड़ोछै जो कुल-काणि ।
हूँ ब्रजनिधिरा सजन सनेही फेर हुवाछै जी अणजाणि ॥ १११ ॥

बधाई

राग सोरठ ख्याल (जल्द तिताला)

नंदजीरे आज अति हरष उछाह ।
त्रिभुवनपति जायो सुत जसुमति रूप मनोहर वाह ॥
आनँद पूरि रह्यो सबके उर में देव करत फूलन बरषाह ।
अठसिंधि नवनिधि ल्यायो ब्रजनिधि छायो ब्रज में चाह उमाह॥ ११२ ॥

श्रीव्रज पर जस-धुज आज चढ़ी री।
कान्ह कुँवर हूवो नँदजीरे आनँद उमँग बढ़ी री॥
नौबति बजे सजे अति सुंदर सब ग्वालनि सुनि हरषि कढ़ी री।
लखि व्रजनिधि तन-मन-धन वारत अद्भुत ओप मढ़ी री॥ ११३॥

राग सोरठ सारंग (जलद तिताला चाल लूहर)

देखी तेरी एड़ी अनोखी सी।
साँझ समै सूरज सम झलकत मर्कतमनि सों चोखी सी॥
पोहपोरी मंगल मनु झलकत लाल जवाहर जोखी सी।
व्रजनिधि की तन-मन-धन-धीरज-प्रान-प्रीति ले पोखी सी॥ ११४॥

राग सोरठ ख्याल (धीमा तिताला)

थाँकी फाँनी थे जावो जी ओगण म्हाँका मति देखो।
अधम-उधारन बिड़द कहे छै जोंनें जी में नीकाँ पेखो॥
अधर्मी छाँ म्हे नहीं जी ठिकाणूँ थाँ बिन कुणपर कराँ परेखो।
व्रजनिधि म्हाँने थाँजा कहें छै भीड़ करोनें या कुण लेखो॥ ११५॥

राग सोरठ ख्याल (तिताला)

म्हाँनें क्यों चितारो ने जी राज
क्यों जी हो विसासी अलविलिया।
कूड़ो दे बिसवास साँझरो
रैण सैंण क्रिणरे रसरलिया॥
कोड़ि बात अब हाथ न आवाँ
थेतो प्रीति रीति सों टलिया।
बचनाँ गलिया छो व्रजनिधि थे
सारों ने कलबल सों छलिया॥ ११६॥

राग सोरठ ख्याल (जल्द तिताला)

मो भागन नीकी तुम करियो ।
बत्सलता मो पर तुम ल्याके यह जिय मे दृढ़ धरियो ॥
कुटिली कलुष कलू को कपटी लंपटता मेरी जु बिसरियो ।
बाई गवरी बिनती ब्रजनिधि सों करिके मोहि उबरियो ॥ ११७ ॥

इति श्रीमन्महाराधिराज महाराज राजेंद्र श्री सवाई
प्रतापसिंहदेव-विरचितं श्रीब्रजनिधि-मुक्तावली
संपूर्णम् शुभम्

(१६) दुःखहरन-बेलि

रेखता

तू तीन लोक के नाथ सब हैं सिहारी साथ।
सबही है तेरे हाथ सब गावें तेरी गाथ॥ १॥
तूही है तात मात सब तेरी करी बात।
रहे विस्व तेरे गात तुम नाम अघ-निपात॥ २॥
ब्रज-नंद-घर मैं आय श्रीकृष्न तू कहाय।
जसुदा कौ ले दिखाय मुख माहिं विस्व माय॥ ३॥
आगै भए हो राम दसरथ नृपति कै धाम।
जस गावैं आठौ जाम पावैं हैं मुक्ति ठाम॥ ४॥
चौईस रूप धारिकै कीन्हे अनेक काज।
और क्या सिफत करौं कीए कोई समाज॥ ५॥
मेरीहि बेर भूल क्यों रहे हौ ब्रज के राज।
भूलै ना अब बनैगी अपने की है यह लाज॥ ६॥
बाने की लाज रखना अब तो यही सला[1] है।
इस नाव झोजरी का तूही भला मला[2] है॥ ७॥
कैयों गरीबों ऊपर तू रीझि कै ढला है।
मुझ पर मिहर जो कीजे आलम में रहकला है॥ ८॥
मेरो न कानि जाना नहिं गुन्हा दिल में लाना।
अपनी तरफ कौ आना फिदवी को ना चिराना॥ ९॥
मेरी ही बेर मोहन तुम भूलि क्यों रहे हो।
मेरे ही पाप मार्हो तुम जाते क्या बहे हो॥ १०॥

---

(१) सला=सलाह। (२) मला=मलाह।

मेरी तरफ़ से जग के अपवाद सब सहे हो।
कानों को मूँदि बैठे क्यों जी किधर रहे हो ॥ ११ ॥
आलम जो कहता हैगा तुमकौ गरीब-परवर।
यह भी सुखन सुना है तुमही हो देव-तरवर ॥ १२ ॥
तहकीक करि कहा है तुम हो दया के सरवर।
ऐसी करी है कर पर सत दोस धरा गिरवर ॥ १३ ॥
लाखों विरद तुम्हारे कैयों के काम सारे।
दिल के दरद विडारे ऐसे हो प्रान-प्यारे ॥ १४ ॥
मेरी जबून करनी जिसकै न दिल मैं धरनी।
तुझ नाम की सुमरनी रखता हूँ दुख की हरनी ॥ १५ ॥
तुमही ने पेस कीया चरनों लगाय लीया।
असबाब खूब दीया अब क्यों कठोर हीया ॥ १६ ॥
अरजी हमारी लीजे अफसोस दूरि कीजे।
मुझको दिलासा दीजे तबही तो दिल पतीजे ॥ १७ ॥
सब पर निगाह तेरी क्या साँझ क्या सबेरी।
सुनकर फरयाद मेरी अँखियाँ किधर कौ फेरी ॥ १८ ॥
मेरी निगाह सेती पाई है मौज येती।
फूली-फली है खेती करते हो क्यो पछेती ॥ १९ ॥
तैंही चमन लगाया तूही बहार लाया।
गुल फूलने पै आया अब क्यौं तैं दिल चुराया ॥ २० ॥
दिल क्यौं कठोर कीना पहले तो मन कौ लीना।
जिससे कठिन है जीना फटता रहै है सीना ॥ २१ ॥
अब दुख नहीं है डटता तुमही सै दीखै कटता।
सचमुच तुम्हीं सै हटता मेरी न देखो सठता ॥ २२ ॥
तुमकौ भी देखे हैंगे हम अजब डौल के।
सच झूठ करना उलट पलट किसी कौल के ॥ २३ ॥

कहलावे हो अमोल कहो कौन मोल के।
अब हम तुम्हैं पिछाने जु हो बड़ी तोल के ॥ २४ ॥
कछु भी मिहर न लाते हो दिल मैं जु क्या धरी।
दीदार करते हैं तो मूरत है रंग भरी ॥ २५ ॥
बाहिर भी श्रौर श्रंदर कछु यें सलह करी।
हो खूब छल को सीखे आदत ये क्या परी ॥ २६ ॥
तुम कौन तरह मानो हमकौ सुना दो कानों।
उस राह मैं हि जानो जब तो रहम को ल्यानो ॥ २७ ॥
इतनी जो बेवफाई तुमको नहीं है लाजम।
खलकत बुरै कहैगी कहु उठेगी तो जाजम ॥ २८ ॥
हमरेहि भाग तुमनै प्यारे खाई हैगी माजम।
दिल बीच लाज धरके सुख के सजा दो साजम ॥ २९ ॥
हम तो नहीं करी है कहने में कछु कमी।
इतना भी सुखन सुनतेहि तुमरे भी दिल जमी ॥ ३० ॥
हमरे भी दिल की श्राफत सबही गई गमी।
यह बात सुनके चरनों ब्रजबाल भी नमी ॥ ३१ ॥
हमरी जो क्या चली ई है दासी के गुलाम।
तुमने हि कृपा करके सिर पै बैठे सुबे स्याम ॥ ३२ ॥
तुम दुख हरन किया है सब सुख के किए काम।
मो से अधम को तारो ब्रजनिधि तिहारा नाम ॥ ३३ ॥

इति श्रीमन्महाराजाधिराज महाराज राजेंद्र श्री
सवाई प्रतापसिंहदेव-विरचितं दुःखहरन-
बेलि संपूर्णम् शुभम्

---

(२०) सोरठ ख्याल

राग सोरठ ख्याल (जल्द तिताला)

अरी यह लालन ललित त्रिभंगो ।
ब्रजराज कुँवर नवरंगो ॥ १ ॥
सिर धरे जराव कलंगी ।
पोसाक खुली है सुरंगी ॥ २ ॥
होरी खेलन माँझ उपंगी ।
बंसी को तान तरंगी ॥ ३ ॥
छंछाय छैल छेल उछंगी ।
भड़ायल अंग उमंगी ॥ ४ ॥
गावत है गारि अभंगी ।
सुनि जात दिलों की तंगी ॥ ५ ॥
वह कुंज विहार इकंगी ।
रँग रास रहसि को जंगी ॥ ६ ॥
देखे सैं चित रहे दंगी ।
समसेर कढ़ी ज्यौं नंगी ॥ ७ ॥
रँग भीनैं ग्वालनु - संगी ।
वै बड़े खेल के संगी ॥ ८ ॥
इत आई राधा चंगी ।
सँग सखी सबै इकरंगी ॥ ९ ॥
मनमोहन जीतन ढंगी ।
उमगी ज्यौं सावन गंगी ॥ १० ॥
हरि लिए घेरि अरधंगी ।
भइ ग्वालन की मति पंगी ॥ ११ ॥

यह मच्यो फाग अड़वंगी।
गुलचा हू देत कुढंगी॥ १२॥
गुल्लाल उड़त पचरंगी।
माँची है धूम अथंगी॥ १३॥
बाजे बहु बजैं सरंगी।
वीणा मृदंग सहचंगी॥ १४॥
डफ ढोलक ढोल उतंगी।
घुमड़े दुहुँ ओर पढंगी॥ १५॥
पिचकारी चलत सुधंगी।
हरि पकरि लिए कर फंगी॥ १६॥
"व्रजनिधि" धां फगुवा संगी।
वारौं मैं कोटि अनंगी॥ १७॥
यह लालन ललित त्रिभंगी।
व्रजराज कुँवर नवरंगी॥ १८॥

इति श्रीमन्महाराजाधिराज महाराज राजेंद्र श्री सवाई प्रतापसिंहदेव-विरचितं सोरठ-ख्याल संपूर्णम् शुभम्।

(२१) ब्रजनिधि-पद-संग्रह

पूर्वी

दइया हम नाहीं जानी यह गाथ ।
टौना सो पढ़ि डारयौ री मोपै बाँधि लियौ जिय साथ ॥
मैं कहा जानौं यह जिय कारौ प्रान गहि लिए हाथ ।
ब्रजनिधि स्याम सुजान सनेही ब्रज-जुवतिन कौ नाथ ॥ १ ॥

माई री मोहि सुहावै स्याम सुजान कुँवार ।
कटि पट पीत पिछौरी बाँधे अनूप रूप सुकुवार ॥
देखत कोटिक मनमथ लाजैं होत हिये कौ हार ।
ब्रजनिधि परम छबीलौ मोहन सोभा सरस अपार ॥ २ ॥

काफी

अब मैं इस्क-पियाला पीया ।
चढ़ि गई रूप-खुमारी प्यारी मग जग जक सैं जीया ॥
हुस्न दिखाइ साँवले प्यारे मन जबरी सैं लीया ।
अब तो निधड़क हुवा खलक मैं सच्चा ब्रजनिधि कीया ॥ ३ ॥

सोरठ

गोविंददेव सरन हौं आयौ ।
जब तुम कृपा करी यह मोपै तब तें मैं सुख पायौ ॥
दीन हीन मलीन छीन मैं जाको तुम अपनायौ ।
मैं नहिं लायक कछू पावकी ब्रजनिधि बहुत जनायौ ॥ ४ ॥

पूर्वी

खूब यार मासूक मिलाया वे।
सुंदर स्याम नंद कौ छौना हँसि बतरान सुहाया वे॥
अति चंचल अनियारे नैना मेरा चित्त चुराया वे।
ब्रजनिधि रूप-उजागर मोहन सोहन स्वामी पाया वे॥ ५॥

पूर्वी (पंजाबी भाषा)

इस्क दीदवा बतलावाँ वे माशूकाँ मैंडे।
क्यों नहिं बुझदा हाल असाडा दरस दिवाँणी तैंडे॥
मोर मुकुट पीतांबर धारें छवि आँवाँ इस पैंडे।
"ब्रजनिधि" गोकलचंद विहारी मैथों क्यों अब ऐंडे॥ ६॥

सारंग

ऊधो अपने सब स्वारथ के लोग।
आप जाइ कुबजा-सँग कीनों हमैं सिखावत जोग॥
हम तौ दुखिया भईं सबै अब विरह लगायो रोग।
"ब्रजनिधि" अधर-अमृत-रस पायो कैसे सहैं वियोग॥ ७॥

बिलावल

कृपा करो वृंदावन-रानी।
महिमा अमित अगाध न जानौं नेति नेति कहि वेद बखानी॥
तुम हौ परम उदार स्वामिनी मनमोहन के प्रान समानी।
"ब्रजनिधि" कौ अपनौ करि लीजै दीजै वृंदावन रजधानी॥ ८॥

हमीर

साँवरे सुंदर वदन दिखाई।
देखे विन छिन जुग सम बीतत नैन चकोर सिराई॥
मो तन तनक चितै रस-सागर रूप-सुधा बरसाई।
"ब्रजनिधि" हौं बलिहारी तो पर मुरली टेर सुनाई॥ ९॥

तेरी चितवनि मोल लई।
जब तें छवि देखी इन नैननि सुधि-बुधि सबै गई॥
मो तन चितै मंद मुसकनि सों हिय हित[1]-बेलि वई[2]।
परम सुजान चतुर "ब्रजनिधि" तुम अद्भुत पीर दई॥१०॥

खंमाच

हम तौ राधाकृष्न-उपासी।
गौर-स्याम अभिराम मनोहर सुंदर छवि सुख-रासी॥
एक प्रान तन मन दोऊ नित बृंदा-बिपिन-बिलासी।
कृपा-दृष्टि तें पाई "ब्रजनिधि" दंपति खास खवासी[3]॥११॥

सोरठ

लागी दरसन की तलवेली[4]।
कब देखौं वह मोहन मूरति सूरति अति अलबेली॥
वामभाग वृषभान-नंदिनी सँग ललितादि सहेली।
"ब्रजनिधि" दंपति संपति काजैं मेंड़[5] नेम की पेली॥१२॥

बिहाग

करौं किनि कैसेहुँ कोऊ उपाई।
ब्रजमोहन के रंग रँगी री और न कछू सुहाई॥
कह्यो न मानति अँखियाँ मेरी लागी बिरह-बलाई।
अरबरात[6] ये प्रान सखी री "ब्रजनिधि" मोहि दिखाई॥१३॥

---

(१) हित=प्रेम। (२) वई=बोई। (३) यह ११ वाँ पद बहुत प्रसिद्ध है। (४) तलवेली=तालाबेली, छटपटी। (५) मेंड़=मेंड़, पाल। (६) अरबरात=(निकलकर पास जाने को) छटपटाते, फड़फड़ाते।

नैना अंचल-पट न समाई ।
कजरा-साँकर से बाँधे तउ अति चचल भजि जाई ॥
वारौं मृगज मीन खंजन अलि सरसिज तें अधिकाई ।
सैननि मोहि लियो "व्रजनिधि" मन निरखि हरखि बलि जाई[1] ॥१४॥

नाइकी (कान्हरा)

साँवरे सलोने सों ये अँखियाँ मेरी लगीं री ।
कल न परत देखे बिन सजनी सबही रैनि जगीं री ॥
अंग अंग उरझीं सुरझत नहिं प्रीतम-प्रेम पगीं री ।
समझाई कैसै कै समझैं "व्रजनिधि" ठगिया-रूप ठगीं री ॥१५॥

काफी

दिल पीया पियाला महरदा ।
लाली शब रोज चस्मों विच सेरी मस्त सहरदा ॥
खूब यार सुंदर मनमोहन चीराफ बाल हरदा ।
कुरबानी व्रजनिधिदे ऊपर सुमरण अठ पहरदा ॥१६॥

तुझ वेखणनूं दिल चाहै मैंडा जानी स्याम पियारे ।
महर करौ टुक दरदवंद पर बंसी-तान सुना रे ॥
पड़े तड़फते आसिक घायल ये चस्मोदे मारे ।
है महबूब खूब अति सुंदर "व्रजनिधि" ओर निभा रे ॥१७॥

प्यारा छैल छबीला मोहन ।
निस-दिन रहत पियासी आँखें टुक मैंडी वल जोहन ॥
ले अब खबर महर[2] कर मुझ पर लगन लगो है गोहन ।
मुटमरदी नाहक क्यों करदा जानी "व्रजनिधि" सोहन ॥१८॥

---

(१) यह १४वाँ पद बहुत प्रसिद्ध और मर्म स्पर्श है। ऐसा ही १५वाँ भी है। (२) महर = मिहर, दया ।

मालकोस

तरनि-तनया-तीर हीर-मंडल रच्यौ
रच्यौ तहाँ रास राधा छबीले रवन ।
तत्त थेई कहैं गान करि मन गहैं
बजत बीना पणव मुरज द्रुम द्रुम परन ॥
करत अभिनय निपुन रसिक रस मैं मगन
लेत गति सुलफ दोऊ गौर-साँवल बरन ।
सखी ललितादि उघटत तहाँ ताल दे
निरखि "ब्रजनिधि"-रुचिर-रूप दृगमन-हरन ॥१९॥

बिहाग

सखी री बिरहा बिबस करै ।
नव-घनस्याम कमल-दल-लोचन बिन छिन कल न परै ॥
चातक लौं पिय पीय रटै जिय क्योंहु न धीर धरै ।
"ब्रजनिधि" नंदकिसोर छबीलो नैननि तें न टरै ॥२०॥

भैरव

लगैं मोहिं स्वामिनी नीकी ।
मृगनैनी पिकबैनी प्यारी सुखदायिनि पिय-ही की ॥
बृंदाबन-रानी मनमानी चूड़ामनि सब ती की ।
कृपा करौ वृषभान-नंदिनी "ब्रजनिधि" जीवन जी की ॥२१॥

बिलावल

ललित पुलिन चिंतामनि चूरन और सरितबर पास मना ।
दिव्य भूमि दरसे जल परसे तनक रहत तन मे तम ना ॥
दुतिय कौन कवि बरन सकै छवि-महिमा निगमहु की गम ना ।
भजन करौ निसि-बासर "ब्रजनिधि" श्रीबृंदाबन जै जमुना ॥२२॥

सुरति लगी रहै नित मेरी श्री जमुना वृंदावन सों।
निस-दिन जाइ रहौं उतही हौं सोवत सपने मन सों॥
बिना कृपा वृषभान-नंदिनी बनत न बास कोटिहू धन सों।
"ब्रजनिधि" कब ह्वैहै वह औसर ब्रज-रज लोटौं या तन सों॥२३॥

देवगंधार

मेरी स्वामिनी सुख-कारिनि।
राजति नवल-निकुंज-भवन मैं प्रीतम-संग-विहारिनि॥
उठीं उनींदी सुभग सेज पर स्याम-भुजा-उर-धारिनि।
सो छबि सरस बसी "ब्रजनिधि" उर कृपा-कटाछ-निहारिनि॥२४॥

धनाश्री

छबीली राधे कब दरसन दैहौ।
तुव-मुख-चंद-चकोरी अँखियनि रूप-सुधा अचवैहौ॥
यह आसा लागी रहै निस-दिन कब मन तपत बुझैहौ।
करिकै कृपा कहौ "ब्रजनिधि" कौ कब अपनौ करि लैहौ॥२५॥

मलार

करत दोऊ कुंज मैं रस-केलि।
डोलत रतन-जटित आँगन मैं अंसन पर[1] भुज मेलि॥
बोलत मोर घटा जल बरखत हरित भई बन-बेलि।
गावत राग मलार सरस सुर "ब्रजनिधि" संग सहेलि॥२६॥

प्रिया-पिय पावस-सुख निरखैं।
चपला चमक गगन घन-मंडित नव जलधर बरखैं॥
बोलत चातक मोर पपीहा परम प्रेम परखैं।
ललितादिक गावतिं मनभावतिं ब्रजनिधि मन हरखैं॥२७॥

(१) अंसन पर = कंधों पर।

गौरी

जय जय राधा-मोहन-जोरी ।

नवनीरद-घनस्याम-बरन पिय दामिनि सी तन दीपति गोरी[1] ॥

विहरत ललित निकुंज-सदन मैं गावति गुन सहचरि चहुँ ओरी।

निरखत प्यारी की छवि व्रजनिधि अँखियाँ भई' चकोरी ॥२८॥

सारंग

जै जै व्रजराज-कुमार की।

अंग अंग के ऊपर वारौं कोटि कोटि छवि मार की ॥

जाकी गति कोऊ नहिं पावै लीला ललित अपार की।

नेति नेति करि निगमहु हारे कहि न सकैं निरधार की ॥

कापै बरनी जाति ललित अति ईसुरता औदार[2] की।

अकरन-करन समर्थ साँवरो सोई भीखम उचार की ॥

तृन तैं बज्र करै छिन ही मैं करत बज्रगति छार की।

होत रंक तैं राव तनक मैं जापै दृष्टि सुढार की ॥

भक्त-गिरा साँची करिबे को दारुमई करी सारकी।

अजामेल से पतित अनेकन तारत नाहिं अवार की ॥

अद्भुत रीति कही न परति कछु व्रज-जुवतिन के जार की।

"व्रजनिधि" करिकै कृपा दीजिए सेवा नित्य विहार की ॥२९॥

पूर्वी

रसिक-सिरोमनि स्याम, कहौ क्यौं ऐसे निठुर भए।

पहले तौ मन बाँधि लियौ हँसि अब छिटकाय दए ॥

नेह लगाइ हाइ मो हिय मैं दुख के बीज बए।

"व्रजनिधि" कोउ भलो निधि पाई वाही ओर छए ॥३०॥

---

(१) गोरी = गौर वर्ण की सुंदरी। यहाँ 'गोरी' से श्रीराधिका का अर्थ अभिप्रेत है। (२) औदार = औदार्य, उदारता।

रामकली

ऐसै ही तुमकौ बनि आई, भले भले जू कुँवर कन्हाई।
मोहन ह्वै मोहे नहिं कितहू कहा जानो कछु पीर पराई ॥
हम भोरी तुम चतुर साँवरे यह रचना बिधि कौन रचाई।
"ब्रजनिधि" औरन के सुखदानी हम तुमसौं बेदनि-निधि पाई ॥३१॥

रामकली (ताल रूपक)

हम ब्रजबासी कबै कहाइहैं।
प्रेम-मगन ह्वै फिरैं निरंतर राधा-मोहन गाइहैं ॥
मुद्रा तिलक माल तुलसी की तन सिंगार कराइहैं।
श्रीजमुना-जल रुचि सों अचवैं महाप्रसादहि पाइहैं ॥
कुंज कुंज सुख-पुंज निरखि कै फूले अँग न समाइहैं।
कृपा पाइ प्यारे "ब्रजनिधि" की बिमुखन भले हँसाइहैं ॥३२॥

बिहाग (ताल जत)

प्रान पपीहन कौ मति सोखौ।
रूप-माधुरी बरसि पियारे वेगि आइकै हमकौ पोखौ ॥
रटत निरंतर नाम तिहारौ कंठ सूखि भयो जीवन धोखौ।
कहिए कहा कहौं अब "ब्रजनिधि" जो तुम चाहो सो सब चोखौ ॥३३॥

ईमन

प्यारीजू की चितवनि मैं कछु टोना।
मोहि लियो मिठबोलन ढोलन सुंदर स्याम सलोना ॥
चंचल चख माते राते मृग-खंजन-मीन-लजोना।
"ब्रजनिधि" लाल बिहारी हित सों भुज भरि कंठ लगौना ॥३४॥

केदारा

चलौंगी री लाल गिरधर पास।
रह्यौ अब नहिं जात मोपै करौ जग उपहास॥
रितु सबै सोचत गई सुभ भयो सरद उजास।
सह्यौ कैसे जाइ सजनी बिरह कौ अति त्रास॥
वेन-धुनि[1] बजि रही बन मैं रच्यो पिय नै रास।
तहाँ ले चलि ब्रजनिधिहि मिलि सफल करिहौं आस॥३५॥

ईमन

नचत मनिमंडल पर स्याम प्रिया सुकुवारी।
उदित सरद चंद बहत पवन मंद पुलिन
पवित्र जहाँ फूली है विचित्र फुलवारी॥
बाजत मृदंग गति लेत हैं सुगंध दोऊ
तान की तरंग रंग बाढ़्यो है भारी।
निरखि छबीली की छवि "ब्रजनिधि"
प्यारे प्रेम-विवस उर धारी॥ ३६॥

भैरव

आओ जू आओ प्रानपियारे, रूप छके रस वस मतवारे।
जामिनि जगे पगे भामिनि सँग नैन रसमसे अरुन विहारे॥
पीक-लीक सोहत कपोल पर कजल अधर-छाप छवि भारे।
"ब्रजनिधि" मदनदेव पूजन करि लैं प्रसाद इव भले पधारे॥३७॥

---

(१) बेन-धुनि = वेणु (बंशी) की ध्वनि।

विलावल अल्हैया

को जानै मेरे या मन की ।
रटना लगी रहै चातक लौं सुंदर छैल साँवरे घन की ॥
जब तें स्रवन परी बंसी-धुनि दसा भई औरै कछु तन की ।
लै चलि मोहि सखी "ब्रजनिधि" जहाँ वहै गैल श्रावृंदावन की॥३८॥

विहाग (ताल जत)

कर पर धरे चरन प्यारी के छवि अवलोकत लाल बिहारी ।
नख-मनि मैं प्रतिबिंब देखि कै दृगन लगाइ करत मनुहारी ॥
कबहुँक चूमि लगाइ हिये सों प्रेम-विवस सुधि देह बिसारी ।
"ब्रजनिधि" मनो रंक निधि पाई प्रान होत बलिहारी ॥३९॥

विलावल (धीमा तिताला)

बंक विलोकनि हिये अरी री ।
जब तें दृष्टि परे मनमोहन लोक-लाज कुल-कानि टरी री ॥
दिन नहिं चैन रैन नहिं निद्रा ना जानौं विधि कहा करी री ।
ह्वै निसंक "ब्रजनिधि" सो मिलिहौं सो वह ह्वैहै कौन घरी री॥४०॥

विहाग (जलद तिताला)

प्रानपिया की बेनी गूँथन बैठे मोहन केस सँवारैं ।
सरस सुगंध फुलेल मेलिकै कर ककही लै पाटी पारैं ॥
ललित सखी सनमुख तहाँ ठाढ़ी मनिमय दर्पन हित सों धारैं ।
निरखि छबीली की छवि "ब्रजनिधि" प्रेम-बिवस सुधि-बुधिहि बिसारैं ४१

परज वा सोरठ

अब तौ भूले नाहि बनै ।
बिपति-बिदारन गिरधर तुमहीं सुख मैं मिलत घनै ॥
मैं अति दीन कछू नहिं लायक तुम बिन कौन गनै ।
कैसे हूँ करि पार करोगे "ब्रजनिधि" सरम तनै ॥४२॥

सोरठ

सैयो म्हारी रसियो छैल मिलाय।
गुण गंभीर उजागर म्हारौ मनडो लियो लुभाय॥
सुखदायी उर अंतर बसियो नैणाँ छबि रही छाय।
"ब्रजनिधि" रसिक मनोहर मूरति देख्या हियो सिराय॥४३॥

बिहाग (ताल जत)

प्रीतम दोऊ हँसि हँसि कै बतरावैं।
बत-रस-मगन भए नहिं जानैं योंही रैनि बिहावैं॥
निरखि रहे छबि रूप-माधुरी मुहाचुही जिय ज्यावैं।
"ब्रजनिधि" रसिक सनेही हित सो प्रान प्रियाहि लड़ावैं॥४४॥

बिहाग

अहो हरि बिलंब नहि करिए।
दीनबंधु दयाल करुना करि बिपति हरिए॥
कहैा तुम बिन कहैा कासौं बृथा दुख भरिए।
लाज मेरी तोहि ब्रजनिधि बेगि इत ढरिए॥ ४५॥

सोरठ

हरि बिन को सनेह पहचानै।
सब अपने स्वारथ के साथी पीर न कोऊ जानै॥
यह जिय जानि स्याम-स्यामा के चरन-कमल चित ठानै।
"ब्रजनिधि" कहत पुरान सकल हरि हित के हाथ बिकानै॥४६॥

कन्हड़ी (जल्द तिताला)

है को री मोहन अति नागर।
चंचल नैन 'बिसाल रसीले सुंदर रूप मनोहर सागर॥
बिन देखे छिन कल न परति है देखे सो अति होत उजागर।
अब तो कैसे मिलै सखी री "ब्रजनिधि" है सब गुन कैा आगर॥४७॥

कन्हड़ो

दोऊ लगै है मनही न्यारे ।
भाजे रहत नेह मैं निस-दिन मीन-चकोरन हू तैं भारे ॥
सुंदर स्याम सलोने लोने करि राखे नैनन के तारे ।
छके रहैं "ब्रजनिधि" की छवि मैं तिन्हैं और नहिं लागत प्यारे ॥४८॥

हमीर

पिय प्यारी राधे मन मान्यौ ।
रसिक-सिरोमनि नंद महर कौ छैला सब रस-गाहक जान्यौ ॥
मनमोहन रस-सागर नागर ऐंड़ भरयौ डोलत अभिमान्यौ ।
"ब्रजनिधि" स्याम सुजान सनेही देखत जिय ललचान्यौ ॥४९॥

केदारा

स्याम गोरी की माल फिरावै ।
कबहुँक अधरनि धारि मुरलिका अद्भुत गुन-गन गावै ॥
अंग अंग की परम माधुरी सुमिरि सुमिरि सचु पावै ।
"ब्रजनिधि" प्रानपिया राधे की छिन छिन कृपा मनावै ॥५०॥

राधे रूप-सिंधु-तरंग ।
कहो बरनी जात का पै माधुरी अँग अंग ॥ १ ॥
जुग कमल-दल पर जुगल अहि फल अरुन मनिन समेत ।
उभय करभक-सुंड तापर परम छवि कौ देत ॥ २ ॥
कनक-रंभा-खंभ तिहि पर काम-रथ तिहि सीस ।
केहरी तापर लसत जो सकल बन कौ ईस ॥ ३ ॥
सुधा-सरवरि तास ऊपर ललित चल-दल-पात ।
कनक-कुंभ सुठोन तिहि पर नाल-जुत जलजात ॥ ४ ॥
तास ऊपर कनक अवनी कंबु लसत सुदेस ।
निहकलंक सु लसत तापर सरद-रैनि-द्विजेस ॥ ५ ॥

कुसुम सरस बँधूक जुग तिहि मध्य दाड़िम-बीज ।
लोभ करि तहाँ कीर बैठ्यौ मान मन मैं धीज ॥ ६ ॥
मीन खंजन चपल तापर काम-धनुष सुबंक ।
वैर पूरब सुमिरि तातैं ग्रस्यौ राहु मयंक ॥ ७ ॥
लाल "ब्रजनिधि" निरखि छबि को छकि रहे हैं नैन ।
चकित जकि थकि ह्वै रहे मुख कढ़त नाहिन बैन ॥८॥५१॥

कन्हड़ो

मोहन मेरो मन मोहि लियो री ।
सुंदर स्याम कमलदल-लोचन बिन देखे नहिं जात जियो री ॥
अंग अंग छबि को कवि बरनै उपमा को कोउ नाहिं बियो री ।
"ब्रजनिधि" रूप दिखाइ मनोहर इनि नैननि नयो रोग दियो री ॥५२॥

सारंग (ताल चरचरी, मूल फाखता)

लखि कै दोऊ धाम संपति कौ जकि थकि रहे ।
सरस-भा सर-सरित निस-कमल दिन-कमल
अलि-अवलि-गान-धुनि सुनत छकि छकि रहे ॥
नाना-खग-बृंद-कुल करै चह चरचहुँ
लठौं फल-कुंज कउतुकनि तकि तकि रहे ।
कौन "ब्रजनिधि" लहै पार निज धाम जहाँ
धीमी हूँ धाम अवरेखि अकबक रहे ॥५३॥

सारंग (इकताल)

जो जन दंपति रस कौ चाखै ।
सो जन विधि-निषेध रस कौ पहिलै चित तैं नाखै ॥
वेद वदत जो फूली बानी सो कर्न नहीं धारै ।
अरु लोकन की चाल भेड़िया छोई करिकै डारै ॥

हिये-भवन मैं इतनौ कचरा वाकौ झारि बुहारै।
भक्ति महारानी रस-रूपा तब तिहिं भवन पधारै ॥
सिद्धि होइ यह साधन तौ पै रहै सदा भय मान।
मति कान्ह कुसंग बस मेरै होय न गज कौ न्हान ॥
करै मित्रता रसिक वृंद सौं तवै रसिक अपनावै।
"ब्रजनिधि" जब ह्वै सिद्धि भावना रस बानैत कहावै ॥५४॥

बिहाग

भोर ही आज भले बनि आए देखत मेरे नैन सिराए।
चटकीलौ पट पीत बदलि कै सुंदर सुरँग चूनरी लाए ॥
फब्यो भाल बेंदा जावक कौ अलकनि पद-भूषन उरझाए।
बलि बलि जाउँ भावती छबि पर ब्रजनिधि सोए भाग जगाए ॥५५॥

राग ईमन

प्यारी जू की छबि पर हौं बलिहारी।
भौंहैं कसनि लसनि बेसरि की चितवनि अति अनियारी[1] ॥
सुंदर बदन सदन सुखमा कौ बरसत रूप-सुधा री।
प्रिय "ब्रजनिधि" रसबस करि लीनौ मदन-मंत्र की भुरकी डारी॥५६॥

सोरठ

प्यारीजी नै प्रीतम लाड़ लड़ावै छै।
परम सनेही बंसी माहैं राधेजीरा गुण गावै छै ॥
अंगसंगरी सेवा करबा मनडानै ललचावै छै।
"ब्रजनिधि" रसिक सुजान रँगीलो दिनरा देव मनावै छै॥५७॥

---

(१) अनियारी=नुकीली।

विहाग

हे नँदलाल सहाय करौ जू।
आरत ह्वै टेरत हौं तुमकौं मेरे हिय की पीर हरौ जू॥
कृपा तिहारी तैं सुनियत यह खोटो हू जन होय खरो जू।
एहो "ब्रजनिधि" भक्तन-धारन बिरद रावरौ जिन बिसरो जू॥५८॥

हमीर

हौं हारी इन अँखियनि आगैं।
जाय लगीं ब्रजमोहन-छवि सों कल नहिं परत पलक नहिं लागैं॥
मेरी ह्वै ह्वै गईं पराई अचिरज लगत रैनि सब जागैं।
"ब्रजनिधि" कैसे कै सुख पावैं जिनके हिए रूप अनुरागैं॥५९॥

केदारा

सरद की निर्मल खिली जुन्हाई।
बृंदारण्य तीर जमुना के राका की छवि छाई॥
प्रफुलित तरु-बल्ली-सोभा लखि रास करन सुधि आई।
"ब्रजनिधि" ब्रज-जुवतिन-मन-मोहन मोहन बेन बजाई॥६०॥

सोरठ

मेरो मन बाँधि लियो मुसक्याइ बंसी मैं कछु गाइ।
नवल-किसोर चित-चोर साँवरौ इत ह्वै निकस्यौ आइ॥
बार बार मो तन चितयो करि सैनन नैन नचाइ।
तब तें कछु न सुहाइ रही हौं "ब्रजनिधि" हाथ बिकाइ॥६१॥

ईमन

छवीलो विहारिनि की छवि पर बलिहारी।
ब्रज-नव-तरुनि-सिरोमनि स्यामा बस किए कुंज-बिहारी॥
सीस चंद्रिका सोहत मोहत नीलबरन तन सारी।
"ब्रजनिधि" की स्वामिनि अभिरामिनि होत न हिय तें न्यारी॥६२॥

सोरठ

झमकि पग धरत जत्रै लड़क्याई।
राग-रागिनी निकसत सब ही नूपुर सुर सरसाई॥
ब्रज-मोहन मोहे धुनि सुनि कै जकि थकि रहे लुभाई।
रीझि रहे "ब्रजनिधि" छबि लखि कै सुघर सिरोमनि राई॥६३॥

मलार

बनिता पावस रितु बनि आई।
नीलंबर घन दामिनि अंगदुति चमकनि सरस सुहाई॥
मुक्त-माँग बग-पाँति मनोहर अलकावलि धुरवाई।
नखमनि महदी इंद्रबधू मनो सोहत अति छबि पाई॥
नूपुर दादुर बोलनि सोहै चितवनि झर बरसाई।
मेटी बिरह ताप "ब्रजनिधि" सब मिलि कीनी सियराई॥६४॥

सोरठ (बंगाल)

सखी री मोहन मन कौ लै गयो चितवनि सों बरजोरि।
हौं तब तैं भई बावरी सरबस लीनो चोरि॥
हौं निकसी ही सहज ही दृष्टि परि गए स्याम।
उठत हिये मैं कलमली बिसरि गए सब काम॥
लोक-लाज अब ना रही री घर-बाहिर न सुहाइ।
बिथा बटि परी हीय मैं वह छबि रही नैन समाइ॥
को समुझै कासौं कहौं मोहिं लोग सिखावैं नीति।
"ब्रजनिधि" रसिक सुजान सों लगि गई अचानक प्रीति॥६५॥

भैरव

रावरौ कहाइ अब कौन कौ कहाइए।
गोविंद-पद-पल्लव मैं सीस नित नवाइए॥

सुंदर छबि कौ निहारि नैन हिय सिराइए।
रसिक संग करिकै सदा दंपति दुलराइए॥
"ब्रजनिधि" की कृपा-दृष्टि प्रेम-भक्ति पाइए॥ ६६॥

ईमन

हरि केसो कान्हर राधा बर सुंदर स्याम घन बन माली।
मुरलीधर गोकुलचंद गोपाल गोबिंद नाथन नाग काली॥
रास-बिहारी कुंज-रमन नवकिसोर छबीलौ कृष्न रसाली।
बृंदावन-चंद आनंदकंद ब्रजजीवन "ब्रजनिधि" भक्तन प्रतिपाली॥६७॥

विभास

कुंजमहल की ओर सुनियत मधुर मुरलिका घोर।
रस बरसत घनस्याम मनोहर कुहकि उठे री मोर॥
चपला सी सोहत सँग प्यारी मुकुट-इंद्रधनु-छबि नहिं थोर।
बसौ निरंतर "ब्रजनिधि" हिय मैं सुंदर जुगल-किसोर॥६८॥

कन्हड़ी

प्यारो नागर नंद-किसोर।
नवनागरि गुन-आगरि राधा बनी छबीली जोर॥
प्रेम-रंग रँगि रहे रँगीले दोऊ परस्पर मन के चोर।
मुहाँचुही जिय ज्यावत "ब्रजनिधि" बँधे दृगन की ओर॥६९॥

सोरठ

बरसत रंग-महल मैं रंग।
चौपन चढ़ि बढ़ि लेत तान दोऊ नाचत सरस सुगंध॥
ललिता ललित मृदंग बजावति अलि बिसाखा मुहचंग।
"ब्रजनिधि" रसिक मनोहर जोरी बिलसत केलि अभंग॥७०॥

कन्हड़ी ख्याल (इकताला)

मिट्ठे मोहन वेंण बजापानी।
तिसदे विचु तानींदे भेदहिं गाय गाय झरलापानी॥
मैं सिर धुणि कुल-संकुल तोडी एहाँ प्रान रिझापानी।
"ब्रजनिधि" होर न भौंवदा मुझ दिल दिलवर हत्थ विकापानी॥७१॥

विभास

देखत मुख सुख होत अधिक मन
सुख की॰ मूरति भान-दुलारी।
दुख-मोचन लोचन लखि छिन छिन
रुख लिए सेवत कुंज-बिहारी॥
परम दयाल कृपाल मृदुल मन
सरनागत-पालक पनवारी।
"ब्रजनिधि" की स्वामिनि अभिरामिनि
श्री बनधामिनि राधा प्यारी॥ ७२॥

कन्हड़ी

लगनि लगी तब लाज कहा री।
गौर-स्याम सौं जब दृग अटके तब औरन सौं काज कहा री॥
पीयो प्रेम-पियालो तिनकौ तुच्छ अमल को साज कहा री।
"ब्रजनिधि" ब्रज-रस चाख्यो जानैं ता सुख आगे राज कहा री॥७३॥

ओर निबाहू नातौ कीजै।
जग के नाते सब करि हाते गौर-स्याम ही मैं मन दीजै॥
रसिक जनन की संगति करिकै श्रीवृंदावन कौ रस पीजै।
"ब्रजनिधि" सब तजि भजि दंपति कौ नर-देही कौ लाहौ लीजै॥७४॥

सोरठ

पिय तन चितई सहज सुभाई।
ललित त्रिभंगी सूधे कीए भृकुटी नेक चढ़ाई॥
अति चंचल अंचल की फेरनि छवि लखि रहे बिकाई।
गुन निराइ "ब्रजनिधि" राधे-गुन गावत बेनु बजाई॥७५॥

हमीर

माई मेरी अँखियनि वैर कियो।
ब्रजमोहन के रूप लुभानीं मन लै संग दियो॥
कछु न सुहाइ हाइ बिन देखे क्योंहु न जाइ जियो।
कैसे रह्यौ जाइ तिनसों जिनि "ब्रजनिधि" दरस लियो॥७६॥

सोरठ

देखो रंग हिंडोरै झूलनि।
झूमि झूमि झुकि रहे लता तरु श्रीजमुना के कूलनि॥
झोटा देत गान करि सहचरि सुनि दंपति हिय फूलनि।
"ब्रजनिधि" नाना भाव लड़ावत करि सेवा अनुकूलनि॥७७॥

मलार (सूर का)

झोटा तरल करौ मति प्यारे।
प्यारी सुकुमारी हिय डरपति सुनौ रूप-उजियारे॥
बेनी तें खिसि फूल गिरत हैं जात न बसन सँभारे।
बचन सखी के सुनि "ब्रजनिधि" छबि लखि दृग ढरत न ढारे॥७८॥

आज की झूलनि ही कछु और।
झूलत रग हिंडोरे प्यारी झुलवत नवलकिसोर॥
झुकी झूमिकै घटा जमुन-तट सोभा नाहिन थोर।
"ब्रजनिधि" गाइ रहीं सहचरि सब सुर-मंदिर कल घोर॥७९॥

रामकली

छबीली मूरति नैन अरी ।
नींद कहाँ अब कैसे आवै औरहि दसा करी ॥
जागत हू सुधि लगी रहति है छिन पल घरी घरी ।
कहा करौं सजनी "व्रजनिधि" की देखन बान परी ॥८०॥

विभास चर्चरी (इकताला)

रूपोत्सव चहचरि भई सहचरीन वृंद आजु
नूपुरन सुनाद पूरि रही कुंज भूमि भूमि ।
जगिकै लगि बैठे दोऊ कंज तल पट स्यामा स्याम
रूप रुचिर कौतुक की मचल परी घूमि घूमि ॥
अंग अंग वृष्टि होत मंजु-रूप-माधुरी की
लखि कै रति-अनंग ह्वै कै पंग रहे घूमि घूमि ।
"व्रजनिधि" गरबहियाँ दोऊ आए कुंज-मंजन जन
सहचरि तृन तोरत झूमि झूमि ॥ ८१ ॥

अड़ाना (चौताल)

हीरन खचित रास-मंडल नचत दोऊ
सचैं संगीत सोऽब सोभा सरसत है ।
लेत गति तातन की लागन चमचमात
रूप माधुरी सु अंग अंग दरसत है ॥
नृत्य गान मान तान भेदन वचत कोऊ
जोरी रंग बोरी ऐसो रंग बरसत है ।
"व्रजनिधि" कल-कौतिक-निकाई कहि सकै कौन
जाके देखिबे कौ कोटि काम तरसत है ॥८२॥

परज (तिताला)

मनमोहन सोहन स्याम म्हारै घर आयाछौ।
जाण्याँ जी जाण्याँ नवरंगी थे अपगरज लुभायाछौ॥
म्हारै बिसवास नहीं छै थाँरौ थे काँई जाँणि उम्हायाछौ।
"ब्रजनिधि" बाडीरा भँवरा ज्यौं गंध लेणनैं धायाछौ॥८३॥

षट्

मेटौ गोबिंद सब दुख मेरे।
हौं अति हीन मलीन दुखारी तदपि सरन हौं तेरे॥
जोग-जग्य-जप-तप नहिं जानौं प्रभु बिनती सुनि लीजे।
बनिहै तारे ही अब "ब्रजनिधि" बिरद घटै सु न कीजे॥८४॥

जौ हौं पतित होतो नाहिं।
पतित-पावन नाम प्रभु कब पावते जग माहिं॥
यह नाम साँचो कियो अब हम चरन तजि कित जाहिं।
कृपा "ब्रजनिधि" कीजिए नहिं भजन तें अलसाहिं॥८५॥

ईमन

राधे तुम अति चतुर सुजान।
परम छबीली रूप रसीली मंद मधुर मुसकान॥
मोहि लियो नँदनंदन प्रीतम गाइ रँगीली तान।
"ब्रजनिधि" कौ निहचै करि प्यारी तुम बिन गति नहिं आन॥८६॥

सोरठ

पिय बिन सीतल होय न छाती।
सुघर-सिरोमनि चतुर साँवरो भूलत नहिं दिन-राती॥
आवन कहि औसेर लगाई लिखी अटपटी पाती।
"ब्रजनिधि" कपट भरे हैं तौहू उनकी बात सुहाती॥८७॥

रामकली

जुगल छबि देखि री अब देखि ठाढ़े दे गरबाहीं।
छबि कौं लखि कोटिक घन-दामिनि रतिपति हू सकुचाहीं॥
सोभा कहा कहौं सुनि सजनी उपमा आवत नाहीं।
"व्रजनिधि" रूप भूप दंपति बर रँग बरसत दुहुँधाहीं॥८८॥

सारंग

हैं व्रजचंद के हम दास।
नाहिं जानत और काहू गही जुगल-उपास॥
विधि-निषेध जु कही बेदनि बढ़ै सुनि हिय त्रास।
बिनति "व्रजनिधि" सुनौ अब तौ देहु बिपिन बिलास॥८९॥

बिहाग

बिपति-बिदारन बिरद तिहारौ।
एहो करुनासिंधु साँवरे मो से जन की ओर निहारौ॥
हौं अति हीन दीन ह्वै टेरौं बिनती मेरी स्रवननि धारौ।
हे गोबिंदचंद "व्रजनिधि" अब करिकै कृपा बिघन सब टारौ॥९०॥

सोरठ

अब तौ कैसेहू करि तारौ।
मेरे औगुन चित जु धरौ तौ गिनत गिनत ही हारौ॥
मैं अपराधी हौं जु तिहारौ तुम और हाथि मति पारौ।
"व्रजनिधि" मेरी है यह बिनती अपनी ओर निहारौ॥९१॥

गौरी चैती

कैसे आगे जाऊँ री मैं तौ ठाढ़ौ नंदलाल री।
धूम परति पिचकारिन की अति उड़त अबीर-गुलाल री॥
झाँझि मृदंग ताल डफ बाजत जोर मच्यो यह ख्याल री।
दइया "व्रजनिधि" घेरि लई, हौं अब तौ भई बिहाल री॥९२॥

सारंग होरी

चलि खेलौ नंद-दुवारै कहा जोर मची है होरी।
भवन भवन तैं निकसीं नागरि अति सुंदर हैं गोरी॥
सब मिलि घेरि लेहु ललना कौ फगुवा माँगनि को री।
यह सुनि "ब्रजनिधि" बोलि रठे जब मुँह माँडन यो फगुवा ल्यो री॥९३॥

सारंग

आवत धुनि डफ की ग्वारनि गावत।
मधुर मधुर यह राग तान-सुर सरस रंग बरसावत॥
लेत चलत गति हाव-भाव सों प्रीतम कौ जु रिझावत।
"ब्रजनिधि" निधि सौं पाय यहै सुख जिय आनँद सरसावत॥९४॥

कन्हड़ी

मेरी नवरिया पार करो रे।
जीरन नाव ताल अति गहरो तेरे सरन परयो रे॥
खेवनहारे हौ प्रभु तुमही मैं तो तेरे पायँ परयो रे।
तारन-तरन सरन हौ तेरे तैं ही "ब्रजनिधि" नाम धरयो रे॥९५॥

मेरी जीरन है यह नाव।
सरिता नीर-गँभीर बहति है कछू न लागतु दाव॥
हौं बल-हीन दीन ह्वै टेरौं नाहिन और उपाव।
करनधार तुमही हौ "ब्रजनिधि" यहै आनि हिय चाव॥९६॥

सजनी कठिन बनी है आई।
बिरह-बिथा बाढ़ी अति हिय मैं बेदनि कही न जाई॥
सुंदर स्याम छबीली मूरति बिन देखे न सुहाई।
अरबरात ये प्रान सखी री "ब्रजनिधि" मोहि मिलाई॥९७॥

बिलावल

अब जिनि करो अबार नवरिया अटकी गहरै धार।
हौं बलहीन दीन अति प्रभु जू तुमही लगाओ पार॥
तुम बिन कहौ समर्थ कौन अस जासौं करौं पुकार।
राखौ लाज सरन आए की "व्रजनिधि" नंदकुमार॥९८॥

सोरठ

करौ किनि कोऊ कोरि उपाई।
जिनके मन मोहन सों अटके तिन्हैं न और सुहाई॥
रसना चाखि अँगूर-स्वाद को फिरि न निबौरी खाई।
"व्रजनिधि" व्रज-रस पाइ अबै कहुँ भटकै अनत बलाई॥९९॥

बिहाग

मन की पीर न जाइ कही री।
जाहि लगी सोही यह जानै काहू सों नहिं जात लही री॥
अति अकुलात हियो बिन देखे बिरह-बिथा नहि जात सही री।
"व्रजनिधि" बिन को समुझै सजनी औरन सों अब मौन गही री॥१००॥

बिलावल

मदमातौ नंदराय कौ छैल।
जोरि चौपई आइ बगर मैं करत अनोखे जोबन फैल॥
निकसि सकौं नहि क्योंहू बाहिर टोकत रोकत पनघट-गैल।
अब तौ होरी कौ मिसु पायौ "व्रजनिधि" सदा सुरूप अरैल॥१०१॥

जब तैं मोहन तन चितई।
तब तैं मोहि कछू नहि सूझै सुधि-बुधि सबै गई॥
कल नहि परत सँभार न तन की जित देखौं तित स्याम मई।
"व्रजनिधि" बिन ता छिन तैं सजनी सब सुख की हटताल भई॥१०२॥

ईमन

जाकौ मनमोहन चित हरयौ।
सो तौ भयौ उदास जगत तैं लोक-लाज विसरयौ॥
बूझत नहीं ग्यान-गीता कौ धीरज सबै टरयौ।
ताहि कछू सुधि रहै न "ब्रजनिधि" जो प्रेम-प्रबाह परयौ॥१०३॥

खंमाच

सखिन लै संग गन-गौरि पूजन चली।
अंग अंग साजि आभरन अति रंग सो
बसन सूहे पहिरि भाननृप की लली॥
करन कंचन-जटित थारराजत महा
सुभग पूजनहि विधि सौंज सजिकैं भली।
जमुन के तीर तहाँ भीर लखि छबिन की
स्रवन सुनि गान "ब्रजनिधि" सु मानत रली॥१०४॥

पूजन करि बर माँगत गौरी।
स्यामसुंदर सों कीजे मेरी हे गिरिजे सुंदर गठ-जोरी॥
बरसाने नंदीसुर माहीं बाढ़े रंग अधिक दुहुँ ओरी।
"ब्रजनिधि" ब्रज बृंदाबन बीथिन करैं केलि यौं कहत किसोरी॥१०५॥

परज

पूजन करत गौरि कौ राधा सहचरिगन मिलि गावत गीत।
बाढ़ी हिय अभिलाष अधिकतर बेगि मिलै वह मोहन मीत॥
गदगद कंठ हियो अति धरकत फरकत बाम भुजा रस-रीत।
कहि न जाति उतकंठा "ब्रजनिधि" उमग्यो प्रेम-नेम दल जीत॥१०६॥

रामकली

बिछुरिबे की न जानो प्यारे।
मनमोहन मोहे नहिं कितहू तातें रहौ सुखारे॥
दे विसवास उदास भए अब तरफत प्रान हमारे।
हम भोरी तुम कपट भरे हो "ब्रजनिधि" नंद दुलारे॥१०७॥

परज

लाड़िली कौ कीरति मैया पुजवति हैं गन-गौरि।
सुंदर सो बर देहु लली कौ यों माँगति कर जोरि॥
बढ़ौ सुहाग भाग सुख विलसौ लेहु पोथ चित चोरि।
"ब्रजनिधि" करत मनोरथ जननी राधा पै तृन तोरि॥१०८॥

रामकली

पराई पीर तुम्हैं कहा क्यों तुम मौन गहा।
तुम तौ आनँद-मूरति प्यारे हम हैं दुखी महा॥
लगनि लगाइ फेरि सुधि क्यौंहू नाहिन लेत अहा।
एहो 'ब्रजनिधि" अब यह मोपै विरह न जाइ सहा॥१०९॥

मनमोहन की छवि जब तैं दृष्टि परी।
तबही तैं हौं भई बावरी सुधि-बुधि सबै हरी॥
कहा कहौं कछु कहत न आवै लोक-लाज बिसरी।
"ब्रजनिधि" के देखे बिन सजनी अँसुवन लगी झरी॥११०॥

अड़ाना

देखि री साँवरो रूप-निधान।
सुरँग पाग अलबेली बाँधे कुंडल झलकत कान॥
कुटिल अलक सोहत कपोल पर चितवनि बंक मधुर मुसकान।
गइयन पाछे कछनी काछे आवत गावत तान॥
कबहुँक मुरि बतरात सखन सों परम रसिक रसदान।
"ब्रजनिधि" छवि निरखत ब्रज-सुंदरि वारत तन-मन-प्रान॥१११॥

या वृंदावन की बानिक याही पै बनि आवै।
यह जमुना यह पुलिन मनोहर
यह बंसीवट जहाँ मोहन बेन बजावै॥
ये तरु सघन भूमि हरियारी
ये मृग-मृगी पंछिन की स्रवन सुहावै।
"व्रजनिधि" यह राधा कौ बाग सोही बड़भाग
जो या सों अनुराग करि याही के गुन गावै॥११२॥

बिहाग

जाकी मनमोहन दृष्टि परयौ।
सो तो भयो सावन कौ आँधो सूझत रंग हरयौ॥
लोक-लाज कुल-कानि बेद-बिधि छाँड़त नाहिं डरयौ।
"व्रजनिधि" रूप-उजागर नागर गुन-सागर बर बरयौ॥११३॥

डोल की बिचित्र सोभा बनी।
कुसुम-पल्लव दल फलन सों नव-निकुंज ठनी॥
झूलत छबीले गौर साँवल राधिका घन धनी।
रंग केसरि की बदन पर छींट सोहत घनी॥
सहचरी उड़वत गुलालहि गान करि रस-सनी।
"व्रजनिधि" छबीले जुगल की छबि जात नाहिन भनी॥११४॥

हमीर

मो तन चितयो नवलकिसोर।
तब तें कछु न सुहाइ सखी री कल न परत निसि-भोर॥
मैं ठाढ़ी ही पौरि आपनी अचानक आइ गयो या ओर।
सुंदर स्याम छबीली मूरति "व्रजनिधि" चित कौ चोर॥११५॥

लगनि अगनि हू तैं अधिकाई।
अगनि बुझत पानी तैं सजनी लगनि महा दुखदाई॥
ज्यों ज्यों रोकत टोकत कोऊ त्यों त्यों बढ़ति सवाई।
"ब्रजनिधि" बिन यह पीर हिये की कासौं कहौं सुनाई॥११६॥

ईमन

मनमोहन प्रीतम कै अरी मोकौ गरवा लागन दै।
जो तू मेरी आछी ननदिया तौ मोहि रँग मैं पागन दै॥
हा हा री मैं पाय परति हौं रैनि स्याम सँग जागन दै।
"ब्रजनिधि" सों अब या होरी मैं झगरि सु फगुवा माँगन दै॥११७॥

हम तौ प्रीति रीति रस चाख्यौ।
स्याम-रँग मैं रँगे नैन ये ज्ञान-जोग तुम भाख्यौ॥
गाहक नाहिन ब्रज मैं उद्धव वृथा बोझ तुम राख्यौ।
लोक-लाज कुल की मरजादा तजि"ब्रजनिधि" अभिलाख्यौ॥११८॥

बिहाग

अरी तो पै रीझि रह्यौ रिझवार।
रसिया नाहिन मोहन सो कोउ तोसी नाहिं खिलार॥
भलौ बन्यौ बानिक दोउन कौ यह होरी त्योहार।
"ब्रजनिधि" रहि गुलाल धूँधरि मैं करि लै रंग अपार॥११९॥

होसनाइक खिलार जसुमति कौ धूम मचाइ रह्यौ होरी मैं।
डोलत बगर बगर हो हो कहि रंग गुलाल लिए झोरी मैं॥
डफहि बजाइ निलज गीतन कौ गावत तान रंग बोरी मैं।
"ब्रजनिधि" स्यामसुँदर के हिय की लाग लगी राधा गोरी मैं॥१२०॥

काफी

होरी मैं जुलमी जुलम करै।
नंद महर कौ छैल साँवरो मोसों आनि अरै॥
केसरि भरि पिचकारी मेरी सारी रंग भरै।
ढीठ लँगर मानै नहि "व्रजनिधि" कैसेहुँ नाहिं टरै॥१२१॥

विभास

श्री राधा-मुख-चंद देखि कोटि चंद वारौं।
दसनन पर दामिनि नासा पर कीर,
भौंह धनुष नैन निरखि त्रिविधि ताप जारौं॥
अंग अंग छबि-तरंग रूप की उजारी,
बिधिना यह रुचिर रची त्रिभुवन महि नारी॥
भूखन नव जगमगात नीलांबर सारी,
"व्रजनिधि" पिय बस किए गोबिंद पिय प्यारी॥१२२॥

सोरठ

आजि रंग बरसि रह्यौ बरसानै।
श्री वृषभान-नृपति के मंदिर बाजि रहे सहदानै॥
राधा-जनम सुनत गोकुल मैं राधा हिय हुलसानै।
फूल भई "व्रजनिधि" रसिकन के नीरस भए खिसानै॥१२३॥

पंचम

बीन बजाइ रिझाइ मोहि लियो मन पिय कौ।
रचि पचि बिधिना तूही रची री
तू सब सुख जाने उनके जिय कौ॥
तेरा ही ध्यान धरत श्रीराधे
तोही सों दे हित चित हिय कौ।
"व्रजनिधि" तौ तेरे ही रस-बस
और भाग ऐसो नहिं तिय कौ॥ १२४॥

देस टोड़ी

जैसे चंद चकोर ऐसे पिय रट लागी।
मदन-मोहन पिय देखे तब तें नैन भए अनुरागी॥
कहूँ न परत छिन चैन रैन-दिन लोक-लाज सब त्यागी।
"ब्रजनिधि" प्रभु सों लग्यो मेरो मन परम प्रेम अँग पागी॥१२५॥

झिंझौटी

सैयोनीं इन इशक सावले देके ही कमली कीता।
कित बलवनां किहिनू आखां जो जो दिल विच बीता॥
विन डिठीआं पल कल नहीं यों दी बंसी सुना मन लीता।
जो "ब्रजनिधनूँ" कोई आन मिलावे सोई असाडा मीता॥१२६॥

षट् (ताल जत)

आज ब्रज-चंद गोबिंद भेख नटवर बन्यो
निरखि अति थकित रही मति जु मेरी।
पीत-पट-काछनी पीन उर माल बनि
झुकि रही चंद्रिका वाम केरी॥
शृंग मिलि मुरलिका वजत मधुरे सुरनि
मोहि रहे देवगन मुनिन जेरी।
"ब्रजनिधि" प्रभु की या रूप-छबि-छटनि पर
कोटि लखि मदन किउ वारि फेरी॥ १२७॥

ललित

नैन उनींदे अँग अरसाने पिय सँग सब निसि जागै।
छूटे वार हार उर उरझे अरुन अधर रँग पागै॥
झुकि झाँकनि मुसकानि मनोहर मनहुँ मैन-सर लागै।
"ब्रजनिधि" लखि वृषभान-सुता-छवि निरखि सकल दुख भागै १२८

ललित (तिताला)

भज मन गोबिंद सब-सुख-सागर।
अधम-उधारन भक्त-कलपतरु पूरन-ब्रह्म उजागर॥
सेस-महेस-मुनि पार न पावैं सो हरि ब्रज बिहरत नटनागर।
"ब्रजनिधि" जू प्रभु की यह महिमा दीनानाथ दयाकर॥१२९॥

ललित

गोबिंद-गुन गाइ गाइ रसना-सवाद-रस ले रे।
भक्ति-मुक्ति अरु सब-सुख-दाता परम पदारथ पे रे॥
पूरन-ब्रह्म अखिल अबिनासी और न ऐसो हे रे।
"ब्रजनिधि" जू प्रभु की यह महिमा पापाबृंद भजि भे रे॥१३०॥

रामकली ख्याल

जाने जू जाने लला रे कहो कहाँ रति मानी प्यारी।
निपट कपट की प्रीति तिहारी घर घर के सुख-दानी॥
करत दुराव दुरत नहिं कैसे बातें रहत न छानी।
"ब्रजनिधि" तुम हो चतुर सयाने हौं हू राधा रानी॥१३१॥

टोड़ी

देखि री देखि छवि आज नंद-नंदन गोबिंद।
झुकि रही पाग छवि चंद्रिका फवि रही
दिपत मुख ज्योति फीकौ परत इंद॥
कुंडल की झलक रवि की किरन मानों
बिथुरी अलक मन-हरन के फंद।
"ब्रजनिधि" प्रभु की यह माधुरी मूरति
निरखत मिटत हैं सकल दुख-दंद॥१३२॥

बिहाग

कैसे करिए हो नेह-निबाह ।

हम सूधी तुम ललित त्रिभंगी पैयत नाहिं तिहारो थाह ॥

मरियत इही मसोसे निस-दिन उपजत अधिक हिये मैं दाह ।

जो करनी ही ऐसी "व्रजनिधि" तो क्यों बढ़ई मो मन चाह ॥१३३॥

सोरठ

मन मोहि लियो मेरो साँवरे मोहि घर अँगना न सुहाई ।

रैनि-दिना तलफत बीतत है कीजे कौन उपाई ॥

वह अलबेली सुंदर मूरति नैननि रही समाई ।

कहा करौं कित जाउँ सखी री जियरा अति अकुलाई ॥

निपट अटपटी लगी चटपटी मोपै रह्यौ न जाई ।

लाज निगोड़ी कौलों राखौं "व्रजनिधि" मिलिहौं धाई ॥१३४॥

कान्हड़ा

आज अचानक भेट भई री ।

हौं सकुचाइ रही अनबोली उनि हँसि नैननि सैनि दई री ॥

लोक-लाज बैरिनि रही बरजति ये अँखियाँ बरजोर गई री ।

जो सुख चाहति सो सुख दै के करि पठई रस-रूप-मई री ॥

चंचल चारु चीकनी चितवनि तिनहि मोल मैं मोल लई री ।

स्याम सुजान सजन तैं "व्रजनिधि" प्रीति पुरानी रीति नई री ॥१३५॥

ईमन (जल्द तिताला)

प्यारो, प्यारी आवत री तेरे महल री नागर नंद-दुलारो ।

पायन पान छिवाउँरी तेरे नागर नेक निहारो ॥

कुसुमन सेज बनाय आली री जाग्यो है भाग तिहारो ।

हौ पठई जगनाथ प्रभु मानिनी-मान निवारो ॥१३६॥

भूपाली (तिताला)

येरी मान कीयो कछु चूकहु जान्यो वारि पीये नित पान्यो ।
परम गंभीर धीर नीर सौं सुभाव जाको तेरेही रस में सान्यो ॥
पाय परैं अकह्यौ न करैं डरै जो पते पर औगुन आन्यो ।
नीके रहो जगनाथ की स्वामिनी सीस चढ़ी ज्यौं रूप बखान्यो ॥१३७॥

राधिका तजि मान मया कर तेरे आधीन भए सुंदर ।
वर मेलि कलप तन होहें कलप-तर ॥
वे नागर तू नव नागरि बर वे सुंदर तू श्री सुंदर बर ।
वे हरि हरत सकल त्रिभुवन-दुख तू वृषभान-सुता हरि को हर ॥
ज्यौं कछू तू उनसौं कह्यौ चाहै उनहि जानि सखी मोसो अर ।
नंददास तब रही निरखि तन आएउ घर लाल ललिताछर ॥१३८॥

कान्हरा (चौताल)

हे नरहर निरोतम परसोतम प्रानेसुर ईसुर
नारायन नँदनंदन कर पर गिरवर धरन ।
जगन्नाथ जगदीस जगतगुर जगजीवन
जगमनि पति माधो भक्त-वछल हित-करन ॥
वासुदेव पारब्रह्म परमेसुर सुरपति
राधावर आनंदकंद जग-वंदन ।
राम पद चितामनि चक्रपानि आप
केसो "तानसेन" तुव सरन ॥ १३९ ॥

धिलंगतक धुंगा तकधिलंग धित्ता धोधी बाजत मृदंग ।
ये दोऊ नृतत गावत सप्त-सुर विधान तान अति सुघंग ॥

नूपुर कंकन की कनी मुरली डफ रबाब झाँझ जंत्र ईमृतकुँडली आवज श्रीमंडल मुरझ ताल ताकड़ता धीकड़ता ताकड़ता धीकड़ता ताकड़ता धीकड़ता ताता थेई रटत सखी रहत रंग।

सुर नर गंधर्व नभ ध्यान धरत हैं गौर स्याम जुगल रूप मोहत कोटिक अनूप राधे प्रभु प्यारी उरप तिरप लेत न्यारी न्यारी अनाघात औघड़ गति उघटत संगीत शब्द धीकड़ कड़धीकड़ कड़धी कड़कड़धी कड़ कड़ झननननन थीररर थीररर मन की उमंग ॥१४०॥

सोरठ (जल्द तिताला)

झुक नाथ नवेलो झूलै छै।
रंग हिंडोल सुरंगी बागे राधाजीरै अनकूलै छै॥
नैणा बैणा राते माते प्रेम को हाथी हूलै छै।
बरनत नृपति "प्रताप" राग कर सावणरै सुख फूलै छै॥१४१॥

पूर्वी ख्याल (इकताला)

मेरौ मन मेरे हाथ नहीं कहा करिए री बीर।
व्रजमोहन-बिछुरन की सखी री निपट अटपटी पीर॥
कैसे धीरज धरिहौं सखी नैनन भरि भरि आवत नीर।
आनँदघन व्रजमोहन जानी प्रान-पपीहा अधीर॥१४२॥

दैया हम योंही करी पहिचानि निपट निठुर विहारी बानि।
व्रजमोहन ह्वै मोहे नहिं कहुँ कहा जानो अकुलानि॥
हम भोरी तुम चतुर सनेही कौन रची विधिना यह आनि।
आनँदघन ह्वै प्यासन मारत प्रान पपीहन जानि॥१४३॥

नैनन देखवे की बानि।
बरजि रही बरज्यो नहिं मानैं छूट गई कुल-कानि।
आनँदघन व्रजमोहन जानी अंतर की पहिचानि॥१४४॥

सोरठ (ताल कलप)

नंद-नँदन पैड़ैं परयौ री क्यों बचौं हेली।

अपनी टेक गहे रहे री छाँड़त नाहीं बानि।
मैं वासौं बोलौं नहीं दूजी सास ननद की कानि ॥ १ ॥
लकुटी लिए ठाढ़ौ रहै री रसिया नंदकुँवार।
मैं वासौं बोलौं नहीं मोसौं नैननि करत जुहार ॥ २ ॥
मेरे पिछवारै बैठिकै री गावै लगनि के गीत।
अब तो वाड़ै क्यों बनै हेली पायो नंद-नँदन सो मीत ॥ ३ ॥
गरै दुपटा डारिकै री पैयाँ परि परि जात।
मैं वासौं बोलौं नहीं मेरे नैननि हाहा खात ॥ ४ ॥
कुंज-गलिन कौ खेलिबो री जमुना-जल-असनान।
भागि बिना क्यों पायबो री कहै अली भगवान ॥५॥१४५॥

हेली क्यौं बचौं नंद-नँदन पैड़ैं परयौ।
तू सिख दै मेरी सखो सहेली हौं वह रंग न रचौं ॥ १ ॥
मेरे लिये या बगर मैं हेली आनि करै पहिचानि।
बार बार कै आयबे हेली हौं जब ही गई जानि ॥ २ ॥
नाम और को लै सखी री टेरै मोहि जताय।
हौं समझौं सोई कहै री क्यौं जिय रहै बताय ॥ ३ ॥
गीतन मैं समझाय कह्यौ मोहि लैन की बात।
वै जानैं कछु और सी हेली हौं जानौ वाकी घात ॥ ४ ॥
वाकै तौ बहु चातुरी हेली मेरे कुल की कानि।
छैल छबीलौ नंद को हेली परत न छाँड़ै बानि ॥ ५ ॥
कबहूँ कर मैं डफ लिए हेली उठत दोहरे गाय।
सनमुख आवै नंद को हेली सैननि हाहा खाय ॥ ६ ॥
मोहि देखि झुकि तकि रहै री गहरे लेत उसास।
इक जिय डरपत आपनौ हेली सास-ननद की त्रास ॥ ७ ॥

अब ढिग ह्वै है जात हो जू आवन दै हरि फाग।
जब काहू कौ ना चलै हेली सबहिन कै अनुराग॥ ८॥
ज्यौं ज्यौं होत जनाजनी री त्यों त्यों बाढ़त प्रेम।
बार बार कै तायवै हेली ज्यों निमटत है हेम॥ ९॥
नैननि ही नैननि बनी री बनत बनै कछु आय।
कै जिय जानै आपनौ हेली "जगन्नाथ" कबिराय॥१०॥१४६॥

सारंग

राजिद रंग रो मातो जी म्हारा
महलाँ आवैछै हो राजि।
सोनाहंदी बतक जराव दा प्याला
आप पीवै म्हानै प्यावैछै हो राजि॥ १४७॥

विहाग (जत)

घरी घरी कौ रूसनो हो कैसे बन आवै ?
है कोउ तेरे बवा की चेरी नित उठ पइयाँ लागि मनावै॥
अब तो कठिन भई मेरी आली वो बिन लालन और न भावै।
"कृष्नदास" प्रभु गिरधर नागर राधे राधे राधे गावै॥१४८॥

आवत जात अरी हौं हारि रही री।
ज्यों ज्यों पिय बिनती करि पठवत त्यों त्यों तुम गढ़ मौन गही री॥
तिहारे बीच परै सो बावरी हौं चौगान की गेंद बही री।
"कृष्नदास" प्रभु गिरधर नागर सुखद जामिनी जात बही री॥१४९॥

बिहाग

हमने तेरो स्यानप जान्यौ।
प्रीतम सों तू मान करत है कहा हाथ तेरे यह आनौ॥
पहिले बचन कठोर कहत है रह पाछे पछतानौ।
हम सब भाँतिन देख चुके हैं "ब्रजनिधि" कह्यो तेरो मान्यौ॥१५०॥

बिहाग (जत)

सुनि मुरली की टेर चपल चली।

रुनझुन बन तें आवत है री श्रीवृषभान-लली॥

जाय मिली घनस्याम लाल सों जनु घन दामिनि रंग रली।

नाथ श्री गोबरधनधारी "नागरीदास" अली॥१५१॥

सोरठ (तिताला)

खेवट जो हरि सो नहिं होतौ।

भवसागर बूड़त अपने कौ काढ़नहारो को तौ॥

द्रोन-गंगेय बिकट तट दोऊ सिद्ध दुरजोधन सोतौ।

करन आदिदे कईक सुभट मिलि ता तरंग समोतौ॥

अनायास भए पार पांडुसुत कियो निबाह अँग होतौ।

राख्यौ सरन बिचारि "सूर" प्रभु है अपने जन सो तौ॥१५२॥

सोरठ (देस या काफी)

आली सुंदर स्याम सों नैन लगे री।

ललित त्रिभंगी नंद को छैला वा रसिया मैं प्रान पगे री॥

जब तें दृष्टि परयौ है मोहन लोक-लाज कुल-कानि भगे री।

खान-पान सुधि-बुधि सब बिसरे पीर अनोखी हिये जगे री॥

उनको आनि मिलाइ सखी री निरमोही ने प्रान ठगे री।

कै मोहि ले चलि नव-निकुंज मैं "ब्रजनिधि" मिलि करि रंग मगे री१५३

बिहाग (तिताला)

अरी हौं इन बातन पर वारी, अरी हौं इन बातन पर वारी।

हाथ गहे बतरात परसपर रूप छके पिय-प्यारी॥

कोउ कोउ बात बनावत भामिनि लाल करत मनुहारी।

"केवलराम" वृंदावन-जीवन सुख बैठे सुख वारी॥१५४॥

सोरठ (तिताला)

मनमोहना त्रिभंगी नवरंगी नंदलाला ।
हँसि लीनी है भुजन भरि नव-दामिनी सी बाला ॥
तन-मन हिलन मिलन बन बाढ़ी है रंग-रलियाँ ।
वहाँ फूल-पुंज फूले अलि गुंज कुंज-गलियाँ ॥
उर हार बंद डोरी जिय लाज टूटि टूटै ।
खुलि अंचरा सु उन सिर बर बेनी छूटि छूटै ॥
माची है रंगभीनी आनंद-केलि हेली ।
दुरि देखते नागरिया मन देह सौ अकेली ॥ १५५ ॥

रामकली

मोहिं कैसे करिकै तारिहौ ।
अति ही कुटिल कुचाल कुकर्मी मेरे पापनि कौ अब जारिहौ ॥
चरन-कमल के सरन हौं मैं भवसागर में तुमही सारिहौ ।
"ब्रजनिधि" मेरी यहै वीनती जलदी लेहु सम्हारि हौ ॥१५६॥

तुम दरसन बिन तरसत नैना ।
मोहिं उठी है पीर अनोखी थकित भए अब वैना ॥
या जुग मैं सब सुख के साथी मेरे तुम बिन है ना ।
"ब्रजनिधि" तेरे सरनै आयो तुमही से सब कहना ॥१५७॥

नट (दुताला)

निपट बिकट ठौर अटके री नैना मेरे ।
सुख-संपति के सब कोई साथी बिपति परे सब सटके ॥
तजि खगराज छुड़ायो हाथी टेर सुने नाहीं कहुँ अटके ।
"मीरा" के प्रभु गिरधर को तजि मूरख अनतहि भटके ॥१५८॥

अड़ाना (इकताला)

ठौर ठौर की प्रीति न कीजै एकही सों रस लीजै।
जिय की उमँग कासौं कहौं सजनी
लगनि लगी जासों ताहि देखि देखि जीजै ॥ १५९ ॥

सोरठ (जत)

ऊधो प्यारे निपट निपीरे याते।
प्रीति के हाथ लगे नहिं कबहूँ छुछिल फिरत हौ ताते ॥
ब्यावरि-बिथा बाँझ कहा जानै जानै लगी सु जाते।
"सूरदास" प्रभु तुमरे मिलन कूँ ब्याहन गए हो बराते ॥१६०॥

जैजैवंती

साँवरे की दृष्टि मानो प्रेम की कटारी है।
लागत बिहाल भई गोरस की सुधि गई
मनहू में ब्याप्यो प्रेम भई मतवारी है ॥
चंद तो चकोर चाहै दीपक पतंग जारै
जल बिना मरै मीन ऐसी प्रीति प्यारी है।
सखी मिलि दोइ-चारि सुनो री सयानी नारि
उनको हौं नीके जानौं कुंज को बिहारी हैं ॥
मोर को मुकट माथे छबि गिरधारी है
माधुरी मूरति पर "मीरा" बलिहारी है ॥ १६१ ॥

भिंभोटी (तिताला)

मदमाती गूजरि पानी भरै।
रेसम दी डोर सोने दा गडुवा रंग भरी गागर सीस धरै ॥
सालूडा सरस कसब का लहँगा पनघट बिना वो घर न रहै।
रतन-जटित की नई ईंडई[1] रे और लागी मोतियन की लरैं ॥१६२॥

---

(१) ईंडई = इंडुरी, जिसे सिर पर रखकर उसके ऊपर पनिहारिनें घड़ा आदि रख लेती हैं।

रागकली

दीन की सहाय करे ही बनै ।
तुमही सहाय करो जब जीए तुम बिन कौन गनै ॥
सुख-स्वारथ के सब कोई साथी दुख में तुमहि कनै ।
निहचै मैं यह जानी "ब्रजनिधि" दुख सब मेरे आज हनै ॥१६३॥

पूर्वी ख्याल (इकताला)

म्हे तो थाँरी बोलियाँ री वारी जावाँ ।
थाँ बिन म्हाँनूँ कल ना परे जी बिन देख्याँ उकलावाँ ॥ १६४ ॥

चैती गौड़ी ख्याल (जल्द तिताला)

भजि गोबिंद गोबिद गोपाला ।
देवकी कौ छैया बलभद्र जी कौ भैया
लाल कृष्न कन्हैया दूलैं नंदलाला ॥ १६५ ॥

ईमन (जत)

मो मन यह आई पकरि मोहन पै बैर लैहौं ।
लै अबीर गुलाल मुख माड़ौं पाछै तें दौरि जाय अंजन दैहौं ॥१६६॥

हिंडोल

हे री मैं तो बसंत फाग मनाऊँ अपने पिया कौ रिझाऊँ ।
परम रँगीला रंग बनाऊँ भीजूँ और भिजाऊँ ॥
बरन बरन के हरवा गूँदि गूँदि पिया के गरै लाऊँ ।
जो हमसों पिया मुखहू बोलै फूली अंग न समाऊँ ॥१६७॥

ईमन (जत)

अहो मेरी हरि सों आँखैं लागीं ।
जब तें देख्यौ स्याम साँवरौ तब तें हौ अनुरागी ॥
ध्यान धरे सब दिन बीतत हैं रजनी इकटक जागी ।
साँझ समेते भोर लों भटकत सरस नींद-रस त्यागी ॥

जब दरपन लै देखत हौं तब अँखियाँ रोवन लागीं।
मो कौ दुख दे जाइ लगी ये "रूप" रहसि सो पागीं ॥१६८॥

बिहाग (जत)

रिखि ज ये दोऊ बालक काके ?
साँवर-गौर किसोर मनोहर नैन सिरात[1] सभा के ॥
दसरथ नृप रघुबंसी राजा अवधि-पुरी घर ताके।
"तुलसीदास" सीतल नित इह बल ठाकुर आदि सदा के॥१६९॥
रिखि के संग कुँवर दोउ आए कुँवरि जानकी जोग।
बोलो बोउत दिनकरहि मनावत सब मिथिला के लोग॥
बिसमित भयो जनकनृपजू के जो राघो धनु तोरै।
जो कछु दान-पुण्य हम कीन्हे बिधि सँजोग यह जोरै॥
पानिग्रहन रघुबर सीता को जो जगदीस दिखावै।
जीवन-जनम सुफल तब ह्वैहै "अग्र" अली गुन गावै॥१७०॥
कहौ यह रिखि कौन के हैं बीर।
साँवर-गौर किसोर मनोहर दिन लघु मति गंभीर॥
कहत तपोधन मिथिलापति सौं यह सुत रघुकुल-राज।
जग्य काज जाचग्या कीन्ही सरौ तुम्हारो काज॥
यह सुनि हृदै सिरायो जनक कौ मम ब्रत पूरन करिहैं।
"अग्रदास" नरइंद मान थो बैदेही कौ बरिहैं॥१७१॥

फूलन की माला हाथ, फूली फिरै आली साथ,
झाँकत झरोखे ठाढ़ी नंदिनी जनक की।
कुँवर कोमल गात को कहै पिता सौं बात
छाड़ि दे यह पन तोरन धनक की॥
"नंददास" प्रभु जानि तोरयो है पिनाक तानि
बाँस की धनैया जैसे बालक तनक की॥ १७२ ॥

---

(१) सिरात = शीतल होते हैं।

सोरठ (चौताल)

बोलो क्यानै राजि यासु ।
ऊभी ऊभी मिरगानैनी अरज करैछै
काँइ गुन कीयो थासु थासु ॥ १७३ ॥

सारंग (तिताला)

सखी री आज आँगन लागै सुहायो री ।
पावन करन हरन दुख-दंदन
नंद-नँदन मेरे आयो री ॥
आनँद-घन आनँद उपजावन रूप
रिझावन मन-भावन छवि छायो री ।
"जगन्नाथ" प्रभु अपनि जान मोहे
विरह तपत पर नेह को मेह बरसायो री ॥ १७४ ॥

खंमाच ख्याल (तिताला)

बोलनु थाँरो भावे राज अनबोलनो थाँरो न्हीं भावै ।
कर जोरे ठाढ़ी मृगनैनी थाँ बिन चित उकलावै ॥ १७५ ॥

गौड़ मलार ख्याल (तिताला)

तेरी गति ओकार लखे कोऊ साँइयाँ ।
पल मैं जल थल चाहे सो करे तुव
ऐसे आजिज की अरज तुझ ताँइयाँ ॥ १७६ ॥

खंमाच ख्याल (तिताला)

नंदजीरै आजि बधावनो छै ।
गहमह हुई रंग रावल मैं निरखि नैना सुख पावनो छै ॥
भाभीजी म्हे थाँसूँ पूछाँ आजिरो घोस सुहावनो छै ।
"मीरा" के प्रभु गिरधर जनमिया हुवो मनोरथ भावनो छै ॥१७७॥

कलिंगड़ा ख्याल (पस्तो)

अमी पतित रे दया की करिवो अमी अधम रे दया की करिवो ।
अमी पतित तुमी पतित-पावन दोउ बानिक बनि रहिबो ॥१७८॥

गौड़ मल्हार ख्याल (तिताला)

स्याबा म्हारे आज्यो जी थॉरे वारी वारि जावाँ ।
घन गरजे मोरला बोले म्हारे मंदर आज काज जी ॥१७९॥

मलार ख्याल (तिताला)

लीनो रे दईया मेरो चित चोरवा ।
रैन अँधेरी बीज चमके हारे बाला प्रीत लगी वाही ओर वा ॥१८०॥

परज (तिताला)

हेली म्हारी म्हारो थारो मित्र गोपाल है ।
मोर मुकुट मकराकृत कुंडल उर बैजंती माल है ॥
वृंदावन की कुंज-गलिन मैं मुरली को सबद रसाल है ।
कृष्न जीवन "लछीराम" के प्रभु प्यारे बिन देख्या बेहाल है ॥१८१॥

लागै री नंद-नंदन प्यारो ।
बिमल उदै उड़राज सरद को वंसी बजाय हरयो प्रान हमारो ॥
चैन नहीं सखी मैन बढ़यो है मदनमोहन जू को रूप निहारो ।
"जगन्नाथ" प्रभु जन छबील बलि चीर-हरन के बैन सम्हारो ॥१८२॥

सोरठ ख्याल (इकताला)

अरी मेरे नैननि बानि परी री ।
नंद-नँदन प्रीतम प्रान-प्यारे के मुख निरखन को अरी री ॥
मदन-मंत्र वंसी मैं पढ़िगो जब को थकित करी री ।
मोहन की चितवनि चितै चोरयो तब तें चाह जरी री ॥१८३॥

पूर्वी ख्याल (तिताला)

नैनन में राखो प्यारे साँईं देसवारे हारे
बाला प्रीत लगी है नेक न करिहैा न्यारे।
तू सिरताज मेरा मैं बंदी हौं तेरी
तुम बिन कौन उधारे॥ १८४॥

सोरठ ख्याल (तिताला)

क्यों जी हरि कित गए नैना लगाय के।
बंसी बजाय मेरो मन हर लीनो नेह कीना बढ़ाय के॥
हमें छाँड़ि कुबज्या संग राचे घसि घसि चंदन ल्याय के।
"सूरदास" हरि निठुर भए अब मधुपुरी रहे हैं छाय के॥१८५॥

आसावरी ख्याल (तिताला)

साहिबाजी थाँरै काईं जाँणीं काईं चित आई।
थाँ बिन म्हानै पलक कलपसी तड़फड़ात मछली
बिन पाणी होंजी सावा जिणनूँ यूँ बिसराई॥१८६॥

कन्हड़ी ख्याल (जल्द तिताला)

अब जीवन को सब फल पायो।
मोहन रसिक छैल सुंदर पिय आय अचानक दरस दिखायो॥
जो चित लगनि हुती सो भइ री सुफल करया मन ही को चायो।
"ब्रजनिधि"स्याम सलोना नागर गुन-मूरति हिय अतिहि सुहायो १८७

ख्याल

मेरा वेली यार वे तैं क्या कीता वे।
बिन दामोंदी वारी वै पाइन परदी
वोमीय्याँ इसक लगाय दिल लीता वे॥
तैं क्या कीता वे मेरा वेली यार वे तैं क्या कीता वे॥१८८॥

वो लग्या मैडा नेह इन बेपरवाइदे नाल
कोइयन बुजदा मेंडाहाल।
अपनैं दरद की कोउअन बुजदा
सुनदा नहीं यार वे सुनदा॥
नहीं जग मैं जीवना जंजाल
वो लग्या मैडा नेह॥ १८६॥

ईमन ख्याल (जल्द तिताला)

तेरे संग ना खेलौं ना अब रे खेलौं ना।
आँखिमिचोवा कहा करौं मैं तेरे संग मेरी वे जानै बलाय।
वारूँ री इन दूतिन कौ जिन सैनन दियो बताय॥ १६०॥

धनाश्री (तिताला)

री चलि बेगि छबीली हरि सों खेलन फाग।
निकस्यो मोहन साँवरो बलि फाग खेलन ब्रज माँझ।
उमड्यौ है अबीर गुलाल गगन चढ़ि मानै फूली साँझ॥ १॥
बाजत ताल मृदंग झाँझ डफ कहि न परत कछु बात।
रंग रंग भीने ग्वाल-बाल सब मानौ मदन-बरात॥ २॥
इत तें आईं सब सुंदरि जुरि करि करि अपनौ ठाट।
खेलत नहिं कोऊ कान्ह कुँवर सौं चाह विहारी बाट॥ ३॥
बिन राजा दल कौन काज बलि उठिए छाँड़िए ऐड़।
उमग्यौ है निधि ज्यौं नवल नंद कौ रुकी है रावरी मैड़॥ ४॥
बिहँसि उठी वृषभान-नंदिनी कर पिचकारी लेत।
सहि न सकत कोउ महा सुभट ज्यौं सुनत सबद सँकेत॥ ५॥
आई हैं रूप-अगाधा राधा छबि बरनी नहिं जाय।
नवल किसोर अमल चंद मानौ मिली है चंद्रिका आय॥ ६॥

खेल मच्यो व्रज बीथिनि महियाँ बरखत प्रेम अनंद ।
दमकत भाल गुलाल भरे मनौ बंदन भुरके चंद ॥ ७ ॥
दुरि मुरि भरनि बचावन छवि सों बाढ़्यौ रंग अपार ।
मैन मुनी सी बोलत डोलत पग नूपुर झनकार ॥ ८ ॥
और रंग पिचकारिन भरि भरि छिरकत हरि तन तीय ।
कुटिल कटाछ प्रेम-रँग भरि भरि भरत है पिय को हीय ॥ ९ ॥
सिव सनकादिक नारद सारद बोलत जै जै जैत ।
"नंददास" अपने ठाकुर की जी वो बलैया लैत ॥१०॥१९१॥

होरी (जत)

ननदिया होरी खेलन दै ।
कान्है गरियारै ऊधम पारै अब मोपै रह्यौ न परै ॥
जो कछु कहो सो करिहौं ननदिया फागुन मैं जस लै ।
"आनँद-घन" रस भीजि भिजैहौं आजि यहै पन है ॥१९२॥

गौड़ मलार ख्याल (इकताला)

या रुत मैं आली कोऊ पीया कूँ मोसूँ ल्या मिलावै ।
त्यों त्यों गरज गरज बरस बरस अधिक विरह सतावै ॥१९३॥

कन्हड़ी काफी (तिताला, पंजाबी)

जालम बंसी बज्जाई हो मोहना ।
सूतड़ीनै सोणै नहीं दैंदा हो ॥
इसक लगाय करि क्यौं तरसांदा हो मैंडी ।
जिद दयादै दाहो तू सोणे नहीं दैंदा हो ॥ १९४ ॥

आसावरी ख्याल (तिताला)

यो तो ढोलो म्हारो छै जीवोजी मारू रंगरो ।
आव पीया मिल चौपर खेलाँ पिय पासा घनसारी छै जी ॥१९५॥

बैत

जो समा पै गुजरै सो परवाने का तन जानै।
इस्क की बात मत पूछो उन दोउन का मन जानै ॥ १९६ ॥

बिलावल ख्याल (तिताला)

घूंघटवण्या वे तेंडा जोर वे सईयो इा।
गोरे गोरे मुख पर सालूडा सोवे
रेसम लागी कोर वे ॥१९७॥

खंमाच (तिताला)

ओलूडी सी आवै राज होजी गाढा मारु थारी।
अमलांरा राता माता म्हारै महला
आजो भुज भर अंग लगाजो जी ॥ १९८ ॥

कुंज पधारो राज रंग-भरी रैन।
रंग भरी दुलहन रस भरे पिया स्याम-सुंदर सुख दैन ॥ १९९ ॥

पूर्वी ख्याल (इकताला)

अनोखे वे मेंडी जिद ल्याई वे।
चंद चढ्या कुल आलम वेखे मे वेखूँ तुजवांई वे ॥ २०० ॥

सरपरदा बिलावल ख्याल (जल्द तिताला)

लटकणरो मोती रूडो म्हारो ओर बाजू-बंद राजि हो।
तेहड जेहड निरखि "मिहर-बान" बाँही गजरावल चूडो ॥२०१॥

ननदिया लाय दे सिँगरवा मोरा
बार बार मैं करी हूँ निहोरा बीर तोरा हे।
कुच भुज फरकत अगम जनावन लागे
फगवा मोहि बार जोबन करै अब जोरा हे ॥२०२॥

सारंग ख्याल (इकताला)

हे ब्यानी कैसें जिय नैन होंदा मोरा ।
आसिक हरनी मासूक सिकारी बिरहदा बान मुझे डार ॥२०३॥

सारंग ख्याल (तिताला)

भूल मति जायोजी अँखियाँ लगा करा ।
तुम घन हम मछली पिय प्यारे नेह मेह बरसावो जो ॥२०४॥

सोरठ ख्याल (तिताला)

हो म्हारा साहिबा वो थे म्हारे डेरे आहो ।
जटपटी पाग गोरे सीस बिराजे हो बाँको हो दारुडा पिलादे हो ॥२०५॥

सरपरदा बिलावल ख्याल (जल्द तिताला)

मन भावन उपजावन रंग ऐसो सूरज न पायो ।
जो कछू कहो न कहो मोरी सजनी सरफ-रंग मन येहो बरभायो ॥२०६॥

मलार गौड़ ख्याल (जल्द तिताला)

कैसे धौं कटे विरह नहि जानौ री
अति डरपावनी सावन की रैन प्यारे बिन ।
दादुर मोर पपीहा बोले कोयल
सुनकर पल पल छिन छिन जियरा
घटे हारे वाला कौन वाहरियाँ ॥ २०७ ॥

सारंग ख्याल (इकताला)

मिवा नूँ धूपन लागे लागत सीरी बयार ।
बादर रे तू छाया करियो सूरज लेहि छिपाय ॥ २०८ ॥

गौड़ मलार ख्याल (जल्द तिताला)

बादलवा की वो देखूँदे बादरवा
बरस विरह की बूँदें हियरा रुधेये।
है कोई ऐसा आनि मिलावै नित उठ पपिहा टेर सुनावे
बा देख्याँ मोहें चैन न आँखन मूँदे हे ॥ २०६ ॥

ईमन कल्यान

ऐसे न खेलिए होरी दैया मेरी नाजुक बहियाँ मरोर डारी।
हौं गुरजन दुर निकसी उन गहि भिजई कंचुकी रंगभर सारी॥
डार गुलाल रही हग मींडत उन औसर भर लई अँकवारी।
"दया सखी" सब विध करि व्याकुल कह न सकत तोसों लाजकीमारी२१०

कामोद

मेरो अब कैसे निकसन हो दइया होरी खेलै कान्हइया।
या मारग है के हौं निकसी मेरो छीन लियो दहिया दइया॥
सासरै जाऊँ तो सास रीसिहै पीहर जाउँ खिजै मइया।
इत डर उत डर भूल गरी संग मोहन नाचोंगी ताथेइया॥
व्रजमोहन पिय सौंह तिहारी भीज गई मेरी पाँवरिया।
"आनँद-घन" को कैसे कै भीजै ओढ़ रहे कारी कामरिया॥२११॥

आसावरी

गूजरि जोवनमाती हो हो हो कहि बोलै।
नैनन सैनन बैनन गारी बतियाँ गढ़ गढ़ छोलै॥
बद लगवार लाल गिरधर के गोहन लागी डोलै।
गँठजोरे की गाँठ धीरज प्रभु भक्तुआ होय सो खोलै॥२१२॥

पूर्वी

एरी तेरी अँगिया पर डारी किन मूठी।
दरक गई कुच कोर दिखावत ऐसी अनूप अनूठी ॥ २१३ ॥

कान्हड़ो (तिताला)

अलक लड़ी राजत अलबेली।
भुज जोरै पिय छैल छबीलो रसक रसीलो लाड़ गहेली।
हेरि फेरि कर-कमल फिरावत गावत सहचरि संग नवेली ॥
(जै श्री) "रूपलाल" हित ललित त्रिभंगी प्रगट प्रकासत आनँद-बेली २१४

खंमाच ख्याल (तिताला)

राज बोलो वो म्हासूँ बोलबो।
म्हे तो थाँरी दासी साहिबा दिलदी बाताँ म्हासूँ खोलबो ॥२१५॥

सोरठ ख्याल (धीमा तिताला)

प्यारी लागै थाँरी आन सिपाहीडा थाँरो म्हानै चाव मिलन रो।
मिलन करो कब वो दिन होसी अपनो आजिज जान ॥२१६॥

हमीर (लरी)

ऐरी माई रँगीले लाल ने मेरो मन हर लीनो रंग सो रंग मिलाया।
रंग रँगीली सेज बनाई रंग रँगीलो पिय पाया ॥२१७॥

ईमन (तिताला)

नेक मोरी मानो जू हम जो कहत तुमसूँ ये बतिया।
तिहारे ख्याल में रहत अदा रंग आश्रो लगाश्रो उनके छतिया ॥२१८॥

ईमन

अँधियारी रात री पिया पिया बोलही पपीहरा।
कैसे रहूँ बिन पी रहिलो न जाय एक छिनवा ॥
घन गरजै और चतुरमास इन अँखियन निस-दिन झर लाय।
याहु रे सँदेसवा जान सुजान पीयरवा पै कोउ लै जाय ॥२१९॥

पूर्वी (इकताला)

ब्रज के निवासी हो रे कान्हा।
चितवन में तुम मन हर लीनो बिन दामों भई दासी ॥२२०॥

ईमन (तिताला)

दिल ने तुझे क्या किया सारी अपने हाथों खोई।
नाहक फिकर को किए अब क्या होवे
इस दुनिया के बिच अपना नहीं कोई ॥ २२१ ॥

ईमन (चौताल)

होनी थी जो हो चुकी अब क्या होवे।
अब बोले बिच चुपही खासा नाहक अपना क्यों आपा खोवे ॥२२२॥

आसावरी ख्याल (तिताला)

म्हांरी सुधि लीजोजी राजाजी म्हानै चाहोछो तो।
म्हे तो थांरी दासी साहिबा जनम जनम की दरस मया करि दीजोजी २२३

बिलावल सरपरदा ख्याल (जल्द तिताला)

कर सुकर बंगरी मोरी मुरकानी मोरी मा।
ऐसो री लँगरवा ढीठ महरबान दसन दमक अर
दामिनी सी कौंधे गुन रस सो विकानी मोरी मा॥२२४॥

केदारा ख्याल (जल्द तिताला)

अबहुँ न्यारो नहि होव सुंदर-स्याम लगी रहौं तिहारे चरननि।
निस-दिन सुमरन ध्यान रहत मोहि तिहारो दरस मेरे नैननि ॥२२५॥

ईमन (तिताला)

हाँ वे ढोरी लगाय कित जाँदा ।
हाँ वे ढोरी लगाय कित जाँदा ॥
दुर दुर जाँदा चारी नीडै नही आँवदा ।
मुड मुड मुड मुसकावदाँ ॥ २२६ ॥

धनाश्री ख्याल (जल्द तिताला)

मोही वैंडी यादि लगी हो कृष्न
देंदा दीदार कीनी निहाल ।
हाँ जमुना-जल भरन जात ही भनक परी
स्रवनन मैं वेन बजावै गावै ख्याल ॥ २२७ ॥

खंमाच ख्याल (जल्द तिताला)

राज रे म्हाँसूँ बोलो क्यों नें रे ।
क्यों तो तो चूक पड़ी म्हाँसूँ बोलो नें
गुमानीडा हँसि करि घूँघट खोलो रे ॥ २२८ ॥

केदारा ख्याल (जल्द तिताला)

पीयरवा हो बार बार डारी बार बार डारी हैं तो न्यारो ना ।
रंग-रस बाता मोसों करत हो आप ही प्रीति बिसारी ॥२२६॥

सोरठ

मृगा-नैणी मारुणीरा कंत कठे रुति माणी हो राजि ।
म्हे कभी थाँरी बाटरी जेवाँ लटकत चाल पिछाँणी ॥२३०॥

पूर्वी

पिय मेरो कह्यौ नहि मानै बदी या तेरी ।
जान सुजान सबै बिधि सुंदर जानी बूझी ऐसी ठान ॥ २३१ ॥

हमीर

तिहारी कौन टेव परी बरज्यो नहिं मानही ।
सुघर चतुर मोरे बलमा गहि बहियाँ भरी जु ॥
नैक न करत कुल की कानिहुँ तिहारे जी ।
ये ´डरी बरन ननदिया वरी जु ॥ २३२ ॥

विहाग (रास)

रास रच्यो नंदलाला, लीने संग सकल व्रज-बाला ।
अद्भुत मंडल कीने, अति कल गान सरस स्वर लीने ॥
लीने सरस स्वर राग-रंजित बीच मुरली-धुनि कढ़ी ।
होन लाग्यो नृत्य बहुविध नूपुरन-धुनि नभ चढ़ी ॥
हलत कुंडल खुलत वेनी भूलत मोतिन-माला ।
धरत पग डग-मग बिबस रस रास रच्यौ नंदलाला ॥
चित हाव भावन लूटै, अभिनपट्ट मौहन सर छूटै ।
ललित ग्रीव भुज मेलत, कबहुँक अंकमाल भर भेलत ॥
भेलत जु भरि भरि अंक निसंकन मगन प्रेमानंद मैं ।
चारु चुंबन अरु उगारह धरत त्रिय सुख-चंद मैं ॥
चहुत अंचल प्रगट कुच बर ग्रंथि कटिपट छूटै ।
बढ़्यौ रंग सु अंग अंग चित हाव-भावन लूटै ॥
पगन गति कौतुक मचै, कटि मुरि मुरि मुरि मृदु यौं लचै ।
सिथिल किंकिणी सोहै ....॥
तापर मुकुट-लटकनि मटकि पग गति धरन की ।
भँवर भरहरै चहुँ दिसि पीत-पट फरहरन की ॥
गिरयो लखि मनमथ मुरछि लै भजो रति मुख मधु अचै ।
नचत मनमोहन त्रिभंगी पगन-गति कौतुक मचै ॥
वृंदावन सोभा बढ़यो, तापर व्योम बिमानन सौं मढ़यो ।
दुंदुभी देव बजावैं, फूलन अँजुली बहु बरखावैं ॥

बरखैं जु फूलनि-अंजुली बहु अमरगन कौतुक पगे।
विव्रस अंकनि निज बधू हिय निरखि मनमथ-सर लगे॥
ह्वै गए थिरचर सुचरथिर सरद पूरन ससि चढ़्यौ।
"दास नागर" रास औसर वृंदाबन सोभा बढ़्यौ॥ २३३॥

परज रास (फिरता तिवाला)

मोहन मदन त्रिभंगी, मोहे मन मुनरंगी।
मोहे मन सुगुन प्रगट परमानंद गुन गंभीर गोपाला।
सीस क्रीट स्रवनन मैं कुंडल उर मंडित बनमाला॥
पीतांबर तन धात विचित्र करि कंकनी कटि चंगी।
नख मन चरन तरन सरसीरुव मोहन मदन त्रिभंगी॥
मोहन बेन बजावै, इहै रव नार बुलावै।
आइ ब्रजनारि सुनत वंसी-रव गृहपन वंद विसारे।
दरसन मदन-गोपाल मनोहर मनसिज ताप निवारे॥
हरखत बदन बंक अवलोकित सरस मधुर धुनि गावै।
मधमैं स्याम समान अधर धर मोहन बेन बजावै॥
रास रच्यौ बन माहीं, विमल कलपतर छाहीं।
विमल कलपतर तीर सु पेसल सरद-रैनि वर-चंदा।
सीतल-मंद-सुगंध पैान बहै जहँ खेलत नँद-नंदा॥
अद्भुत ताल मृदंग म्होवर किंकिनि सबद कराहीं।
जमुना-पुलिन रसिक रस-सागर रास रच्यौ बन माहीं॥
देखत मधुकर केली, मोहे खग मृग बेली।
मोहे मृग-दहन सहित सर सुंदर प्रेम-मगन पट छूटैं।
उड़गन चकित थकित ससि-मंडल कोटि मदन मन लूटैं॥
अधर-पान परिरंभन अति रस आनँद-मगन सहेली।
"हित हरिवंस" रसिक सुख पावत देखत मधुकर केली॥२३४॥

फुटकर पद

प्यारे लालन ऐसै न खेलियै होरी।
छल-बल करि जैसै हू तैसै मुख लपटाई लै रोरी॥
कौन टेव यहै सबकै देखत मेरी तुम बहियाँ मरोरी।
नित-प्रति आनि अरत है लंगर हो करि पाई कहा भोरी॥
सुनि पावैंगे गुरजन मेरे उघरैगी दिन दिन की चोरी।
कृष्नजीवनि "लछीराम" के प्रभु प्यारे बहुरि न आऊँ इहि ओरी २३५

कैसै खेलियै होरी साँवरे सो।
लै लै अबीर-गुलाल मुठिन भरि मुख मीड़त बरजोरी॥
चोवा चंदन और अरगजा केसरि भरी है कमोरी।
ऐसै लँगर बरज्यौ नहिं मानै गोरी रंग मैं बोरी॥
अपने मन मैं चतुर कहावत औरन सौं कहै भोरी।
साँवरी सखी अंजन दै छाडै जो कहै कुँवर किसोरी॥२३६॥

मैं तो पाप जु अति ही कीने।
गिनत न आवै संख्या इनकी सब कर्मन सौं हौं मैं हीने॥
अब तो नाहिं आसरो मोकौ कृपा तुम्हारी सो ही जीने।
अब तो यहै करो तुम "व्रजनिधि" मोकौ स्याम रंग मैं भीने॥२३७॥

तुम बिन नाहिं ठिकानौ मोकौ।
भवसागर मैं तुम ही सब हो मो तारत जोर नहिं तोकौ॥
अब तो कष्ट बहुत मैं पायौं तातैं सरन तिहारे आयौं।
"व्रजनिधि" तुम्हरी ओर निहारौ मेरे कष्ट सबै झट टारौ॥२३८॥

मन तो नाहीं धीर धरै।
बिपति-बिदारन गिरधर तुम हो तुमही सौं सब काज सरै॥
अब सुधि वेगि लेहु तुम मेरी तुम बिन सुख को कौन करै।
"व्रजनिधि" तुम सब आनँद करिहो, सब दुख मेरे झटहि हरै॥२३९॥

मेरे पापन कौ है नाहीं श्रोर।
जौ मेरे कहुं पापनि गिनिहौ तौ मोकौ कहुँ नाहिन ठौर॥
आछे कर्म नाहिं हैं मोमैं खोटे कर्म भरे हैं कोर।
"ब्रजनिधि" पीर हरोगे मेरी तुमही सौं है जोर॥२४०॥

अब झट गोबिंद करौ सहाय।
आग्या सो मैं काम कियो है काज करो अब दुखहि बिलाय॥
गरीबनवाज कहाइ बिरद अब गज की सहाय करी ज्यों जाय।
मैं दुख पाऊँ अब हो "ब्रजनिधि" तेरे चरन सरन मैं आय॥२४१॥

चित तो अति ही कुटिल जु पापी।
गोबिंद सो सिर स्वामी पायो तिसना नाहिन धापी॥
मद-मगरूरी मैं अति मातो मन को नाहिन साफी।
"ब्रजनिधि" चरन तिहारे चित दे येही सबमैं काफी॥२४२॥

मोसो रे अपनी सी जो करोगे।
मेरी कानि नहीं जावोगे दीन-उधारनि चित्त धरोगे॥
अधम-उधारनि बिरद पायके अधमन के सब दुःख हरोगे।
तुम बिन मोको नाहिं ठिकानो "ब्रजनिधि" सबही काज सरोगे २४३

मोहि हीन जान अपनायौ।
अपनी ओर निहारि साँवरे करो जु अपने मन को भायौ॥
पाइ आग्या काज कियो मैं ताही पर चित धीरज लायौ।
भाई आग्या साँच करो अब मेरे "ब्रजनिधि" चरनन कौ सायौ॥२४४॥

नैनाँ मूरनि मानि रही समझाय।
जिहि जिहि छैल चिकनिया वहि दुरि जाय॥ १॥'

इन नैननि कै आगै भईनकवानि।
मोहन-मुख निरखन की परि गई बानि ॥ २ ॥
चखनि चवायनि कीयो कुटंब सो बरु।
नर नारी मुख जोरै घर घर घरु ॥ ३ ॥
रूप-सुधा-रस पीए भए महमंत।
"कल्यान" के प्रभू बसि कीन कमला-कंत ॥ ४ ॥२४५॥

इति श्रीमन्महाराजाधिराज महाराज राजेंद्र श्री
सवाई प्रतापसिंहदेव-विरचितं ब्रजनिधि-
पद-संग्रह संपूर्णम् शुभम्

झिंझौटी

बाजत रंग बधाई भान घर, बाजत रंग बधाई।
पिय-मन-हरनी चंपक-बरनी कीरति कन्या जाई॥
आनँद भयो सकल ब्रज-मंडल सो सुख कह्यो न जाई।
किसोरी बदन-चंद-छबि निरखत भई बंसी मनभाई॥ १॥

बधाई हो बाजत श्री वृषभान कै।
कुँवरि भई कीरति रानी के पाई निधि बहु दान कै॥
नौबत बाजै घन ज्यों गाजै सुख भयो सकल सुजान कै।
अली किसोरी लखि सुख बाढ़्यो बंसी अलि प्रिय प्रान कै॥ २॥

परज

म्हारी हेली हे तीजदिहा डैर लियाँ बयो
कुँवरि लड़ेतीयाँ त्योहार॥ टेक॥
हेली हे कुंज-सदन गह-मह मची हो रह्या मंगलचार।
कालिंदी रे तीराँ चालो रूडा सजि सिंगार॥
हेली हे कल्पवृच्छरी डालरै झूलो रच्यो है सँवार।
हेली हे कंचन मणि नग मोतियाँ लड़ लूँबा अँणयार॥
रायजादी वृषभान री झूले रूप उदार।
झुलावे रसियो छैल पिय "ब्रजनिधि" रंग रिझवार॥ ३॥

हिंडोरे झूलन आई छबि-निधि कुँवरि किसोरी।
जमुना-तीर भीर जुवतिन की ललितादिक चहुँ ओरी।
ले मचकी निरखत अँगछैयाँ दमकत बहियाँ गोरी॥
झोंटा मिस हिय हुलसत "ब्रजनिधि" पद परसत बरजोरी॥ ४॥

हिंडोरे झूलै लाड़िली रसियो कंत झुलावै।
निरखि निरखि नख-सिख सुंदरता हरखि हरखि गुन गावै॥
सौंधे भीनै री अंग परसत मन माहीं ललचावै।
रसिया चतुर-सिरोमनि "ब्रजनिधि" गाइ मलार रिझावै॥ ५॥

सोरठ

आज हिंडोरे हेली रंग बरसै।
झूलैं श्री वृषभान-किसोरी सुंदरता सरसै॥
धन्य भाग अनुराग पीय को छ्रै सुहाग दरसै।
झोंटा के मिस "ब्रजनिधि" नेही[1] प्रिया-अंग परसै॥ ६॥

आज की झूलन पर हौं वारी।
झूलत चंपक-बरनी राधा झुलवत स्याम बिहारी॥
मुरज बजावति सखी बिसाखा गावति अलि ललिता री।
यह सुख निरखि महल कौ "ब्रजनिधि" अँखिया टरत न टारी॥७॥

......

साजि सिंगार गुन-आगरी नागरी
मिलि सबहि कुँवरि सँग तीज खेलन चलीं।
दामिनी सी लसत हँसत गज-गामिनी
जूथ जूथनि मनौ कनक-पंकज-कली॥
अलिन के साथ गहे हाथ मधि लाड़िलो
चलत सोभित भई भानपुर की गली।
सुरँग तन चीर वर उरत हारावली
विविध भूषन सजे भाँति भाँतिन भली॥
मनोहर तीर मधि बाग झूला रचे
तहाँ झूलति ललित भानु नृप की लली।

(१) नेही = प्रेमी।

मधुर घनघोर पिक मोर चातक सोर
करत अलि गान बहु तान रस की रली ॥
हरित बनभूमि रहे झूमि झूमि लतन पर
जहाँ खेलति प्रिया निज बिहार-स्थली।
तहाँ देखत दूरि दूरि परम आनंद भरे
नाह "व्रजनिधि" सकल चाह मन की फली ॥ ८ ॥

......

झूलन चालो हे।
सहेल्यॉं मिलि भानोसर री तीर लड़ेती हींडो घाल्यो हे ॥
सारद सी रति सी रंभा सी सबनन गोरी हे।
ज्यॉंरे बिच लसे मधि नाइक कुँवर किसोरी हे ॥
स्यामाजी रो बाग सुहायो लागे सब सुख सरसे हे।
सोहै घणा चंगी बसन सुरंगी छवि घन बरसे हे ॥
चातक मोर रसभरया बोलें देखण चालो हे।
स्याम-घटा जल भरि भरि उमड़ी घुमड़ी सोभा हे ॥
गावें गीत मनोहर लूहर सब मिलि झूलें हे।
"व्रजनिधि" प्यारो दूरि छवि देखै हिए अति फूले हे ॥ ६ ॥

सोरठ

हेला रे गोरी सी किसोरी म्हारो हियड़ो हरयो।
बड़भागाँ देखी व्रज री निधि झूलणि मैं सुधि-बुधि बिसरयो ॥
रूड़ौ अंग लसै सिर जूड़ौ चूड़ौ रंग अनूप भरयो।
अणियाँला नैना उर बेध्यो झाँकणि मैं कामणि सो करयो ॥१०॥

रँग्यो मनभावती के रंग।
नयन भए मेरे रूप-लालची नेक न छाँड़त संग ॥
बिन देखे छिनहू न सुहावै निरखि भई मति पंग।
बसी रहै उर नित प्यारी की "व्रजनिधि" छवि अँग अंग ॥११॥

कवित्त

करुना-निधान कान्ह मेरे प्रभु स्याम-घन,
रावरे भरोसे मोहिं डर ना खरौ सौ है।
घर जायो दास, आस साँवरे गुविंदजू की,
प्रभु की प्रसादी नित्य पावत परोसौ है॥
संकट-हरन मुद-मंगल-करन साधौ,
बिरुद-बँधावन सहाय करी सो सौ है।
करिहैं सहाय करि आए हैं सदा ही मेरे,
अब सब भाँति "ब्रजनिधि" को भरोसौ है॥ १२॥

दीनबंधु दीनानाथ हाथ है तिहारे सब,
महा-रन-धीर यह रावरो ही राज है।
महा-सोच-सागर अथाह मैं परयो है नर,
पावत न पार तन जाजरी[1] जहाज है॥
स्वारथ के साथी सब हाथी ज्यों बिसारि गए,
ऐसो ही मिल्यो है आय सकल समाज है।
हेरि सब ओर एक सरन गही है तेरी,
मेरी सब भाँति "ब्रजनिधि" ही को लाज है॥ १३॥

सवैया

मान करौ हमसों मन मैं तौ
हम परि पाइ हँसाइ मनाइबौ।
देखौ न देखौ दया करि प्यारे
हमैं निज नयन सुखै सरसाइबौ॥

---

(१) जाजरी = जर्जर।

जौ अनबोले रहौ हमैं बोलिबौ
　　चाह करौ न करौ हम चाहिबौ।
मानौ न मानौ हमैं यह नेम नयो
　　नित नेह को नातो निबाहिबौ॥ १४॥

कोउ ध्यान मैं ब्रह्म लखौ सु लखौ
　　भय मानि महा-भव-सिंधु गँभीर कौ।
मोहिं न आवत नाक नचाइबौ
　　रोकिबौ छोड़िबौ प्रान-समीर कौ॥
कानन मैं मकराकृत कुंडल
　　खेलनहार कलिंद के तीर कौ।
जानत हौं हिय माँझ वहै
　　नँदगाँव कौ छोहरा नंद अहीर कौ॥ १५॥

छप्पै

श्री जयसिंह महीप करैं सवही मनभाए।
अपनाए ब्रजनाथ सुजस चहुँ ओर बढ़ाए॥
तिहि तें सत्त-गुरु कृपा आप मोपै सब कीनी।
प्रतिपालत सब भाँति उच्च बहु पदवी दीनी॥
यह विमल बंस रघुनाथ कौ पालत सोइ विरदावली।
श्री माधवेस-सुत भक्ति-निधि नृप प्रताप विक्रम बली॥१६॥

कवित्त

अंबरीष नृप जैसे नवधा ही भक्ति भावैं,
　　नेह के निवाह की लगनि जिय नीकी है।
नृप जयसाह जू की भावना सुफल करी,
　　जाते श्री गुविंद जू की जीवनी सु जी की है॥

हरि-गुरु-सेवा मैं सुजान प्रथीराज जू यों,
सबही की पोख बानी सुनत अमी की है।
सब विधि ज्ञान-सनमान मैं निपुन ऐसे,
कुल मैं प्रताप जू को लाज सब ही की है॥ १७॥

नैनन को लाभ नीके पायो है निरखि छवि,
धन्य स्यामा-स्याम मेरौ कियौ मनभायौ है।
प्रजा के जिवावन कौ नेह-सरसावन कौ,
सब-मन-भावन कौ दरसन पायौ है॥
सदन सदन मैं उछाह की बधाई बाजै,
घर घर नगर माँहि सुख सरसायौ है।
कहै "हितकारी" कृपा कीनी है बिहारी यह,
मंगल कौ दिवस भले ही आज आयौ है॥ १८॥

सवैया

दीनदयाल सुनौ चित दै बिनती सुभचिंतक है जु तिहारौ।
जाहि कृपा करिकै अपनावत ताहि कहूँ पलहू न बिसारौ॥
सोच महा इक ग्राह ग्रस्यौ मनही गजराज लहै दुख भारौ।
हाथी कौ हाथ गह्यौ जिहिँ हाथ, गहौ 'ब्रज की निधि" हाथ हमारौ॥१९॥

कवित्त

बालक कुलंग के सुरति हिते बड़े होत,
वह देस देसन चुगनि जात चारौ है।
कालि वीछू अंडा रेनुका मैं नीर-तार धरें
वह जल माहिं तिन्हैं सुरति सहारौ है॥
सुरभी हू बन मैं चरन परवस जात,
सुरति यहै ही मेरौ खरिक लवारौ है।
कृपा की सुदृष्टि त्योंही छिन छिन सुधि लेवौ,
रावरी सुरति ही तैं पौरुख हमारौ है॥ २०॥

सवैया

मीन की जीवनि ज्यौं जल है,
वह नीर सों साँचौ पतिव्रत पारै।
दीन पपैया के ज्यौं घन ही गति,
स्वाति ही को निसि-द्यौस सम्हारै॥
भक्तन के भगवंत हितू जिमि,
गोबिंदजू को छिनौ न बिसारै।
त्योंही हमैं गति एक यही,
"ब्रज की निधि" जीवन-प्रान हमारै॥ २१॥

गजल

जहाँ कोई दर्द न बूझै तहाँ फर्याद क्या कीजे।
रहा लग जिसके दामन से तिसे कहो याद क्या कीजे॥
जु महरम दिल का हो करके रुखाई दे तो क्या कीजे।
वह "ब्रज की निधि" कहा करके न ब्रज-रज दे तो क्या कीजे॥२२॥

सवैया

सुंदर केलि लड़ैती किसोर की
नेह मेरी सुनि प्रेम बढ़ाइहौं।
कृष्न-कथा मन की हरनी कहै
सो सुनिकै स्रवनामृत प्याइहौं॥
ह्वैकै अनन्य गह्यौ सरनौ चित,
या घर को नित दास कहाइहौं।
पावन सुंदर चारु उदार,
किसोरी अली हू सदा गुन गाइहौं॥ २३॥

कवित्त

साँझ फूल बीनन कौ चली है कुँवरि राधे,
साथ लिए साथनि सहेलिन के संगमैं।
रूप की घटा सी सब वीनैं फूल वेलिन के,
छबि की तरंग बहु बाढ़ी अंग अंग मैं॥
"ब्रजनिधि" प्यारे तहाँ आय अवलोकि सोभा,
करिकै सखी को रूप मिले स्यामा संग मैं।
जाय बरसाने मिलि कुँवरि सो साँझि पूजि,
पूजे मन-काम निसि रमे रस-रंग मैं॥ २४॥

सवैया

भानु-कुमारी सखीन कौ संग लै,
साँझि को बीनन फूल चली।
नव चंपक जाय जुही रस मालती,
बीनत फूल नबीन कली॥
छबि-माधुरी चारु लली की निहारि,
भरो है लला तहाँ स्याम अली।
मिलि साँझि को पूजि सबै निसि मैं
"ब्रज की निधि" की मन-चाह फली॥ २५॥

कवित्त

कीरति-कुमारि तुम बड़ी रिझवारि निज,
बिरद बिचारि बिरदावली बढ़ाइहौ।
परम दयाल सरनागत की पाल तुम,
होय कै कृपाल जन-पीर कब पाइहौ॥
रावरो उपास बिसवास आस लाड़लो की,
और को न जानौं यह नीके चित लाइहौ।

दीजै बनबास जिय बाढ़ै ज्यौं हुलास अब,
कुँवरि किसोरी मोहि कब अपनाइहै ॥ २६ ॥

रेखता

प्यारे तुम्हारी चाल बड़ी अजब अनूठी,
हमसे बनाओ बातें बस झूँठी झूँठी।
चाकरी तुम्हारी यह तुम्हैं ही बनै कहवे,
हैं कुछ न चलती हैं चाल अपूठी॥
हरचंद बात बनी कैसे मैं एक न मानूँ,
निज दस्त में सँभालो, यह किसकी अँगूठी।
इस शब कहाँ रहे थे सो साँच बताओ,
लूटी थी खूबी किसकी पिया भर भर मूठा॥
सुनकर दिया जवाब बिहँसि "ब्रजनिधि" प्यारे,
मुझको तो प्यारी एक तू ही क्यों अब रूठी॥ २७॥

कवित्त

सोभित उदार ब्रजनाथ तहँ सुख-कंद,
सदा चलि आई कुल-कीरति अनूप हैं।
राधा-पद-अंबुज को सरन अनूप नित,
नैननि मैं निस-दिन बसैं ब्रज-भूप हैं॥
बरनत बानी मानौं करत अमी की वृष्टि,
परम धरम-मय जंत्रिन के जूप हैं।
भव-निधि-तारन कौ भट्ट जगन्नाथ भए,
इहि कलि माहिं सुक मुनि के स्वरूप हैं॥ २८॥

सवैया

आस यहै जिय लागि रही,
मोहि दासी करौ निज कुंज-थली की।
रैनि-दिना बसिकै बन-राज मैं,
सेवा करौं वृषभानु-लली की॥
साथनि ह्वै ललिता गहै हाथनि,
केलि लखौं कब रंग रली की।
रावरो रूप कबै दरसाइहौ,
जीवनि-मूरि किसोरी अली की॥ २९॥

कवित्त

बिछुरे जबै है तब मिलन-उमाहो रह्यो,
मिले तबै बानी को जु अमी-रस पीजिए।
प्रेम भरे गावत गुपाल को सुजस जबै,
तब मन मोद भरि सुनि सुनि जीजिए॥
पावन ही होत गुन बरनौं तिहारे जब,
रसना सों प्रभु को पुनीत नाम लीजिए।
अँखियाँ हमारिन के यहै लोभ लाग्यो रहै,
रावरो बदन-ंद देखबो ही कीजिए॥ ३०॥

सवैया सिंहावलोकन

होरी सबै यक ठौरी भई रस-फाग की लाग लगी नव गोरी।
गोरी गुलाल लिए भरि गोद, धरी भरि केसरि रंग कमोरी॥
मोरी मुरै नहीं दौरी फिरै गुनवारे गुपाल के रंग मैं बोरी।
बोरी सी ह्वैके लगीं रस ढोरी मची "ब्रज की निधि" सों रस होरी॥३१॥

कवित्त

तप के तपे को फल हरि तुम राज देत,
दान के दिए तें देत संपति अपार हौ।
जाप के करे तें सुख स्वर्ग के अनेक देत,
पाप के किए तें देत बिबिध बिकार हौ॥
जोग के किए तें मन-इन्द्रिन की बिजय देत,
ज्ञान के किए तें देत मोच्छ निरधार हौ।
ऐसे निज करनी सों जु हौं ही तरि जाऊँगो,
(तौ) हौं ही करतार तुम नाहीं करतार हौ॥ ३२॥

सवैया

बाँचिए सेवक की अर्जी अब कीजे कृपा मरजी लखि पी की।
जानत हौ सब के मन की सुनी बानि यहै वृषभान-लली की॥
आस यहै बसि साथ सखीन के स्वामिनि-सेवा करौं विधि नीकी।
हे करुना-निधि देखि दसा पुरवौ अभिलाख किसोरी अली की॥३३॥

दोहा

कुँवरि किसोरी अली की, पुरवौ यह अभिलाख।
बास देहु बनराज में, लखि बंसी की साख॥ ३४॥

कवित्त

परम विचच्छन दयाल है ललित अली,
निकट निवासिनी हौ गौर-स्याम-जोरी सों।
कृपा की निधान जन-मन-प्रिय वंसी अलि,
मेरी दीन दसा गुजरैहौ कब गोरी सों॥

सोच न खरो सो मोहि रावरो भरोसो उठि,
मेरी हू विनय सुनि लेहु दोउ ओरी सों।
जुगल-स्वरूप देखिवे को अकुलात नैन,
कब धौं मिलैहौ मोहि कुँवरि किसोरी सों ॥ ३५ ॥

सीतल सुगंध मंद मधुर समीर बहै,
कोकिल अलापैं अलि करत गुँजार कौ।
तरनि-तनूजा-तीर फूल्यौ बनराज तहाँ,
खड़े स्यामा-स्याम गहे कदम की डार कौ ॥
रंग भरी रागनि अलापैं ललितादि अली,
जानति सबै ही रुचि प्रीतम के प्यार कौ।
जानि अभिलाख हिये भाँति भाँति साज लिए,
आयो रितुराज "व्रजनिधि" के विहार कौ ॥ ३६ ॥

सवैया

जिहि कायिक वाचिक मानस तें,
गह्यो कीरति-नंदिनि कौ सरनौ।
रस-लीला विहार उदार अपार,
तिन्हैं नित नेह भरे बरनौ।
नव गोरी अनूपम अद्भुत जोरी,
किसोरी को ध्यान सदा धरनौ ॥
नित आस उपास यहै जिनके,
तिनकौ अब और कहा करनौ ॥ ३७ ॥

गाइहौं प्यारी को नित्य विहार,
विहारी को भावुक दास कहाइहौं।

हाय हौं जानि अजान भयौ,
अब तो मनमोहन सों चित लाइहौं ॥
लाइहौं अच्छर चोज भरे,
गुन-गावन को लहि नीको उपाइ हौं ।
पाइहौं या तन कौ फल मैं,
"ब्रज की निधि" स्याम सों नेह लगाइहौं ॥३८॥

छप्पै

सुंदर बदन गुविंदचंद को निरखत नीकौ ।
दिन दिन दूनो नेम प्रेम बढ़वार सु जी कौ ॥
रसना सो रसमयी जुगल-जस बरनत बानी ।
विमल भक्ति बढ़वार कौन पै जात बखानी ॥
हिय लगन लगाई साँवरे ललित त्रिभंगी लाल सों ।
गुननिधि प्रताप महिपाल की मैं रीझयौ इहि चाल सों ॥३९॥

कवित्त

आनँद सुमंगल हरख नित होउ नए,
सुभ हरि-भक्ति कौ सुपंथ गहिबौ करौ ।
रतन-भँडार सुख-संपति करी सु वाजि,
ऐसे सुख-साज तैं अनेक लहिबौ करौ ॥
वेद अरु सकल पुराननि को सार ऐसौ,
छत्रिन को धर्म तासौं नेह नहिबौ करौ ।
कहै सुभचिंतक यों नृपति प्रताप जू कौं,
राधा-ब्रजनायक सहाय रहिबौ करौ ॥ ४० ॥

सवैया

कुंज के आँगनि मैं बिहरैं दोउ,
प्रीतम-प्यारी दिए भुज ग्रीवनि।
नृत्य करैं कवौ भूँगति लेत,
बिलोकैं सखी सबही छबि सी बनि॥
गान करैं मुरली-धुनि मैं,
मधुरे सुर प्रेम-पियूष की पीवनि।
लाल के संग मिली रस-रंग,
त्रिभंग किसोरी अलीन की जीवनि॥ ४१॥

पद

जिनके श्री गोविंद सहाई, तिनके चिंता करै बलाई।
मन-बांछित सब होहिं मनोरथ सुख-संपति सरसाई॥
ब्यापत नाहिं ताप विहि तीनौं कीरति बढ़त सवाई।
नष्ट होहिं सत्रू सब तिनके उर आनंद-बधाई॥
भूमि-भँडार-बिभव-कंचन-मनि-रिद्धि-सिद्धि-समुदाई।
जोइ जोइ चहैं लहैं सोइ सोई त्रिभुवन बिदित बड़ाई॥
विमल भक्ति अनुराग निरंतर अधिक अधिक अधिकाई।
करुना-सिंधु कृपाल करहिं नित सब "ब्रजनिधि" मनभाई॥४२॥

कवित्त

हीरनि को कुंज सुख-पुंज सो कहो न परै,
मोतिन की झालरैं चँदोवा छवि बाढ़ा हैं।
भाँति भाँति राजैं जहाँ सबै फल सौंज लिए,
ललितादि मानौं जहाँ चित्र लिखि काढ़ी हैं॥

विविध फुहारन की निरखैं बहार दोऊ,
"ब्रजनिधि" भावती सों लगी प्रीति गाढ़ी है।
बाग सुख साली ताहि सींचैं बनमाली तामैं,
कान्ह सों किसोरी गरबाहीं दिए ठाढ़ी है॥ ४३॥

सवैया

फूलीं सबै बन-बेली लतानि पै भावते भौंर गुंजारनि की।
जल-जंत्र[1] अनेक छुटैं तिन माहिं मनोहरता जल-धारनि की॥
हरखैं बरखा छवि की बरखैं रितुराज के साज निहारनि की।
तब की छवि सो पै कही न परै "ब्रज की निधि" स्याम विहारनि की ४४

दोहा

श्री बन मैं विहरैं दोऊ, राधा-नंदकुमार।
छवि पर कीनै वारनै, कोटि कोटि रति-मार॥
कुँवरि किसोरी नवल पिय, करत परस्पर हेत।
तनिक मधुर मुसकाइकै, "ब्रजनिधि" मन हरि लेत॥४५॥

कवित्त

नवल किसोरी एक गौने की लिवाई आई,
ताके मनमोहन यों गोहन लग्यौ फिरै।
जाकी रखवारी को जु सासु संग लागी डोलै,
ननद निगोड़ी सो चवाव करिवौ करै॥
एतै मैं अचानक ही फागुन को मास आयो,
वह प्रानप्यारे सों मिलन अरिवौ करै।
"ब्रजनिधि" पिय सों अचानक गली में मिली,
भई मनभाई अंकमाल भरिवौ करै॥ ४६॥

(१) जल-जंत्र = फव्वारे।

दोहा

सासु-ननद-संक न करी, भई स्याम-रस-लीन।
"ब्रजनिधि" पिय पर वारने, कोटि पतिव्रत कीन ॥ ४७ ॥
लोक-लाज संका गई, बढ़ी नेह बढ़वार।
जाही दिन लाग्यो सखी, "ब्रजनिधि" पिय सों प्यार ॥ ४८ ॥

पद

आजु मैं अँखियन कौ फल पायौ।
सुंदर स्याम सुजान प्रान-पिय मो हि लखि सनमुख आयौ ॥
सब सखियन को देखत सजनी मो तन मृदु मुसकायौ।
मेरे हिय को हेत जानिकै "ब्रजनिधि" दरस दिखायौ ॥४९॥

कवित्त

पायौ बड़े भागनि सों आसरौ किसोरी जू कौ,
और निरबाहि नीके ताहि गहे गहि रे।
नैननि तैं निरखि लड़ैती कौ बदन-चंद,
ताही को चकोर ह्वैके रूप-सुधा लहि रे ॥
स्वामिनी की कृपा तें अधीन ह्वैहैं "ब्रजनिधि",
तातें रसना सों नित्य स्यामा-नाम कहि रे।
मन मेरे मीत जो तू मेरो कह्यो मानै तौ तो,
राधा-पद-कंज को भ्रमर ह्वैके रहि रे ॥ ५० ॥

प्रगट पुरान निगमागम को सार यहै,
परम रहस्य रस उज्झल[1] को ग्रंथा है।
गुरु-उपदेस विन जानी नाहिं जात बात,
आवत न मन मैं कठिन अस संथा है ॥

(१) उज्झल = उज्ज्वल।

देह नेह-भार भरी चल न सकत तहाँ,
कैसे निबहत सेली सींगी गल्ले कंथा है।
तुम जु कहत ऊधो "ब्रजनिधि" कही जो जोग,
जोगहु तें बिकट बियोग-प्रेम-पंथा है॥ ५१॥

दोहा

बड़े प्रीति जासों करैं, ताहि करैं प्रतिपाल।
"ब्रजनिधि" अपनी ओर लखि, कीजे मोहिं निहाल॥ ५२॥

भैरव

भोर ही उठि सुमरिए वृषभान की किसोरी।
बाधा-हर राधा सुख-मंगल-निधि गोरी॥
बैठी उठि सुभग सेज नागरि अलबेली।
दंपति-सुख-छबि निहारि हरखहिं सहेली॥
रतन-जटित मुकर[1] सुकर ललिता अलि लीए।
जुगल-बदन निरखि निरखि हरखत रस पीए॥
लेके कर जंत्र-तार सरस अलि बिसाखा।
गावति गुन रुचि बिचारि पुरवति अभिलाखा॥
महल टहल चित्रा कर लिए पीकदानी।
बीरी कर देत हेत दंपति रुचि जानी॥
भाँति भाँति सौंज लिए सबही अलि ठाढ़ी।
उरझनि सुरझनि निहारि अद्भुत छबि बाढ़ी॥
बन-बिहार करन चले दोए गरबाहीं।
यह स्वरूप सदा बसौ "ब्रजनिधि" हिय माहीं॥ ५३॥

---

(१) मुकर = मुकुर, दर्पण, आईना।

पद

गोकुल की गली सुहावनी।
कंचन-थार सजे कर-कंजनि ब्रज-जुवतिन की आवनी।
नंद महर घर भयो कुँवर बर भई सबन मनभावनी॥
नाचत ग्वाल खिलावत गैयनि हे री टेर सुनावनी॥
दधि-काँदों भाँदों झर लायो माई गुनिन रिझावनी।
श्रीवन की रज या उच्छव मैं अलि कौ दई वधावनी॥५४॥

कवित्त

पढ़ि पढ़ि बेद करैं खेद भाँति भाँतिन के,
जाचकनि दै दै धन सकल निकारयो रे।
झूठो है जगत तासों रूठो सो भयो ना कछू,
पाय के जनम वृथा काज ही बिगारयो रे॥
पट के रचन करिबै मैं सब खोइ जस,
जीत जग बिनत सुवस्त्र किन धारयो रे।
मारयो मारयो फिरयो ममता मैं मूढ़ अंध भयो,
तैंने राधिका को नाम नेक ना उचारयो रे॥ ५५॥

पद

ते सब काहे के हितकारी।
सुभ उपदेस सिखाइ न मिलिए हित करि लाल विहारी॥
पूजा भेंट लेइ सेवक की सिष्य-सोक नहिं हरई।
गद्दी बैठि पुजावत सो गुरु घोर नरक महिं परई॥
मित्र कहाइ उदर-तन-पोखन नाना जुगति सिखावै।
जिहि-विहि भाँति मित्र सोइ कहिए जो हरि हितू मिलावै॥

पिता कहा जो सुतहि सिखावत सब स्वारथ की बातैं।
सोइ पिता निज सुतहि पढ़ावै मिलैं कृपानिधि जातैं॥
माता सोइ पुत्र अपने को करै कृष्न-अनुरागी।
गर्भ-बास सो बहुरि न आवै सत-संगति मति पागी॥
देव कहा स्वारथ अपनो ही सब विधि साध्यो चाहै।
सेवक भवनिधि तर्‌यो कि बूड़्यो उनको गरज कहा है॥
स्वामी जो सेवक सों निस-दिन नीके टहल करावै।
सेवक को वह पति काहे को जो भव-भय न छुड़ावै॥
जो साँचो हितकारी कहिए जो परपीरहि पावै।
सबै सत्रु हैं मित्र सोई जो "ब्रजनिधि" कृष्न मिलावै॥५६॥

सवैया

स्वारथ के सब साथी कुटुंब तिन्हैं तजिकै ब्रज-भूमि मैं जैहौं।
झूठे सबै जग सों अब रूठि अभूठि कै या महि फेरि न ऐहौं॥
श्रीबन बैठि कै तीर तहाँ अपने कर नीर कलिंदी अँचैहौं।
लै लकुटी बसि कुंज-कुटी रसना इक गान किसोरी को गैहौं॥५७॥

कवित्त

पर्‌यो जग-जाल माँझ अधिक बिहाल भयो,
अब लीनी जानि झूठे माँझि तें निकरिए।
जमुना को जल-पान राधारौन-कीरतन,
कान सुनि गुनि मन पैंड़हूँ न टरिए॥
हरि की कृपा तें ममता को तोरि बंधुन सों,
जानि-बूझि अब अंध-कूप में न परिए।
खाइ करि कुरी मुरी गुरी तुस धानन की,
मुक्ति की जु पुरी मधुपुरी बास करिए॥ ५८॥

मोह-ममता को तोरि जोरिहौं सनेह तहाँ,
ताकी समता न दूजो जाहिर है महि ए।
सोधि सोधि कीनो सब झूठो है तमासो यह,
जानि-बूझि अब जग-जाल मैं न रहिए॥
गुरू की कृपा सों सेवा-कुंज की निकुंजनि मैं,
कुटी करि फटी दुपटी हू ओढ़ि रहिए।
रूपनि अगाधे साधे रिखिन समाधिन सों,
राधे राधे एक रसना तें बैन कहिए॥ ५६॥

यहि कलिकाल की कुचाल जब देखियत,
लखि उतपात हहरात हिय काहो है।
निकट अनेही जन जानत हिए की पीर,
दूरि सों सनेही जिन्हें लीजै मिलि लाहो है॥
सोऊ दिन ह्वैहैं कहूँ चहूँ पहरनि दिन,
जिने मिलि वास सेवा-कुंज मैं सदा हो है।
अलि की किसोरी यह आस पुरवैगी कबै,
चंद सुखकंद जू सों मिलन-उमाहो है॥ ६०॥

दरस की प्यास मिलिबे की जिये आस नित,
हिये मैं हुलास यह रहै दिन-रैना है।
लाड़िली लड़ावन के राधा-गुन गावनि के,
स्रवननि पान कब करौं मधु बैना है॥
रस भरी बानी रसिकनि जो बखानी ताहि,
गावत परस्पर होत चित चैना है।
तुम्हैं जब देखौं तब भाग निज लेखौ करौं,
चंद-मुखचंद के चकोर मेरे नैना हैं॥ ६१॥

झूलत हिंडोरे पिय-प्यारी गरबाँहि दिए,
झाँकी लै वहाँ की यह पूरौ पन पारि लै ।
गौर-स्याम-जोरी-छबि देखिबे की टेरी लाय,
जुगल-स्वरूप छबि उर मधि धारि लै ॥
चतुर कहावै तौ तू चेति कै सबेरौ अब,
तन-मन-धन "ब्रजनिधि" पर वारि लै ।
चरन कौ चेरौ है तौ मेरौ कह्यौ मानि नीकै,
गोकुल के चंद्रमा कौ बदन निहारि लै ॥ ६२ ॥

आयो तीज द्यौस सखी सावन सुहावन मैं,
झूलत हिंडोरै दोऊ जुगल-किसोर हैं ।
सोहनी सलोनी तान गान लै करत प्यारौ,
स्रवननि बसी वेई मुरली की घोर हैं ॥
मोहन मदन तन सोहन सलोनो स्याम,
"ब्रजनिधि" रूप देखि लगे वाही ओर हैं ।
और न सुहावै छबि देखिवो ही भावै, भए
गोकुल के चंद्रमा के नयन चकोर हैं ॥ ६३ ॥

दोहा

आनँद की निधि साँवरौ, सकल सुखनि कौ दानि ।
जिहि-तिहि विधि कीजै सदा, "ब्रजनिधि" सौं पहिचानि ॥६४॥

सरनागत-पालक विरद, मन-वाछित दातार ।
पूरब पुन्यनि पाइए, "ब्रजनिधि" से रिझवार ॥ ६५ ॥

सुफल करत मन-भावना, कोटि भुवन कौ नाथ ।
निसि-वासर नित गाइए, "ब्रजनिधि" के गुन-गाथ ॥ ६६ ॥

पद

भैया हरि नाम उचार करौ रे।
राधा-कृष्न गुबिंद गुपाल कहि भव-सिंधु तरौ रे॥
साधन नाहि और कलिजुग मैं यही उपाय खरौ रे।
किसोरी-चरन-कमल-रज माहीं श्रीबन जाइ परौ रे॥ ६७॥

जन बुरो भलो सब आपको।
पूत कपूतहु कौ नहिं छोड़त, ज्यों हिय हेत है बाप को॥
परम समर्थ राधिका-बर को सरन उथापन थाप को।
याही तें डर लागत नाहीं घोर जगत के ताप को॥
जदपि मलीन हीन हौं, मेरे छोर नहीं है पाप को।
तदपि भरोसो मेरे मन मैं एक किसोरी जाप को॥६८॥

कवित्त

आनँद अगाधा लहै साधा सुख सेवत ही,
करत अराधा असरन के सरन हैं।
प्रीतम की प्यारी सुकुवारी सब-गुन-निधि,
जाको नाम लेत मुद-मंगल-करन हैं॥
करत ही ध्यान उर हरत कलेस सब,
चरन-सरोज दुख-दंद के दरन हैं।
आसरो अनन्य गहिए रे मन मेरे सदा,
राधा महारानी सब बाधा की हरन हैं॥ ६९॥

रावर में राधिका कुँवरि को जनम भयो,
देव-नर-नाग-पुर सुखावास भाई है।
नाचत अहीर, भई गोपिन की भीर महा,
मंगल उछाह मैं गलिन भीर छाई है॥

दान वृषभानजू को बरनै सुकवि कौन,
जाचक अजाचक ह्वै नौ निधि लुटाई है।
अलिन की जीवनि किसोरी को जनम सुनि,
मोद भरे पलना मैं किलकै कन्हाई है॥ ७०॥

सवैया

कीरति रानी की कीरति मैं वृषभान भुवालै कै बेटी भई।
छबि की निधि राधा अगाधा-सरूप सबै ब्रज-मंडल ओप छई॥
पुर की वनिता सब गोप-वधू लखि प्रान निछावरि वारि दई।
पलना मैं लला किलकैं······सुनि ह्वै कै किसोरी के ध्यान मई॥७१॥

कवित्त

कुँवरि लड़ैती जू की सुंदर छबि निहारि,
सब ब्रज-सुंदरि परम मोद मैं भरी।
बाँटैं तिल-चावरि बधाई गावैं मनभाई,
जनमी किसोरी आली धन्य आज की घरी॥
इतै घन भाँदों दधि-काँदों की मची है कीच,
आज अलि वंसी की सु चाह-बेलि है फरी।
नंदीपुर बरसाने सुख सरसाने बहु,
दुहूँ ओर लागी है, सनेह(?)-मेह की झरी॥७२॥

पद

करी गोपाल की सब होय।
अद्भुत सक्ति नंद-नंदन की ताहि न जानै कोय॥
करि अभिमान कियो जो चाहैं धरी रहै सब सोय।
बिनु इच्छित पल माहिं करै प्रभु अस महिमा जिय जोय॥

हार-जीत जाके कर माहीं जानत हैं सब लोय।
जैसी करै देत तैसे फल यह महिमा नहि गोय॥
जीव चराचर कर्म-तंतु मैं जिहि राखे सब पोय।
ताकी सरन गए सुख ह्वैहै रहि हरि जस रस भोय॥७३॥

सारंग

मन मेरो नंदलाल हर्‌यो री।
जा दिन तें निरख्यो वह मोहन ता दिन तें बस प्रान पर्‌यो री॥
ललित त्रिभंगी छैल छबीलो निसि-बासर हिय रहत अर्‌यो री।
बिनु देखे तब तें न सुहावै धाम-काम सुख सब बिसर्‌यो री॥
कासों कहौं पीर यह सजनी टौना सो कछु कान्ह कर्‌यो री।
मिलिहै कबै छबीली छबि सों "व्रजनिधि" पिय रस रंग भर्‌यो री॥७४॥

सोरठ

बजाई बाँसुरी नँदलाल।
मोहन-मंत्र भरी रस भीनी धरि हरि अधर रसाल॥
सुनि धुनि स्रवन सबहि सुर-बनिता नागरि भई बिहाल।
थिर चर किए भए सब थिर चर थकित भए सर-ताल॥
नाद-अमृत स्रवनन-पुट भरि भरि पूरि सप्त-सुर-जाल।
"व्रजनिधि" पिय रस-रंग-बिहारी बस कीनी व्रजबाल॥७५॥

कुंडलिया

राखी चारौं जुगनि मैं हरि निज जन की लाज।
बिजय बिजय[1] की तुम करी बिरद हेत व्रजराज॥
बिरद हेत व्रजराज महा दावानल पीए।
काली-मरदन कान्ह अभय दासन कौ दीए॥
कृपा-धाम घनस्याम कहाँ लौं बरनौं साखी।
अब सब बिधि सों रहै लाज "व्रजनिधि" की राखी॥७६॥

---

(१) विजय = तीसरे पांडव, अर्जुन।

मलार

छबि-निधि बिहरत प्रीतम-प्यारी ।
सघन घटा बरखत जल निरखत बिपिन-भूमि हरियारी ॥
परम प्रबीन बीन कर लैकै ललित मलार उचारी ।
सुखमा निरखि किसोरी-बर की भई अलिगन बलिहारी ॥७७॥

मेरी स्वामिनि ललित किसोरी ।
प्रीतम-संग कुंज के आँगन बिहरत बाँहनि जोरी ॥
हिय हरखत निरखत बन-सोभा पावस रितु पिय-गोरी ।
अद्भुत छबि दंपति-संपति की लखि अलिगन तृन तोरी ॥७८॥

सोरठ

स्वामिनि मोहि कबै अपनैहौ ।
बनरानी प्रीतम-सुखदानी रजधानी निज कबहि बसैहौ ॥
ललित-निकुंज-पुंज-सुखमा जहँ रँगरेली कब दृग दरसैहौ ।
अहो किसोरी जीवनि मोरी अलि बंसी सँग हिय हुलसैहौ ॥७९॥

आसा कब पुरवौगी मन की ।
निरभै होइ इक ओही सेवौं गौ-रज श्रीवृंदावन की ॥
ललित-निकुंज-पुंज-सुखमा जहँ संग रहौं अलिगन की ।
किसोरी अली की करुना करिकै लाज गहौ निज पन की ॥८०॥

परज

मन हरि लियो मृदु मुसकाय कै ।
मोहन की मोहनी सोहनी माधुरी बेन बजाय कै ॥
मोहित किए मदनमोहनि पिय रूप-रसासव प्याय कै ।
कुँवरि किसोरी रसिक बिहारी लीने कंठ लगाय कै ॥८१॥

विहाग

मेरो मन स्यामा-स्याम हरयो री ।
मृदु मुसकाय गाय मुरली मैं चेटक चतुर करयो री ॥
वा छवि तें मन नेक न निकसत निस-दिन रहत भरयो री ।
अली किसोरी रूप निहारत परबस प्रान परयो री ॥८२॥

कवित्त

संतन की संगति पुनीत जहाँ निस-दिन,
जमुना-जल न्हैहौ जस गैहौ दधि-दानी कौ ।
जुगल-विहारी कौ सुजस त्रय-ताप-हारी,
स्रवननि पान करौ रसिकन की बानी कौ ॥
बंसी अली संग रस-रंग अब लहौ कोउ,
मंगल को करन सरन राधा-रानी कौ ।
कुँवरि किसोरी मेरे आस एक रावरी ही,
कृपा करि दीजे बास निज रजधानी कौ ॥ ८३ ॥

चौपाई

जय जय तुलसीदास गुसाईं । सिया-राम दृग दाईं बाईं ॥
रघुबर की बर कीरति गाई । जै अनन्य तिनके मन भाई ॥८४॥

छंद

भाई अनन्य मनहिं सुकीरति विमल रघुबर राय की ।
अति विचित्र चरित्र बानी प्रगट कीनी भाय की ॥
कुटिल कलि के जीव तिनपै अति अनुग्रह तुम करयो ।
त्रिबिध ताप सँताप हिय को दया करि सबको हरयो ॥८५॥

जै जै श्री तुलसी तरु जंगम राजई।
आनँद बन के माँहि प्रगट छवि छाजई॥
कविता - मंजरी सुंदर साजै।
राम-भ्रमर रमि रह्यो तिहि काजै[1] ॥ ८६ ॥

रमि रहे रघुनाथ-अलि ह्वै सरस सोंधो पाइकै।
अतिही अमित महिमा तिहारी कहौं कैसे गाइकै॥
तुलसी सु वृंदा सखी को निज नाम तें वृंदा सखी।
दासतुलसी नाम की यह रहसि मैं मन में लखी॥८७॥

चौपाई

कोसल देस उजागर कीनौ। सबहिन को अद्भुत रस दीनौ॥
छिन छिन उमगे प्रेम नवीनौ। उमड़ि घुमड़ि झर लाइ रँगीनौ॥८८॥

छंद

रंग की बरखा करी बहु जीव सन्मुख करि लिए।
जनकनंदिनि-राम-छवि मैं भिजै दीने जन-हिये॥
बस निरंतर रहत जिनके नाथ रघुवर-जानकी।
ते दासतुलसी करहु मो पर दया दंपति-दान की॥८९॥

चौपाई

सुंदर सिया-राम की जोरी। वारौं तिहिं पर काम करोरी॥
दोउ मिलि रंगमहल मैं सोहैं। सब सखिअन के मन को मोहैं॥९०॥

---

(१) यह पद इस श्लोक का अनुवाद है—
"आनन्द-कानने कश्चिज्जङ्गमस्तुलसीतरुः।
कविता-मंजरी यस्य राम-भ्रमर-भूषिता॥"

छंद

सकल सखियन में सिरोमनि दासतुलसी तुम रही।
करौ सेवन रुचिर रुचि सों सुजस की वानी कही॥
दास यह तुव अनन्य तापर रीझि चरनन तर परी।
अहो तुलसीदास तुम्ह ही कृपा करि अपनी करी॥८१॥

चौपाई

गाइय श्रीवृंदावन-रानी। जाकी महिमा वेद बखानी॥
कुंजेस्वरी बिहारिनि स्यामा। रास-बिलासिनि छवि अभिरामा॥
ब्रज-रमनी गुन-गन-गरबीली परम मनोहर रूप रसीली॥
ललित लड़ैली लाड़ गहेली। सोहत तन मनौं कंचन-बेली॥
गौरबरन नीलांबरधारी। पिय-हिय-संपुट की मनि प्यारी॥
ललितादिक-जिय-जीवनि राधा। पूरन करन लाल-मन-साधा॥
साहिबनी वृषभान-किसोरी। ब्रजमोहन की मोहन जोरी॥८२॥

सोरठ (इकताला)

बिहारीजी थारी छबि लागे म्हाने प्यारी।
अधर थारे मृदु बैन त्रिभंगी संगी वृषभान-दुलारी॥
लटकि मटकि गति चाल बंक भुव हरखि अंस भुज धारी।
दंपति सुख-संपति निज महला "ब्रजनिधि" हित सुभकारी॥८३॥

परज

आज रास-रंग रच्यो।
वंसी-बट जमुना-तट आलिन मंडल खच्यो॥
नृत[1] गान तान मान अंग सुढंग नच्यो।
मुकट लटक भृकुटी मटकि "ब्रजनिधि" नैन अच्यो॥८४॥

---

(१) नृत = नृत्य, नाच।

दोहा

मुकट लटक कटि पीत-पट मुरली मधुर त्रिभंग।
बाम भुजा बृषभानुजा, हिय मैं रहौ अभंग ॥९५॥

लटकि मटकि गति लेन में मुसकनि मगज मरोर।
इहि बिधि "ब्रजनिधि" हिय रहौ राधा-नंदकिसोर ॥९६॥

पद

प्रेम छकि होरी खेल मचाऊँ।
जो देखी न सुनी नहिं सजनी सो नैननि दरसाऊँ॥
भग उपहास मृदंग बजाऊँ लाज अबीर उड़ाऊँ।
अपनी हित-चरचा सबके हिय घोरि सुगंध लगाऊँ॥
हिय की लगनि प्रगट करि ब्रज मैं अपजस-गीत गवाऊँ।
गोकुल-बास स्याम को संगम यह अवसर कब पाऊँ॥
साँची कहौं सुनो सिगरे पिय के हौं हाथ बिकाऊँ।
अब के फाग मिलैं जौ "ब्रजनिधि" फूली अंग न माऊँ ॥९७॥

कवित्त

पुरुष प्रधान कान्ह ब्रज अवतार लैकै,
भूमि-भार-टारन को दृढ़ पन धारे हैं।
देव-द्विज-गो-धन की रच्छा के करन हेत,
महाबीर अगनित असुर संहारे हैं॥
पूतना के प्रान हरि[1] जननी की गति दीनी,
तृणावर्त मारिकै अरिष्ट भय टारे हैं।
भक्तन के सुखकारी भूपति प्रतापसिंह,
सोई नंद-नंदन सहायक तिहारे हैं॥९८॥

---

(१) हरि=हरण करके।

महा विकराल व्याल मार्‌यो अव रूप यह,
ख्याल ही मैं वनमाली वक से विदारे हैं।
धेनुक-प्रलंब दोऊ हते वलदाऊ घोर,
दह मैं ते काली-कुल सकल निकारे हैं॥
प्रवल नृसंस ऐसे केसी कौ विध्दस कियो,
गोकुल के नाथ जू के गुन-गन भारे हैं।
सरनागत-पाल ऐसे भूपति प्रतापसिंह,
सोई नंद-नंदन सहायक तिहारे हैं॥९९॥

इंद्र-मद-हारी व्रज-बासी सब संग लैकै,
गोवर्धन-पूजा हेत सौंज लै सिधारे हैं।
मघवा नैं सुनिकै पठाई मेघ-माला तहाँ,
मूसल सी धार जल वरखत हारे हैं॥
गिरवरधर तहाँ गिरवर कर धार्‌यौ,
गोपी-गोप-गाय व्रज सकल उबारे हैं।
जन-प्रतिपाल ऐसे भूपति प्रतापसिंह,
सोई नंद-नंदन सहायक तिहारे हैं॥१००॥

असुर सँहारन कौ जन-सुख कारन कौ,
जस बिस्तारन कौ मथुरा पधारे हैं।
रजक सँहारे रंग-भूमि मैं धनुख तोर्‌यो,
कुबलयापीड़ के दतूसल उखारे हैं॥
मल्लन कौ मारिकै सुधारे जदुबंस काज,
मद मातें मामा जू को मंच तें पछारे हैं।
कंस के बिध्वंसकारी नृपति प्रतापसिंह
सोई नंद-नंदन सहायक तिहारे हैं॥१०१॥

आनि परी भक्तन मैं भीर जब जाही छिन,
ताही छिन "व्रजनिधि" बिरद सँभारे हैं।
साल्व को सँहारि दंतवक्र ताहि मारि,
सिसुपाल से प्रहारे जरासंघ से बिदारे हैं॥
दीनो राज साजि महाराज उग्रसेनजू कौ,
भक्ति के अधीन स्याम तव मैं विचारे हैं।
साँवरे गोबिंद नित्य भूपति प्रतापसिंह,
सोई नंद-नंदन सहायक तिहारे हैं॥१०२॥

बाढ़यो बहु चीर हरी द्रुपद-सुता की पीर,
आपदा अनेकन तें पांडव उबारे हैं।
पारथ को भारत जितायो रथ-सारथी ह्वै,
गरब-गुरूर दुरजोधन के गारे हैं॥
भक्त-बच्छल नाथ जू ने भीष्म को प्रन राख्यो,
गावत सुकवि तेई सुजस पनारे हैं।
बड़े भक्तराज महाराज श्री प्रतापसिंह,
सोई नंद-नंदन सहायक तिहारे हैं॥१०३॥

उत्तरा के गर्भ मैं परीच्छित की रच्छा कीनी,
रावरी दयालुता को बरनत सारे हैं।
व्रज के बिहारी जय जय सरन तिहारी आए,
तेई तुम्हें लागे नित्य प्रानहू तें प्यारे हैं॥
तन-मन-धन करि कृष्न को कहाओ जो ही,
ताही के कृपाल तुम कारज सुधारे हैं।
परम उदार ए हो भूपति प्रतापसिंह,
. सोई नंद-नंदन सहायक तिहारे हैं॥१०४॥

दोहा

काहू सुभचिंतक करा सुभचिंतकी बनाइ।
"श्रीब्रजनिधि" निज जानिकै कीजे सदा सहाइ ॥१०५॥
कविता करि जानौं नहीं हौं विद्या करि हीन।
"श्रीब्रजनिधि" रिझवार ने तउ अपनो करि लीन ॥१०६॥

पद

हम याही भरोसे निर्भय भए।
करुना-सिंधु कृपाल लाड़िली औगुन तजि निज करि लए ॥
स्वामिनि-चरन-कमल सेए विन जनम अनेक वृथा गए।
बंसी अलि अपनाइ किसोरी दुर्लभ रस हिय भरि दए ॥१०७॥

तिहारो परम दयाल सुभाव।
जन के औगुन ओर न देखै अति उपज्यो चित चाव ॥
तुम विन मोसे अधम उधारन दीसतु नाहिं उपाव।
बंसी अलि की कृपा किसोरी पर्‌यो जीति कौ दाव ॥१०८॥

आँवदि फितूर की स्रवन सुनि महाराज,
काहे काज राज एतौ सोच मन कीनो है।
राधिका-गोबिंदजू के चरन-कमल माँझ,
तन-मन सकल समर्पि तुम दीनो है ॥
कूरमनरेस महाबाहु श्रीप्रतापसिंह,
यासौं कहा हू है यह वैरो बलहीनो है।
हूजै तेजभान महादान जग जस लीजै,
रावरे अरिन आयो विघन नवीनो है ॥१०९॥

दोहा

गाँठि परै सुख होइ नहिं यह सब जानत कोइ।
गँठिजोरे की गाँठि मैं रंग चैागुनो होइ ॥११०॥
सजनी बान बियोग की कठिन बनी है आइ।
मन मैं राखे तन जरै कहूँ तौ मुख जरि जाइ ॥१११॥
बिरह-नदी मैं प्रेम की नाव न खेवट कोइ।
बहुत बियोगी डूबते जो मुख हाइ न होइ ॥११२॥
बिरह-अगनि तन मैं बढ़ो गए नैन-जल सूखि।
देह अवाँ कैसै बुझै दयो हाथ तें फूँकि ॥११३॥

कवित्त

कीरति-कुमारि तुम बड़ी रिझवारि
करुना की दृष्टि धारि मेरी बिनै[1] चित लाइए।
लाड़िली कृपाल ए हो परमदयाल मैं हौं,
निपट बिहाल ताहि बेगि अपनाइए ॥
अलि-गन माहिं मोहिं राखो गहि बाँह,
यह पूरौ मन-चाह वलि बेर न लगाइए।
बंसी अलि संग नित देखैां रति-रंग,
हे किसोरी अलि अंग करि बिपिन बसाइए ॥११४॥

निस-दिन आस बन-बास की लगी ही रहै,
याही को उपाय जन करत बिचारौ है।
एकहू छिन कहूँ थिरता न लहत मन,
वृथा वय जात तातें होत भय भारौ है ॥

---

(१) बिनै = विनय, विनती।

भाँति भाँति तापन तैं व्याकुल ही दीसैं सब,
ऐसौ ही समय आयौ तासौं कहा सारो है।
इहि कलि-काल की कुचाल सौं डरे कौ अब,
कुँअरि किसोरी एक आसरौ तिहारौ है ॥११५॥

जासौं दुख जाइ कहौ सोइ रोवै दूनौ दुख,
तातैं न कही जात बात कछु मन की।
इहि कलि-काल मैं न गंध परमारथ कौ,
स्वारथ मैं मगन न जानैं दसा तन की॥
ऐसेन सौं कहौ कौन भाँति मन-आस, जिय
बासना बसी है जो निवास वृंदावन की।
दृढ़ पन मेरै मैं सरन नित तेरैं अब,
कुँवरि किसोरी जू तुमहि लाज जन की ॥११६॥

शेर

दर इंतजार प्यारे के होकर के बेकरार।
बस दरद जुदाई से करने लगी पुकार॥
हर बिरछ सेती बन में पूछै है पी कहाँ।
देखा है तो बताओ क्यों रखते हो निहाँ॥
यह गुफ्तगू करते ही जाइ पहुँची है वहाँ।
चारों चरन का खोज लखा नकशा जहाँ॥
लख नक्श पाय चार का दिल में किया बिचार।
यक्ता नहीं गया है प्यारी ले गया ऐयार॥
इस सोच-फिकर ही में चली जाय पेसतर।
देखा बिरह के अंदर प्यारी कूँ बेसतर॥
पूछा कहाँ है साथी तुम्हारा द्यो बता।
सुनकर जवाब दर्द मुझे भी गया सता॥

तब प्यारी सों मिल प्यारे के ख्यालों की करी याद।
इस आन में आ "व्रजनिधि" सब का किया दिल शाद॥११७॥

कवित्त

जाग्रत सुपन सुखापतिहू में संग रहै,
ऐसे प्यारे प्रीतम बिसारि सुख को चहै।
सोही मतिमंद अंध बिषय के फंद परि,
जनम-मरन महा-द्वंद-दुख को लहै॥
सुर-नर-नाग-लोक सोक ही के थोक ओक,
करम के बस वहाँ भ्रमत सदा रहै।
तातें सब त्यागि अनुराग नंद-नंदन के,
असरन-सरन चरन सरनो गहै॥११८॥

सुंदर सलोने सब सुख-सुखमा के धाम,
स्याम कोटि काम हू निहारि वारि डारे हैं।
को है जो न मोहै त्रिभुवन में बिलोकि ताही,
अंग प्रति अंग सब साँचे के से ढारे हैं।
रसिक रसीले गुन-गन-गरबीले अरबीले,
ऐसे चित तें टरत नहीं टारे हैं।
नंद के दुलारे जसुदा के प्रान-प्यारे
व्रज-लोचन के तारे सो ही ठाकुर हमारे हैं॥११९॥

सुनि गजराज की अरज व्रजराज धाए,
वाहन हू छाड़िकै उवाहने ही आए हैं।
द्रौपदी की बेर न अबेर करी टेरत ही,
हेरत सभा के वर अंबर सो छाए हैं॥

करुना के सागर उजागर बिरद जाके,
प्रीतम प्रिया के सबही के मन भाए हैं।
परम उदार प्रीति ही के रिझवार चारु,
ऐसे सरदार पूरे पुन्य-पुंज पाए हैं ॥१२०॥

पद

राधे जू रंग भीनी राजकुँवारि।
अलख लड़ैती लाज गहेली अलबेली सुकुमारि ॥
चंपक-बरनी पिय-मन-हरनी अँग-अँग साजि सिँगारि।
करत केलि संकेत-सदन मैं सँग बंसी सहचारि ॥
आए मनमोहन सोहन छबि इकटक रहे निहारि।
मृदु मुसकानि बंक चितवनि लखि सके न तनहि सँभारि ॥
परम दयाल किसोरी गोरी गहि लीने उर धारि।
प्रीति दुहुन की निरखि अलिन तहाँ तन-मन डारे वारि ॥१२१॥

दोहा

विधिना ऐसी कीजियो, नेह न पावै कोइ।
मिलत दुखी बिछुरत दुखी नेही सुखी न होइ ॥१२२॥
लगनि अगनि हू तें अधिक निस-दिन जारे जीय।
प्रगट अगनि जल तें बुझै लगनि मिलै जौ पीय ॥१२३॥

पद

अब तौ छुटीं हम भौन सौं।
डावाँडोल भई अधबिच की ज्यौं तृन भरमत पौन सौं ॥
आप उहाँ कुबिजा-रस राचे डरत न पर-घर-गौन सौं।
"ब्रजनिधि" हमें ग्यान दे पठयो ज्यौं बिंजन बिन लौन सौं ॥१२४॥

सारंग

ऊधो वे प्रीतम कब ऐहैं।
सीतल-मंजु-कुंज-परछैयाँ[1] सोवत आइ जगैहैं॥
कहि कहि रस की बात रसीली मो तन मृदु मुसकैहैं।
अमल-कमल-दल-लोचन-चितवनि तन की ताप बुझैहैं॥
बिरह-बिथा बाढ़ी निस-बासर प्रान परेखे जैहैं।
"ब्रजनिधि" सों निहचै[2] करि कहियो फिरि पीछे पछितैहैं॥१२५॥

ऊधो जाय कहियो स्याम सौं।
भली भई मधुबन बसि छाँड़्यो नातो गोकुल ग्राम सौं॥
रास-रसिक गोपी-जन-जीवन लाज लगत या नाम सौं।
भाग-सुहाग भरी कुबजा के रंग रँगो अभिराम सौं॥
हम तौ जोग भोग तजि बैठीं काम कहा धन-धाम सौं।
"ब्रजनिधि" प्रीतम देखे बिन अब गयो देह सब काम सौं॥१२६॥

हम तो योंही भक्त कहाए।
रसिक-जनन की संगति तजिकै बिमुखन सनमुख धाए॥
स्वाँग सिंघ कौ धारि स्वान सम मन नै चाल चलाए।
बिषयन के बस करिकै इंद्रिन कपि लौं नाच नचाए॥
कहनी सी करनी न करी कछु जग-जन बहुत हँसाए।
परम कृपालु किसोरी जू ने ऐसे हू अपनाए॥१२७॥

कवित्त

पंकज प्रफुल्ल सोई सुंदर मुखारविंद,
चंचल जे मीन तेइ अँखियाँ उमंगिनी।

---

(१) परछैयाँ=प्रतिच्छाया परछाईं। (२) निहचै=निश्चय।

सोहत सिवार सो तो बार सुकुमार महा,
करत कटाछ बंक चीची भ्रुव भंगिनी ॥
चक्रवाक वसत लसत सोई पीन कुच,
सोहै नँद-नंद-घनस्याम अंग संगिनी।
भूमि हरियारी सोई पहिरि रही सारी देखो,
साँवरी सखी है किधौं जमुना तरंगिनी ॥१२८॥

गाय लै रे गोबिंद गरुड़-गामी गोकुलेस,
गुरु-पद-पंकज सौं सीसहि छुवाय लै।
न्हाय लै सरीर कौ सु जमुनाजू के नीर निज,
कृष्न-मंत्र जपि गोपी-चंदन लगाय लै ॥
लाय लै रे राधा औ माधव सौं सरस प्रीति,
हिये रस-रासि प्रेम-भक्ति सरसाय लै।
छाय लै रे गौ-रज चराइ लै रे गायन कौ,
श्रीगुविंद-गीत कौ तू सुनि लै कै गाय लै ॥१२९॥

करि लै रे सुकृत सुमिरि लै रे श्रीहरि,
परहरि[1] और ओर ढरनि मोह-जाल की।
परि गई तेरे हाथ चिंतामनि नरदेह,
यातें ओट गहि लै रे भक्त-प्रतिपाल की ॥
करतु कहा है कहा करिये कौ आयौ कहि,
को है तू कहा है यह कैसी गति काल की।
गई सो तो गई अब रही सो तो राखि मूढ़,
एक एक छिन जात लाख लाख लाल की ॥१३०॥

---

(१) परहरि = त्याग कर।

ए रे मन मेरे मेरी सीख मानि ले रे,
मोह-माया तजि दे रे तेरे पायन कौ धौंकियै।
तो सौ और को रे यातें करत निहोरे कहा,
भटकत मोरे नेक चंचलता रोकियै॥
आज लौं तौ तेरी कही कही सब हेरी अब,
लोक-लाज-भार लैकै भार ही मैं झोंकियै।
घरी घरी पल पल हलचल दूरि डारि,
गोकुल के चंद्रमा को वदन बिलोकियै॥१३१॥

रेखता

दरियाव-इश्क गहरे में डूबे को कौन पावे।
मछली से जाइ पूछो बिछुरि जल से जो गँवावे॥
इस इश्क ने घर घाले केतेक इस जहाँ में।
देखो पतंग शमे पै जी आप ही जलावे॥
जो इश्क नाम लेवे सो होय सिफत मजनूँ।
किसी और को न जाने शब-रोज पिया ध्यावे॥
इस इश्क के नगर मे पाँवों से नहीं चलना।
साबित आशिक है सोई सिर का कदम बनावे॥
है दुश्मनी जहाँ में लहा(?) इश्क को व्रजनिधि।
कुल-कानि को बहावे सो इश्क को कमावे॥
हर रोज निमाँ शाम कौ इस धज सेती आवै।
गुल जेवर कुल पहिरे दस्त फूल फिरावै॥
हमउमर है हमराह वले सब सेती बढ़कर।
आमद की खबर अपनी वंसी में सुनावे॥
दीदार इंतजार सुन आवाज वंसी को।
घर से बदर आ देखे चशम चोट चलावे॥

गज-गत चले रँगीला जोबन की मस्ती में।
वह तड़फ बिगानी को दिल में कब लावे॥
इस ब्रज मे बसने का बड़ा रेग लगा है।
दिल "ब्रजनिधि" देखे बिन छिन चैन न पावे॥१३२॥

कवित्त

ललित-किसोर अंग मोहे कोटिक अनंग,
सहज सुभाउ पर्यो याकैं चित-चोरी कौ।
तैसोई बनाव बन्यो रहै नित नेह सन्यो,
त्रिभुवन नाहिं सुन्यौ कहूँ याकी जोरी कौ॥
मुकट छबीलो माथ, ग्वाल-वृंद सोहैं साथ,
साँझ समै गाइन लै ऐवो ब्रज-खोरी कौ।
परम चतुर छैल रोके मन नैन गैल,
देखि री दिखाऊँ तोहि दूलह किसोरी कौ॥१३३॥

× × × × ×
× × × × × ।
× × × ×
× × × × × ॥

आज ब्रजराज कौ कुँवर चढ़्यो ब्याहिबे कौ,
मोहे मन नैन छोर काँकन की डोरी कौ।
मोर सोहै सीस लखि देत हैं असीस द्विज,
बिहरत ललित-कुंज ब्रजनिधि चित चोरी कौ॥१३४॥

माँझ

जो कोई दिल अंदर अपने प्यारे नाल मुहबत लोडे।
लोग लभुदे भाँडे नू ले बिचोइटै फोडे॥
कुल अपने दी मान बड़ाई क चेता गेवा गृ तोडे।
जे इतनी गला सिर झले सो "ब्रजनिधि" धनाल यारी जोडे१३५

ईमन (तिताला)

पिया कौ चंद दिखावत प्यारो ।
इक कर गरबाहीं दोउ जोरे इक कर कहत निहारो ॥
पुनि पुनि अँग अँग कसनि गसनि करि कछुक देत उपहारो ।
"व्रजनिधि" प्यारी रूप विलोकत प्रान करत बलिहारो ॥१३६॥

रेखता

प्यारे प्रीतम से हँसके पूछै हैं बात प्यारी ।
मुझसे कहो जी शब तुम कहाँ आज सब गुजारी ॥
किससे करी हौ बातें जाके किसी से मिलना ।
आदत अजब पड़ी है आखर पिया तुम्हारी ॥
लाखों उजर व मिन्नत हमको नहीं सनद हैं ।
करती हैं गुफ्तगोई तुझ चश्म की खुमारी ॥
बातें सु उनकी सुनकर लाचार हो रहे हैं ।
दो दस्त बाँध दिल से कीनी है ताबेदारी ॥
यह हाल देख प्यारी गले से लगाइ लीने ।
सुंदर सलोने नेही "व्रजनिधि" विपिन-बिहारी ॥१३७॥

पद

सुजन सोई लेत भय तैं राखि ।
अति दयाल कृपाल तिनकी लिखौं बहुबिधि साखि ॥
गुरू नारद से कहे जे करत जनहिं बिसोक ।
सरन आवत ध्रुवहि दीनौ अभय-पद हरि-लोक ॥
सुजन को प्रह्लाद सम हरि-भक्ति कौ दातार ।
किए नरहरि-दास छिन मैं अमित दैत्य-कुमार ॥
पिता कोउ न भयो जग मैं रिखभदेव समान ।
किए तारन-तरन सुव-सुत दियौ पद निरबान ॥

मातु जग मैं द्वै भईं मदालसाऽरु सुनीति।
पुत्र जनमत ही उधारे स्याम सौं करि प्रीति॥
देव-पति दोउ बिधि निपुन नहिं कोउ महेस समान।
दयानिधि सुर-असुर-दुख हर कियो हलाहल-पान॥
प्रपति-पनौ अब कहौं सिव कौ प्रिया पै हित कौन।
राम-पद-रति कीनि भय हरि करी परम प्रबीन॥
मृत्यु-संकट समय राखत सरन हरि हरिदास।
यही पन मन धारि "व्रजनिधि" राखि दृढ़ बिस्वास॥१३८॥

जिनकै प्रिय न जुगल-किसोर।
तिनहिं तजिए कोटि अरि करि परम प्रीतम तोर॥
बिमुख हरि सौं जानि पितु कौ तज्यौ नरहरिदास।
धर्म इहि सम और कोउ न भक्ति दृढ़ बिस्वास॥
बंधुहू त्याग्यौ बिभीषन बिमुख प्रभु सौं जानि।
सरन आवत राम की प्रभु हरौ" ....॥१३९॥

× × × ×
× × × ×।
× × × ×
......सुहायो भाल टीकौ रचि रोरी कौ॥
तैसे ही बराती साथ सेना जैसी रतिनाथ
पौरि वृषभानजू की ऐबो चढ़ि धोरी कौ।
मनौं मोहनी के मंत्र छूटैं बहु बह्नि-जंत्र[1]
देखि री दिखाऊँ तोहि दूलह किसोरी कौ॥१४०॥
× × × ×
× × × ×।
कैधौं जप-तप व्रत तीरथ असे समाधि
आसन हुतासन कौ करि तनु छीनौ है॥

(१) बह्नि-जंत्र = आतशबाजी आदि।

कैधौं बिधि करि हरि पूजे बनमाली आली
यातें याहि अधर-सुधा कौ बास दानौ है।
निसि-दिन रहत अधर कर पर अरी
बंसी मन-मोहन की कौन पुन्य कीनौ है ॥१४१॥

सीस पर सोहत असित दुति चंद्रिका की
बानिक रह्यो है बनि ललित ललाट कौ।
राजत उदार उर पर बनमाल लाल
कटि-तट कसत पिछौरा पीत-पट कौ॥
गजगति ऐवौ बर बाँसुरी बजैवौ मृदु
मुसुकि चितैवौ चित चेटक उचाट कौ।
नैननि निहारि सुधि हारी या बिहारी छबि
तब ते न मेरो मन घर कौ न घाट कौ ॥१४२॥

सवैया

पट-पीत कसे नट वेष लसे मुसुकाय कै नैन नचावन की।
गर गुंजन-माल विसाल दिपै कर मैं बर कंज फिरावन की॥
मधुरी धुनि वेन बजावनि गावनि बानि परी तरसावन की।
निसि-द्यौस सदा मन माहिं बसै छबि वा बन तें बनि आवन की १४३

छप्पै

प्रेम रूप बन भूप सदा राजत पिय-प्यारी।
इक छिन बिछुरत नाहिं कबहुँ नित कुंज-बिहारी॥
सुंदर वदन विलोकि परसपर मृदु मुसुकावत।
दंपति रस सुख सीव विलसि मन-मोद बढ़ावत॥
जहाँ मिली किसोरी सोहियत मोहन सोहनलाल सों।
मनु ललित लता कलधूत[1] की लपटी तरुन तमाल सों ॥१४४॥

(१) कलधूत = सोना।

सवैया

संग खवासिनि पास जहाँ, अस सोभित आलस प्रेम के पागे।
आपस मैं अवलोकत लोचन रूप-सुधा-रस पीवन लागे॥
अंतर आनि करैं पलकैं सो सह्यो न परै अतिसै अनुरागे।
लाड़िली लाल रसाल महा उठि भोर भए रँग-मंदिर जागे॥१४५॥

कवित्त

सिथिल सिँगार हार निधुवन बिहार करि,
बैठे पलिका पै अलसावत जँभात हैं।
उपमा न आत कछू दंपति की संपति लखि,
रति-रतिनाथ साथ कोटिक लजात हैं॥
मृदु मुसुकात जात मन मैं सिहात, उर
आनँद न मात मीठी बात बतरात हैं।
बाल कौ बिलोकि लाल लोचन अघात हैं
न लाल के बिलोके बाल नैनन अघात हैं॥१४६॥

अड़ाना (चौताल)

महदी स्याम सहेली रचि रचि
चरननि अलबेलीहि रिझावति।
बार-बार निरखत नहिं छाँड़त
करत चित्र बर निज अनुराग रँगावति॥
सखी सौंज लिए सब ठाढ़ी निज
अधिकार जनाइ हँसावति।
समुझि बात तब मृदु मुसिक्यानि रीझि
बिहारिनि "ब्रजनिधि" कंठ लगावति॥१४७॥

रेखता

नेनैं मधि छाइ रह्या गौर स्याम रूप।
चंद सा सलोना मुख सोहना अनूप॥
जमुना के तीर तीर करत वन-बिहार।
निरखि निरखि छबि-सिँगार लाजैं रति-मार॥
नागरि नागर वदार[1] नवल नित किसोर।
बाँसुरी बजावै वह "ब्रजनिधि" चित-चोर॥१४८॥

दोहा

दोऊ सरबर रूप के, हंस सखिन के नैन।
"ब्रजनिधि" मुक्ता चुगत तहँ चितवनि बिहँसनि सैन॥१४९॥
"ब्रजनिधि" पहिले कीजिए रसिकन कौ सत-संग।
स्यामा-स्याम-उपास कौ जातें लगै तरंग॥१५०॥
"ब्रजनिधि" चाख्यौ प्रेम जिहि ताहि सुहात न और।
स्वर्गादिक नीचे लगैं जे जे ऊँची ठौर॥१५१॥

पद

बसैं हिय सुंदर जुगल-किसोर।
नागर रसिक रूप के सागर स्याम भाम तन गौर।
सोहन सरस मदन-मन-मोहन रसिकन के सिरमौर॥१५२॥

सिर धर्‍यो निज पानि।
मातुहू कौ त्याग कीनैा बिमुखि प्रभु सौं देखि।
जिए जौ लौं मुख न बोले भरत प्रेम बिसेखि॥
बिमुख बावन सौं करत बलि कियौ गुर कौ त्याग।

(१) पाठांतर—स्यामा स्याम अति वदार।

हरि भए तिहि द्वारपालक जानि जन बड़भाग ॥
गोप-पत्नी पतिन कौ तजि गई हरि के पास ।
दोस कछुव न लिख्यो सुक मुनि रमी पिय सँग रास ॥
ज्यों कछू मन माहिं आवै बाचि पूरब साखि ।
कहा अंजन आँजिए जो लगत फोरै आँखि ॥
पूज्य सोइ निज परम प्रीतम सोइ अभिमत दानि ।
प्रीति जातें होइ "ब्रजनिधि" सकल सुख की खानि ॥१५३॥

भैरव

जै जै श्रीभागवत पुरान ।
निगम-कलपतरु[1] को फल रसमय अवनि पर्‌यो आन ॥
हरि तैं बिधि तिनतैं नारद मुनि तिनतैं ब्यास कृष्न द्वैपान ।
ब्रह्मरात तैं उदित भान सम रसिक प्रफुल्लित कमल समान ॥
बिष्नुरात सुनि पायो हरिपद मद-मत्सर कौ दहन कृशान ।
किसोरी अली बास बृंदावन मांगत जुगल-केलि-जस-गान ॥१५४॥

सारंग

वंदौं श्री सुकदेव सुजान ।
निज अनुभव श्रुति-सार अनूपम गायो गुह्य पुरान ॥
संसारिन पै करुना करिकै दयो अभयपद-दान ।
अली किसोरी को वर दीजै करे भागवत गान ॥१५५॥

विभास

हरि वंसी वंसी हरि की है ।
जाहि सुनत मोहीं ब्रज-सुंदरि चलि आई जहाँ मोहन पी है ॥
अधर-अमीरसु चाखि निरंतर राधा राधन टेक गही है ।
कृपा विना को लहै किसोरी जो अति अद्भुत रीति कही है ॥ १५६॥

---

(१) निगम-कलपतरु = वेद-रूपी कल्पवृक्ष ।

सोरठ

श्रीहरिदास कृपानिधि-सागर हैं।
निसि-दिन नैननि के डोरन सों झुलवत नागरी नागर हैं॥
सरस गान करि रिझवत दंपति सब रसिकन के आगर हैं।
ललित किसोरी बिजै रूप धरि निधिबनबास उजागर हैं॥१५७॥

बिलावल

जै जै जै श्री व्यास जू जग कीरति छाई।
महिमा महाप्रसाद की तुम प्रगट दिखाई॥
रास-केलि मैं रमि रहे बर बानी गाई।
त्रिगुण तोरि नूपर सँवारि लाड़िली रिझाई॥
जे जन सनमुख अनुसरे तिन बन-रज पाई।
किसोरी अली जस गावही संतन-सुखदाई॥१५८॥

दोहा

रूप अनूपम मोहनी मोहन रसिक सुजान।
रूप-रसिक यह नाम धरि प्रगटे नेह-निधान॥१५९॥

भैरव

रूप-रसिक से रूप-रसिक बर।
दिव्य महावानी रस-सानी प्रगट करन प्रगटे अवनी पर॥
अति रहस्य रस की परिपाटी लखि बेदन की कोउ न सरबर।
उमड़ि घुमड़ि हिय भाव-घटा सो बरसत नित-प्रति आनँद को झर॥
गौर-स्याम के रंग झकोरे कोरे जे आए नारी नर।
नैनन की सैननि सौं अलि कौ दरसायो नव-केलि-कुंज-घर॥१६०॥

सारंग

धनि धनि वृंदावन के बासी।
जिनकी करत प्रसंसा सुक मुनि उद्धव बिधि कमलासी॥
आन देव की संक न मानत संतत जुगल-उपासी।
वैकुंठहु की रुचै न संपति कब मन आवै कासी॥
श्रीजमुना-जल रुचि सों अचवत मुक्ति भई तहाँ दासी।
अष्ट-सिद्धि नव-निधि कर जोरे जिनकी करत खवासी॥
जिनकै दरस-परस रस उपजत हियै बसत रस-रासी।
श्री बंसी अलि कृपा किसोरी कछु इक महिमा भासी॥१६१॥

रेखता

जिसके नहीं लगी है वह चश्म चोट कारी।
हैवान क्या करैगा वह नंद के से यारी॥
इस्तेमाल इश्क का जहान बीच होवै।
दीन औ कुफर की बदबोई दिल से धोवै॥
महबूब के मिहर का हर रोज रहै दिवाना।
आसान कुछ न जानो यह आसकी का बाना॥
गोविंदचंद "ब्रजनिधि" की अर्ज सुनो प्यारे।
टुक छबि-भरी नजर करि सब दुख हरो हमारे॥१६२॥

बिहाग

हमारे इष्ट हैं गोबिंद।
राधिका सुख-साधिका सँग रमत बन स्वच्छंद॥
जुगल जोरी रंग बोरी परम सुंदर रूप।
चंचला मिलि स्याम नव घन मनहुँ अवनि अनूप॥
सुभग जमुना-तट-निकट करि रहे रस के ख्याल।
हिये नित-प्रति बसौ "ब्रजनिधि" भावती नँदलाल॥१६३॥

जिनकै श्री गोविंद सहाई।
सकल भय भजि जात छिन मैं सुख हिये सरसाई॥
सेस सिव विधि सनक नारद सुक सुजस रहे गाई।
द्रौपदी गज गीध गनिका काज किए धाई॥
दीनबंधु दयाल हरि सों नाहिं कोउ अधिकाई।
यहै जिय मैं जानि "ब्रजनिधि" गहे दृढ़ करि पाई॥१६४॥

सोरठ (देव गंधार धीमा ठीव)

साँची प्रीति सों बस स्याम।
जोग-जप-तप-जग्य-संजम कब किए ब्रज-बाम॥
गोपिकन के भए रिनिया रास-रस के माहिं।
साधैं समाधिहि मुनीसर[1] तउ ध्यान आवत नाहिं॥
यह जानि जाचत पद-कमल-रति दीन ह्वै कर जोरि।
धरयौ "ब्रजनिधि" नाम तौ अब लीजिए चित चोरि॥१६५॥

कन्हड़ी बिलावल

नाहीं रे हरि सौ हितकारी, जाकी लागत कथा पियारी।
देखे ठोंकि बजाइ सबैई जग मैं सुखद नाहिं नर-नारी॥
पतितन के पावन के काजै नाम महातम कीनो भारी।
प्रगट बात यह कहत सकल जन सुवा पढ़ावत गनिका तारी॥
बेद पुरान तंत्र स्मृति हू नै यहै बिचार कियो निरधारी।
दृढ़ बिस्वास धारि हिय "ब्रजनिधि" करौ निसंक नाम उचारी॥१६६॥
कृष्न नाम लै रे मन मीता, जनम अकारथ जातु है बीता।
जे नहिं कृष्न नाम उच्चारे, तिनहीं कौ जमदूत पछारे॥
जिनकौ हरि-जस नाहिं सुहावै, दुखी होइ पाछै पछितावै।
नौका नाम बैठि होहु पारै, "ब्रजनिधि" साँची कहत पुकारै १६७

---

(१) मुनीसर = मुनीश्वर।

लूहर सारंग

हेली नेह-रीति कछु अटपटी कैसे कै कहि जाई।
छैल-छबीले नंद-नँदन की छबि रही नैन समाई॥
जित देखैां तित साँवरो हेली और न कछू सुहाई।
बिसरायो बिसरे नहीं हेली करिए कौन उपाई॥
हौं जब दुरि घर मैं रहौं री झलकै अँखियन आय।
मोहन मूरति माधुरी हेली मुरि मुरि मृदु मुसिकाय॥
चाक चढ़्यो सो मन रहै हेली चकफेरी सी खाय।
किबलनुमा की सी भई री वाही दिसि ठहराय॥१६८॥

ईमन

मैनू दिल जानी मोहन भावदानी।
इत वल आवदा बीसी सुणाँवदा मैंडा दिल ललचावदा॥
दिलवर दिल दीसवै जाणदा गाहक हाथ विकावदा।
सोहणी सूरति प्यारा नील गदा "ब्रजनिधि" नाम कहावदा १६९

ईमन

तपदे वेखणनू मैंडे नैन।
दिल दे अंदर हूका उठदी रैनि-दिहा नहिं चैन॥
वेपरवाही नंद-महर दा सुधि मैंडी नहिं लैन।
किसनू आखाँ गल्ला सईये "ब्रजनिधि" ब्रज-सुख-दैन॥१७०॥

विहाग

नूपर-धुनि जब ही स्रवन परी।
चौंकि उठे पिय कुंज-विहारी सुधि-बुधि सब बिसरी।
गर्व गए मुरली के सिगरे प्यारी भुजनि भरी।
छबि बिसराइ(?) मैन की "ब्रजनिधि" आसा सुफल करी॥१७१॥

मीत मिलन की चाह लगी है।
कछु न सुहाइ हाइ कहा कीजै अद्भुत विरह बलाइ जगी है॥
सूझत कछु न उपाय सखी री मोहन मूरति हिए खगी है।
"ब्रजनिधि" नै हौं करी बावरी लोक-लाज कुल-कानि भगी है॥१७२॥

सारंग

छबीलौ छैल कन्हाई भावै।
स्याम-बरन मन-हरन करन सुख बंसी मधुर बजावै।
मुकट लटक अति चटक-मटक सों भृकुटी नैन नचावै।
"ब्रजनिधि" तान रसीली लै लै प्रानप्रियाहि रिझावै॥१७३॥

हर्‌यौ मन मेरो छैल कन्हैया।
ललित त्रिभंगी राधा संगी वंसी कौ बजवैया॥
सुंदर स्याम सलोनौ लोनौ बलदाऊ कौ भैया।
"ब्रजनिधि" रस बस करि लीनो मन रह्यौ जात नहिं दैया॥१७४॥

ईमन

मोहन माधौ मधुसूदन मुरलीधर मोर-मुकट-धरन।
गिरधर गोबिंद गोकुलचंदगोपीनाथ बंसीधर गोपिन-सुख-करन॥
कँवलनैन केसव कल्यान राय ब्रजपति ब्रजाधीस बाधा-हरन।
नट-नागर"ब्रजनिधि"प्रभु कुंज-बिहारी वनवारीभगतनके तारन-तरन१७५

पूर्वी

जिंदडी लगी उसाडे नाल क्यों नहिं बुझदा मैंडा हाल।
अंदर गए हुए अंदर दे सानू ख्वाब न ख्याल॥
टुक मुटुक मुखड़ो विखलाती प्यारे के हा तैंडा ख्याल॥
"ब्रजनिधि" कुरबानी तुझ ऊपर यह तन मैंतल माल॥१७६॥

पूर्वी

अरे दिलजानी ढोलन आवी ।
बेखे बिण न पदी दिल अंदर टुक मुखड़ा दिखलावी ॥
मैंडी गलियाँ आव सोहण्या बंसी फेरि बजावी ।
कुरबानी जिदडी "ब्रजनिधि" पर मैन्ं क्यों तरसावी ॥१७७॥

कन्हड़ो

गोबिंद देखत नैन सिरात ।
नख-सिख अंग अनूप माधुरी सुंदर साँवल गात ॥
बाम भाग वृषभान-नंदिनी ओर चितै मुसिक्यात ।
"ब्रजनिधि" निरखि छबीली जोरी हिय आनँद न समात ॥१७८॥

रस की बात रसिक ही जानै ।
नूत-मंजरी-स्वाद कोकिला लेत न पसु-पंछी रुचि मानै ॥
कपट-भेष धरि व्याध मनोहर बरवै राग करत जब गानै ।
आवत बिबस धाइ मृग तबही सुनत हुस्यार नाहिं पहिचानै ॥
दुर्लभ यह रस-रसिक संगसों "ब्रजनिधि" सार जानि हिय आनै ।
परम छबीले मंगल-मूरति जुगल रीझि तासों हित ठानै ॥१७९॥

जिनके हिये नेह रस साने ।
तेही जगमगात सब जग मैं देह गेह मैं अति अरसाने ॥
छके रहे दंपति-संपति मैं अजब मगन चढ़ि गए असमाने ।
वेद भेद तजि नेम-शृंखला हम तौ "ब्रजनिधि" हाथ बिकाने ॥१८०॥

सारंग

कछु अकथ कथा है प्रेम की ।
बिसरि गई सब ही सुधि सजनी छूटि गई बिधि नेम की ॥
दसा भई मन की ऐसी ज्यौं मिलत कुहीगौ हेम की ।
"ब्रजनिधि" प्यारे को बिन देखे कहौ बात कहा छेम की ॥१८१॥

रेखता

उस ब्रज के रस बराबर दीगर नजर न आया।
जहाँ गोपियों ने मिलकर प्रीतम-पिया रिझाया॥
ब्रज-वास आरजू कर ऊधो ने यह अरज की।
कीजै लता इस वन की जहाँ प्रेम-रँग सवाया॥
पोशाक खास देकर किया राजदार प्रेमी।
कहो जोग ग्यान मेरी खातर मैं क्योंकर आया॥
तारीफ उस जगै की मुझसे न हो सकै है।
चहारदह का वह जो हजार चस्म भी लजाया॥
सुनकर कहा यही सच पै मुस्किलात भारी।
ब्रजवास जिन्हों पाया "ब्रजनिधि" कृपा से पाया॥१८२॥

कन्हड़ी

मोहनी मूरति हिये अरी री।
कल नहिं परत एक छिन क्योंहू दृग-चितवन हिय बेध करी री॥
कछु न सुहाइ हाइ कहा कीजे लगी रहति अँसुवानि-झरी री।
कहा कहिए यह पीर अनोखी "ब्रजनिधि" देखन बानि परी री॥१८३॥

हजू ईमन

छैल-छबीले मन-मोहन नै बस कीती जिद मैंडी।
कूकि कूकि उठदी दिल हूका दरस दिवाणी तैंडी॥
दिलजानी टुक मुख बिखलावी मैं कुरबानी जावा।
हा हा गुना माफ़ करि "ब्रजनिधि" सैंडे ही जस गावा॥१८४॥

मन-मोहन छबीला मनभावदा।
मुड़ि मुसकावदा चित ललचावदा नाहक जिय तरसावदा॥
ताननि माणी गाइ नीकुजि ये गल बिच फंदा पावदा।
दिल मैं बढ़ी प्रेम दी आतम "ब्रजनिधि" सैन चलावदा॥१८५॥

ईमन

नंददानी गुर प्यारा भावदा ।
टूक टूक कीता मैंडा दिल सैनों दी चोट चलावदा ॥
वूहे दे अगौ आइ मैनू टप्पे गाइ रिझावदा ।
"ब्रजनिधि" पर कुरबान करी जिंद एही मुराद पुजावदा ॥१८६॥

हजू अड़ाना

कृपा करौ माधौ अब मोपै हौं हरि भाँतिन तेरौ ।
जब सेवक कौ कष्ट परो तब नैकु न करी अबेरौ ॥
करन सहाय हरन संकट प्रभु मो तन क्यों नहि हेरौ ।
दीनबंधु करुनाकर "ब्रजनिधि" जानौ चरनन चेरौ ॥१८७॥

गोविंद हौं चरनन कौ चेरौ ।
तुम बिन और कौन रच्छिक है या जग मैं अब मेरौ ॥
द्रुपदसुता-गजराज-अरज सुनि आए तुरत करी न अबेरौ ।
सब बिधि काज सँवारे "ब्रजनिधि" करुनासिंधु बिरद है तेरौ ॥१८८॥

विहाग

तुम बिन करै कौन सहाय ।
विपति दारुन तुव कृपा बिन नाहिं आन उपाय ॥
इंद्र कीनौ कोप जब ब्रज बोरिबे के काज ।
गर्व गारि सुरेस कौ कर धरि लयो गिरिराज ॥
अब न वार अवार की है करौ बिनय सुनाय ।
लाज मेरी तोहि "ब्रजनिधि" खेद मेटौ धाय ॥१८९॥

साँवरे मो मन लगनि लगाई ।
नटवर भेष किए बनमाली इत ह्वै निकस्यो आई ।

मो तन चितै अधर धरि वंसी सुर भरि गौरी गाई ॥
अरी भटू "व्रजनिधि" निरखे बिन क्यों हू रह्यो न जाई ॥१९०॥

मैं कहीं कहा अब कृपा तुम्हारी ।
याहि कृपा करि गुर मैं पाए जगन्नाथ उपकारी ॥
जातें मेरी लगन लगी है ताको देत मिला री ।
"व्रजनिधि" राज साँवरो ढोटा ताकौ दिए बता री ॥१९१॥

रेखता कलिंगड़ा

कोई इस्क मैं न आओ यह इस्क बद बला है ।
हरगिज न होवै सरद जो इस आग मैं जला है ॥१९२॥

रेखता

वह साँवला सलोना सरसार[1] हो रहा है ।
आखों मे आसनाई का गुलजार हो रहा है ॥
अपनी हुसनहवा से हुसियार हो रहा है ।
खिलवत के रंगरस से रिझवार हो रहा है ॥
साहिब सहूर सेती सरदार हो रहा है ।
महरम मुसाहिबों का दरबार हो रहा है ॥
दिल का दिमाक सबसे इकसार हो रहा है ।
रसि रासि राधे तुमसे लाचार हो रहा है ॥१९३॥

राग ईमन

महबूब तेरी बंदगी मुझसे बनी नहीं ।
अफसोस मेरे दिल में रहै अब करूँगा क्या ॥

---

(१) सरसार = सरशार, मस्त ।

अपनी तरफ देख कै जो करम नहीं करौ।
तौ जहान मे कहौ मैं करूँगा क्या॥
तेरे फिराक में मुझे न होश कुछ रहा।
बेताब हो रहा हूँ देखे बिन करूँगा क्या॥
इस गुनहगार पर जो तू महर टुक करै।
तो "ब्रजनिधि" प्यारे मुझे करना रहैगा क्या॥१९४॥

रेखता

जब से पीया है आसकी का जाम।
खुद बखुद दिल हुआ है बंदये स्याम॥
जो थे दुख सब जहान के छूटे।
जब से कीया कबूल तेरा दाम॥
चस्म तेरे को जिसने देखा है।
मीन खंजन से नहिं उसे कुछ काम॥
रैन-दिन गुजरै याद में तेरी।
एकदम नाम बिन न है आराम॥
किससे जाकर कहूँ मैं दर्द अपना।
हो कोई जा कहै मेरा पैगाम॥
दिल तड़पता है हुस्न तेरे को।
कब मिलेगा मुझे सलोना स्याम॥
अब तो जल्दी से आ दरस दीजै।
जो इनायत किया है "ब्रजनिधि" नाम॥१९५॥

छबीला साँवला सुंदर बना है नंद का लाला।
यही ब्रज मैं नजर आया जपौं जिस नाम की माला॥
अनोखा रंग है नुशतर नहीं ऐसा कोई भू पर।
देखूँ जिसको उसै पटतर पिये है प्रेम का प्याला।

सुरख चीरा सजा सिर पर कलंगी की अदा बेहतर।
लटक तुर्रे की आलातर लड़ी मोती की छवि जाला॥
तिलक केसर का माथे पर फवी है नाक मे बेसर।
अधर अंगूर हैं शोरीं दसन-छवि सब सेती[1] आला॥
बड़ी आँखें रसीली हैं भवैं बाँकी सजीली हैं।
जुलफ मुख पर छवीली हैं फिरै कुंजो में मतवाला॥
बड़े मोती हैं कानों मे कहाँ क्या कहि बखानौं मैं।
लटैं आ लिपटी दानों में असी पर नाग की बाला॥
जरद बागा सुहाया है झलक सब अंग छाया है।
दुपट्टे को बनाया है गले सों लै बगल डाला॥
गले हारावली सोहैं भुजैं[2] भुजबंद मन मोहैं।
वदन बंसी सरस सोहै गोया सिंगार-परनाला॥
कमर ऊपर बजै किंकिनि सुरख सूथन पै बूटी घन।
मनो दीपावली रोशन झमक निकसा है उजियाला॥
चरन मे बाजते नूपुर नहीं इसकी कोई सरवर।
आओ प्यारे हिये अंदर चलन गजराज की चाला॥
कहूँ क्या कद जु है खुशतर नहीं तुझसे कोई ऊपर।
मिहर "ब्रजनिधि" तू ऐसी कर न गुजरै एकदम ठाला॥१८६॥

रेखता (अन्य चाल)

सरद की रैनि जब आई, मधुर बंसी की धुनि छाई।
रसीली तान जब गाई, सुनत ब्रजबाल अकुलाई॥
बिथा मन मैन की जागी, सबै सुधि देह की भागी।
हिये में अजक सी लागी, पिया के प्रेम में पागी॥

---

(१) पाठांतर—सर्व पर। (२) पाठांतर—भुजा।

महा बेदनि बढ़ी भारी, टरै नहिं नेक हू टारी[1]।
करैं[2] उपचार सब नारी, बिथा किनहू न निर्धारी ॥
गुनी और[3] बैद पचि हारे, डसी यह नाग अति कारे।
दिए बहु भाँति के भारे, किए जे जतन हैं सारे ॥
चतुर सखि[4] मंत्र यों कीनो, गई जहाँ लाल रँगभीनो।
प्रिया कौ प्रेम कहि दीनो, कन्हाई संग लै लीनो ॥
रसिक बनि गारडू आए, दसा सुनि वेगिही धाए।
जरी संजीवनी लाए, मुरलिका में कछू गाए ॥
उठी तब चौंकि कै प्यारी, लखे दृग खोलि बनवारी।
गई बेदनि जु ही सारी, सखी मिलि लेत बलिहारी ॥
पिया ने अंग सिंगारे, झमकि मंडल पै पग धारे।
भए नूपुर के झनकारे, बजे बाजंत्र सुभ न्यारे ॥
कहूँ कहा नृत्य-चतुराई, सुलफ गति सरस दरसाई।
चुटीली रागिनी गाई, रह्यौ आनंद बन छाई ॥
रसिक या रीति को जानें, कहा सठ कोउ पहचाने।
रहैं जे प्रेम में साने, तेई "व्रजनिधि" के मन माने ॥१८७॥

रेखता (कलिंगड़ा)

इस दर्द की दारू कहाँ कोई हकीम पास।
जो आइ नब्ज देखै सो छोड़ता है आस ॥
यह इश्क बद बला है जिसको लगी है आन।
तिसको न सूझता है कोई भला जहान ॥

---

(१) पाठांतर—महा बेदन है तन भारी, लगी यह विरह-बीमारी।
(२) पाठांतर—किए। (३) पाठांतर—जे। (४) पाठांतर—सखी वर।

महबूब की जुदाई मुझसे न सही जाय[1] ।
यह मर्ज है अनोखा किससे कहूँ सुनाय[2] ॥
जब से नजर पड़ा है "ब्रजनिधि" सलोना स्याम ।
तब से नहीं रहा है मुझको किसी से काम ॥१९८॥

दोहा

नैनन के पलरा करौं डाँड़ो मोह अनूप ।
हित चित सों तौल्यौ करौं "ब्रजनिधि" स्याम सरूप ॥१९९॥

पद (बधाई)

ब्रज-मंडल में आज बधाई रे ।
गोकुल की दिसि होत कुलाहल बजत सुरनि सहनाई रे ॥
रानी जसुमति ढोटा जायो आनँद की निधि आई रे ।
"ब्रजनिधि" नंद महर बाबा की कहा कहौं भाग-निकाई रे ॥२००॥

सोरठ

नौबति आज बजति बरसाने ।
ब्रजरानी मिलि गावति नाचति देति बधाई भाने ॥
प्रकटी कीरति लली गोप सुनि फूले फिरत अमाने ।
हेरी दै दै गाइ खिलावत केसरि मुख लपटाने ॥
आनँद की बरखा बरखी ब्रज जसुमति-नँद हरखाने ।
"ब्रजनिधि" सुनत ललन पलना मैं मंद-मुसकि किलकाने ॥२०१॥

रेखता

खिलारी खतम करने को अजब सज-धज से आता है ।
सिरोही सैफ[3] सी आँखें चुहल सेती चलाता है ॥

---

(१) पाठांतर—सही न जाई । (२) पाठांतर—कहौं सुनाई ।
(३) सिरोही सैफ=सिरोही की तलवार ।

घुमक घुघुकट गुमक सेती सुलफ डफ को बजाता है।
रँगीले ख्याल होरी के गजब गुरूरे से गाता है॥
लिए शैतान का लशकर अगर-बूका उड़ाता है।
घुमड़ कर कर गुलालन की अतर चोवा चुचाता है॥
अजायब इश्कबाजी से नई गजलें बनाता है।
मेरा दिल हैल करने को छिपी बातें सुनाता है॥
मुझे दिखलाय दम दम में बदन बीड़े चबाता है।
निगह के रूबरू मेरे कमर-गरदन नचाता है॥
हुआ रस रासि से नटवर मुकट की लटक लाता है।
अपने को भी भला है क्यों चला यह बख्त जाता है॥२०२॥

पद

को जानै मेरे या मन की।
रटना लाग रही चातक ज्यों सुंदर छैल साँवरे घन की॥
जब से दृष्टि परे मनमोहन दसा भई यह सुध ना तन की।
मोहि सखी लै चल "ब्रजनिधि" जहाँ बहै गैल श्रीबृंदावन की॥२०३॥

इति श्रीमन्महाराजाधिराज महाराज राजेंद्र श्री सवाई
प्रतापसिंहदेव-विरचितं हरि-पद-संग्रह
संपूर्णम् शुभम्

---

(२३) रेखता-संग्रह

रेखता (चाल दूसरी)

कोई इश्क मे न आओ यह इश्क बदबला है।
हर्गिज न होवै सई जो इस आग मे जला है॥
यह इश्क नाग जिसके आकर लगावै डंक।
मंतर न हो मुवस्सर यह जहर क्या बला है॥
इस काली के डसे की कहाँ कीजिए पुकार।
तूही खबर ले आके काली तैं दलमला है॥
तड़फैं हैं रैन-दिन हमे छिन कल नहीं पड़े।
ज्यों माही[1] बिना पानी आ देख तो भला है॥
"व्रजनिधि" कहाय करके हमे छोड़ क्यों दिया।
जो दिल में था यही तो पहले से क्यों छला है॥ १॥

सखि एक साँवरे से चार चश्म जब हुई हैं।
ताकत जु ता कहूँ फिर नहिं ख्वाब निस छुई हैं॥
रँग जाफरानी जिसके कजदार सिर लपेटा।
छवि चंद्रिका-हलन की गोया मैन का चपेटा॥
अबरू[2] कजद्रुम कमाँ से जख्म सीने में भया है।
जंजीर जुल्फ की में दिल कैद हो गया है॥
उस चश्म की निगह से धीरज रखै सु को ती।
वेसर करै जु वे-सर दुरदुर बुलाक-मोती॥
उसकी सहज हँसी में अरी और का मरन है।
"व्रजनिधि" मिलाय मुझको वह साँवरे वरन है॥ २॥

---

(१) माही = मछली। (२) अबरू = भौंह।

अहा बनी किसोरी की अजब लावन्यता लोनी।
करैं तारीफ क्या इसकी हुई ऐसी न फिर होनी॥
गुही बेनी अजब सज से न छवि का पार कुछ पाया।
जकरिके मुश्क संकू से गोया रसराज लटकाया॥
छबीली बीच पेशानी बनी है आड़ मृगमद की।
या मन्मथ राज ने सीढ़ी रची है रूप के नद की॥
न कुछ कहना है अबरू का विलासी रस्म के घर हैं।
और ये नैन अनियारे गोया रसराज के सर हैं॥
गुलिस्ताँ हुस्न के विच में चमन द्वै कर्न की सोहैं।
लसे हैं कर्नफूलन से न क्यों मोहन का मन मोहैं॥
इसी बुस्ताँ में रौनक है जु नासा सर्व की ऐसी।
सकै तो सिफत करि इसकी सु वह फहमीद है कैसी॥
कपोलन की करै तारीफ जिसका दिल अदीसा है।
व लेकिन कुछ कहा चहिए लसैं जनु हलवी सीसा है॥
हँसे दंदान दमकन का अचानक नूर यों बरसै।
परैं बर अक्स सीने पर कि मोती-माल सी दरसै॥
जकन के चाह औड़े में चमक है नीलमनि कैसी।
कहैं तमसील जब इसकी कि पैदा होय तब तैसी॥
गले तमसील देने को सु किस तमसील को छीवैं।
कि रखिके जिस गुलू यों हीं सलोने श्याम से जीवैं॥
छबीले दस्तबाजू की जु यह तमसील पाई है।
कि कंचन-कोकनद जु मृनाल कंचन की लगाई है॥
कहूँ तारीफ क्या तन की जु सिर-ता-पा अजब इकसाँ।
वही जानैं मुकर्रब की कि हैं हमराज महरम जाँ॥
चरन-नख-चंद्रिका ऐसी कि महतावी में रलि जावैं।

जड़े इलमास मानक में जगामग जेब को पावैं ॥
सजे रहैं नीलपट जेवर फिरावैं कर कमल गहिके।
अपर है खौफ दिल मे यह मबादा लग पवन लहिके ॥
जुबाँ तो चश्म नहिं रक्खै न कुछ चलता बिचारी का।
न चश्मैं ये जुबाँ रक्खैं कहैं औसाफ प्यारी का ॥
निकाई गौर सिख-नख की जु किससे जात गाई है ?
सु ऐसी लाडिली "ब्रजनिधि" लला भागन सों पाई है ॥ ३ ॥

रेखता (खम्माच, भूपाली अथवा भैरवी, सिंध)

दीदे मनमोहनी जोरी गोरी स्याम रूपरास[1]।
पुरनूर पुरगुरूर खुशजहूर खुशलिबास ॥
हर्दो हम्-आगोश वे मसनद पै बैठे आय।
मसनद भी उनकी जेब से जु रही जेब पाय ॥
होके चार चश्म परे हुस्न के कमंद।
उरझे नहीं सुरझ सके फँदे इश्क फंद ॥
पीके हुस्न-जाम को सरशार हो रहे।
कैफ अजब कैफ गुलू आनके गहे ॥
घिरी चारि तरफ से जंबूरि आय मस्त।
आप ही अलमस्त जब उठावै कौन दस्त ॥
हर्दु ही चकोर और हर्दु माहताब।
हर्दु ही मुकर्रर अरविंद आफताब ॥
हर्दु ही सजंजल या हैं वो अलिकल्हार।
हर्दु जानवेंन गोया कहकहा दीवार ॥

---

(१) यह वजन में भारी है। 'दीद मोहनी जोरी गोरी स्याम रूपरास' ऐसा पाठ ठीक हो सकता है।—सं०।

मैं तो इसी तर्ज देखि आई उस मकान।
नादिर जु जोरी जिसका कादिर है निगहवान॥
चहिए इनके किस्से को हजारों जुबाँ-गोश।
कहिए कहाँ लौं "ब्रजनिधि" अब रहिए खामोश॥ ४ ॥

रेखता (जंगला, झिंझौटी, पीलू, भैरवी)

श्याम सलोना मन दा मोहना नंदकुमार पियारा वे।
मोर-मुकुट सिर चंदन खोरैं कानन कुंडलवारा वे॥
सोंधैं भीनी अलकैं छूटीं गल मोतियन दे हारा वे।
वंसी बजावत शीरीं वानूँ जमुना कूल किनारा वे॥
पीत पिछौरी कटिया बाँधे नूपुर बजत अपारा वे।
"ब्रजनिधि" रूप अनूप निहारा गोवर्धन को धारा वे॥ ५ ॥

रेखता (परज, कलिंगड़ा)

मैं चाहती हूँ दिल से सजन लग जा मेरे गल से।
विन देखे जान जाती है रहती है इश्क बल से॥
पकड़ा है दिल को मेरे क्या खूब करके छल से।
जलती हूँ बिरह तेरे रहती न और कल से॥
दिन-रैनि यों तलफती ज्यों मीन बिना जल से।
चश्मों में खुब रही है सूरत तेरी अवल से॥
बेहोश हो रही हूँ तुझ हुस्न के अमल से।
यह आरजू है मेरी "ब्रजनिधि" मिलो फजल से॥ ६ ॥

रेखता अन्य (पहाड़ी, सोहनी, बराडी)

इस ही जुदाई बीच में हम हाय मर गए।
क्या खूब दरस देके चश्मो में फिर गए॥
क्या तीखी बान लेके दिल को जो हर गए।
"ब्रजनिधि" सलोना साँवरे टोना सा कर गए॥

रेखता (हिंडोल, बरवा, कान्हरा)

तुम विन पियारे हमने और किसी को न जाना।
जो तेरे दिल में होय सो हमको हुकम बजाना॥
अपने अमाने यार को हर भाँति कर रिझाना।
"व्रजनिधि" पियारा साँवरा है हुस्न का खजाना॥ ७॥

रेखता (सोहनी, सिंध, भैरवी, जंगला)

जानी पियारे तुम विन अब रहा नहीं जाता।
इक पलक भर जुदाई का दुख गहा नहीं जाता॥
दिल तड़फता है "व्रजनिधि" अब सहा नहीं जाता[1]॥ ८॥

रेखता (बड़हस)

राधे पियारी तुम तो टोना सा कर गई हो।
ये साँवरे सलोने के तुम दिल को हर गई हो॥
ये यार के चश्मों पै तुम ही जु अर गई हो।
"व्रजनिधि" पियारे जानी के दिल मे जु भर गई हो॥ ९॥

रेखता (जंगला)

अरे वेदर्द दिल जानी लगा तुझ ही से मेरा जी।
बला इस इश्क की आफत भला मुझको जु तैंने दी॥
हुआ वेताब दिल मेरा रही नहिं मुझको कुछ सुधि भी।
अरे "व्रजनिधि" लगीं अँखियाँ जभी से लाज सब विधि गी॥ १०॥

---

(१) इसम एक पाद (मिसरा) कम है। 'यह दर्द मेरे दिल का कुछ कहा नहीं जाता' ऐसा चर्सा हो सकता है।—सं०।

रेखता (कामोद, केदारा)

तेरे हुसन का प्यारे मैं क्या करूँ बखान।
तुझ पर कुरबान वारी फेरी मेरी जान॥
बंसी माहि लेता है शीरीं अनोखी तान।
"ब्रजनिधि" मिहर-नजर कर दीदार दीजे दान॥ ११॥

रेखता (परज कलिंगड़ा, जोगिया परज)

प्यारे सजन सलोने मैं बंदी भई तेरी।
क्या खूब दरस देके बिन दामों लई चेरी॥
तेरी जुदायगी से सब सुधि गई है मेरी।
"ब्रजनिधि" मिलन के कारज ब्रज में दई है फेरी॥ १२॥

रेखता (भूपाली, ईमन)

तुझ इश्क का पियारे गल विच पड़ा है फंदा।
यह दर्द नहीं जानैं दुनिया करै है निंदा॥
वारौं बदन के ऊपर मैं कोटि कोटि चंदा।
प्रानों से प्यारे "ब्रजनिधि" मुझे जानिएगा बंदा॥ १३॥

रेखता (रामकली)

बंसीवारे प्यारे मुझसे क्या झगरूरी करना है।
तू फरजंद नंद दा तुझसे क्या सन्मुख हो अरना है॥
तैंने भी बस सख्त बख्त में लिया हमारा सरना है।
"ब्रजनिधि" प्रानपियारे तुझसे अब काहे को डरना है॥ १४॥

रेखता (सोहनी)

इस इश्क के दरद का अब क्या उपाव करना।
महबूब के बिरह से शब-रोज दुख को भरना॥
आतिश लगी है दिल के विच सूझता है मरना।
"ब्रजनिधि" पियारे जानी अब इश्क से क्या टरना॥ १५॥

रेखता (जोगिया)

आओ सजन पियारे तू लाग मोरे गल से।
चश्मों में रस रही है सूरत अजब अमल से॥
जलती हूँ बिरह तेरे खोई हूँ सब अकल से।
"व्रजनिधि" किसी बहाने जल्दी मिलोगे छल से॥ १६॥

रेखता (खम्माच, ताल दादरा)

इस इश्क बीच मुझको तैंने दिवाना कीता[1]।
तेरी अजब अदा ने दिल को ब-जोर[2] जीता॥
तेरे बिरह से मुझ पर क्या क्या कहर न बीता।
ताले बुलँद[3] से पाया "व्रजनिधि" सरीसा मीता॥ १७॥

रेखता

तेरे हुस्न का बयान मुझसे कहा नहीं जाता।
क्या खूब अदा लेके तू जमुना-तट पै आता॥
सब ब्रज की गोपियों के तू ही जु दिल में भाता।
"व्रजनिधि" पियारे जानी बंसी मे गोरी[4] गाता॥ १८॥
सुबह-शाम स्याम तुझ फिराक में जी अटका।
······का फंद करके मुझपै जु आन पटका॥
× × × × ।
"व्रजनिधि" मिलैं तो खूब नहीं रहगा[5] दिल मे खटका॥ १९॥
उस सजन की गली में मुझको अराम होगा।
बन-ठन के (उस) साँवरे का वहाँ खास-आम होगा॥
चश्मों के पावने का फल जो तमाम होगा।
"व्रजनिधि" के दरस सेती सब मेरा काम होगा॥ २०॥

---

(१) कीता = किया। (२) ब-जोर = बलपूर्वक। (३) इसमें चौथे पद में 'पाया' की जगह 'मिला' पढ़ने से 'बुलंद' पूरे तौर पर उच्चरित हो सकता है।—सं०। (४) गोरी = गौरी (रागिनी)। (५) रहगा = रहेगा।

साँवरे सलोने मैं तेरा हूँ गुलाम।
तू ही है मेरा साहिब नहिं और से कुछ काम॥
तेरे फजल किए से जब दिल को हो अराम।
"ब्रजनिधि" दरस को तकते नित सुबह को हो शाम॥ २१॥

देखूँ नहीं जो तुझको पल कल भी नहीं रहती।
तेरे विरह के दुख को शब-रोज रहूँ सहती॥
इन चश्मों से जलधार चली जाती है जु बहती।
"ब्रजनिधि" मिलन के कारन छतिया रहै है दहती॥ २२॥

सब दिन हुआ[1] तलफते अब तो इधर भी चेतो।
दिल को जु पकड़ लीना छिन नाहिं लगी लेतो[2]॥
हम पर कहर करो मत जीना हि चहिए येतो।
"ब्रजनिधि" दरस भी दोगे मुदतो भई है कहतो॥ २३॥

इस गर्मि के हि अंदर तुम कहाँ चले हो प्यारे।
हमसे नजर चुराके तुम जाते हो किनारे॥
वह ऐसी कौन प्यारी जिसके जु घर सिधारे।
टुक मिहर करके "ब्रजनिधि" कभी इस गली तो आरे॥ २४॥

क्या छवि भरी है मूरति मुख आफताव देखैं।
क्या खुश बने जु चश्मैं बिच सुरमे दी हैं रेखैं॥
महबूब के दरस बिन जाता है जी अलेखैं[3]।
"ब्रजनिधि" तिहारे कारन कीए अनेक भेखैं[4]॥ २५॥

---

(१) पाठांतर—गया। (२) लेतो = लेने में। (३) अलेखैं = बे-हिसाब, नाहक। (४) भेखैं = वेश-धारण, जन्म-धारण।

हम पर मिहर भी करके अब तो इधर भी चेतो।
टुक मिहर की नजर से मुझ तर्फ देख ले तो॥
शब-रोज तड़फती हूँ जीऊँ दिदार दे तो।
दुख दफै होय "ब्रजनिधि" जो तू करम[1] करै तो॥ २६॥

नंद दा घटोना[2] वंसी मधुर सुर बजावै।
जोबन में आप छाका रसभीनी तान गावै॥
गति ले चलै जु ढब सो हम उसके सरन आवैं।
"ब्रजनिधि" सों ये ही अर्ज कभी नेक दरस पावैं॥ २७॥

उसको मैं देखा जब से नहीं और नजर आता।
दुनिया के बीच तब से छिन भी नहीं सुहाता॥
शब-रोज तड़फती हूँ नहि आब-खुर[3] भी भाता।
अब पाया मैंने खाविंद "ब्रजनिधि" सरीसा दाता॥ २८॥

मैं इश्क में हूँ तेरे मुझसे नहीं है होश।
हुस्न की अवाई[4] का मुझ पर पड़ा है जोश॥
बंकी[5] चितौन[6] सेती दिल को लिया है खोस।
टुक दरस दीजे "ब्रजनिधि" अब माफ करके रोस॥ २९॥

गोबिदचंद दीदे[7] अजब धज से आवता।
पोशाक जाफरानी[8] वंसी बजावता॥
बूटी गुलाल रंगारंग जामे ये फबी।
मूठी अबीर तक तक सीने लगावता॥

---

(१) करम = कृपा। (२) घटोना = ढोटा, लाला। (३) आब-खुर = अन्न-जल, खाना-पीना। (४) अवाई = शोर, जोर। (५) बंकी = बाँकी, तिरछी। (६) चितौन = निगाह। (७) दीदे = दर्शन। (८) जाफरानी = केसरिया।

दर दस्त कनक-पिचकी भरि रंग केसरी।
दिल चाहता उसी को आकर भिजावता॥
मदहोश मस्त होली में ऐसा जु क्या कहूँ।
कुछ शर्म लाज किसी की दिल में न लावता॥
है कौन ऐसा ब्रज में इसको मने करै।
यह छैल है अमाना "ब्रजनिधि" कहावता॥ ३० ॥

अब क्या करूँ री आली उसके इशक ने जीता।
इसका हुसन सलोना मुझको दिवाना कीता॥
दिल को जु पकड़ लीना जैसे हिरन को चीता।
"ब्रजनिधि" जु मिहर करके बिन दाम मोल लीता॥ ३१ ॥

सुंदर सुघर सलोना सिर बाँधनू का चीरा।
भौंहैं कमान बाँकी चश्मे बने हैं तीरा॥
क्या खुश अदा से आता मुख सोहै लाल बीरा।
इक अजब यार देखा "ब्रजनिधि" सरीसा हीरा॥ ३२ ॥

यह नंद दा घटोना क्या खूब करै ख्याल।
बलदेव कृष्न भैया ये जसोदा के लाल॥
रहते हैं ग्वाल संगहि उनके नसीबे भाल।
"ब्रजनिधि" जु नाम हैगा वह कंस के हैं काल॥ ३३ ॥

वह रास रचि के मुझपै डाला है प्रेम-जाल।
तब से न कल पड़ै है मेरा बुरा हवाल॥
दिल के जु बीच मेरे उस मुरलि के हैं साल।
बेदर्द ! दर्द बूझो "ब्रजनिधि" करो निहाल॥ ३४ ॥

इस नंद दे ने मुझको मायल किया है क्या क्या।
क्या ऐंडी चाल चलता जोबन के मद में छाक्या॥

टुक मिहर नहीं करता मैं अर्ज करके थाक्या।
"व्रजनिधि" जु दर्द समझो सब जानते पै या क्या ॥३५॥

सब फिर जगत को देखा तू ही नजर मे आया।
फिर और नहिं सुहाता तू ही जु दिल में भाया॥
सब दीखे हैं जु मेरे तेरी कृपा की माया।
मिहर करके "व्रजनिधि" तू रख चरन की छाया ॥३६॥

इश्क की अनूठी बात अति कठिन है यारो।
दिल को जु बाँध करके फिर आप ही जुहारो॥
माशूक की रजा सों फिर मारो गोया वारो।
"व्रजनिधि" को सीस दीया तऊ नाहीं निरवारो॥ ३७॥

कुरबान करूँ मुख पर महताब आफताब।
जब बैठि निकस कुर्सी पै होय बेहिजाब॥
उस खूबसूरती का जुबाँ क्या करै जवाब।
कफे-पाय देख करके खिजिल हो गया गुलाब॥
उस नाजनी के देखने की चाह शबो-रोज।
जो ला मिलावै उसे जान-बख्शि का सवाब॥
मैं हो रहा हूँ मह्व[1] मुझे ध्यान लग रहा।
देखे बिना नहीं खुश आता है नानो-आब॥
"व्रजनिधि" ने कहा कोई जल्दी करो उपाव।
जो आ मिले वो प्यारी मुझे अब घड़ी शिताब[2] ॥ ३८॥

जिहाँ बेदार होते ही फजर ही आप आए हो।
जु रति के चिह्न हैं परगट भले नीके छिपाए हो॥
चलो हो चाल अलबेली कदम कहिं का कहीं पड़ता।
खुमारी से भरी अँखियाँ कहो शब किन जगाए हो॥

---

(१) मह्व = मुग्ध, मग्न। (२) शिताब = जल्द, तेज़।

मुँदी सी जात ये पलकैं सरस अहवाल कहती हैं।
कहो हो बात अलसानी सिथिलता अंग छाए हो ॥
करो हो बतबनी एती खबर तन की नहीं रखते।
पितांबर खोय के प्यारे निलांबर क्यों ले आए हो ॥
कहूँ कहना कहूँ रहना अजब यह चाल पकड़ी है।
जु चाहो सो करो "ब्रजनिधि" मेरे तो मन में भाए हो ॥ ३९ ॥

रेखता (श्याम-कल्याण, भूपाली)

अफसोस उसी दिन का जिस दिन लगन लगी है।
जब नजर भरके देखा आतिश-विरह जगी है॥
फिर और नहीं भाता जो स्याम रंग रँगी है।
"ब्रजनिधि" तुम्हारे कदमो अब जान आ लगी है॥ ४० ॥

रेखता

आज शब बेकरारी मे गुजरी।
प्यारे की इंतिजारी में गुजरी॥
न लगी इक पलक पलक से पलक।
बैठे ही आफताब आया झलक॥
क्या कहूँ कौन सुनै मेरा दर्द।
विरह-आतिश में मैं ह्वै रही जर्द॥
आगे भी कोई इश्क अनुरागा है।
या मुझे ही यह रोग उठके लागा है॥
आब-खुर कुछ नहीं सुहाता है।
एक "ब्रजनिधि" (पिया) का मिलना भाता है॥ ४१ ॥

अफसोस उसी दिन का जिस दिन लगन लगी।
उस बेवफा की दोस्ती किस्मत मेरी जगी ॥
मेरे रतन से मन को ले दे गया दगा।
ऐयार की ऐयारी से रह गई ठगी॥

धीरज धरम उठाया जब नेह को बढ़ाया।
कुछ सूझा नहीं मुझको मुझे लाज तजि भगी॥
घर-बाहर नहि भाया वह साँवला सुहाया।
टुक भी न चैन पाया रहूँ नेह में पगी॥
अब है जु कोई ऐसा मेरी मदद करै।
"ब्रजनिधि" से मिलाकर करै मुझको रगमगी॥४२॥

जानी जु तेरे इश्क में क्या कहर खैंचे हैं।
तेरी दरस की खातिर जी अमाँ बेचे हैं॥
गिल्लेगुजारी सबकी हम सिर पै ऐंचे हैं।
"ब्रजनिधि" दरयाव दिल का अँखियाँ उलेचे हैं॥४३॥

दिलदार यार जी का मुझ घर को नहीं आता।
है क्या गुनाह मुझमें जो दूर ही से जाता॥
शब-रोज तड़फती हूँ कुछ भी नहीं सुहाता।
बेपीर हैगा "ब्रजनिधि" टुक मिहर नहीं लाता॥४४॥

दर ख्वाब मुझे दाद सोच दई निर्दई।
तड़फूँ हूँ बेकरारी में बस बावरी भई॥
खोया हवास होश-व जा किस सेती कहूँ।
आतिश विरह की मेरे तन-मन मे आ छई॥
पैगाम आया प्यारे का सुन खुरमी हुई।
सद शुक्र बजा लाई भला अब तो सुधि लई॥
पूछे थी हकीकत मैं "ब्रजनिधि" की जुबानी।
कि इतने में कहा कि नहीं पाती पिया दई॥
पाती लगाय छाती से बैठी थी बाँचने।
खुलने न पाई खाम मेरी आँख खुल गई॥ ४५॥

तुझ चश्म का जु तीर हुआ है जिगर के पार।
तड़फूँ हूँ पड़ी तब से जख्मी हूँ बे-शुमार॥
यह चोट है अनोखी जाती कही नहीं है।
धीरज धरम शरम की नहि कुछ रही सँभार॥
इस दर्द का इलाज नहीं सूझता मुझे।
बेदर्द दीसते हो किससे करूँ पुकार॥
तेरे बिरह में जानी नहिं होश अब रहा है।
तू आय हाय "ब्रजनिधि" मेरी दसा सँभार॥ ४६॥

सलोनी साँवली सूरत रही दिल में मेरे बसके।
ठगौरी सी हुई मुझको कहा जब से तू आ हँसके॥
तबस्सुम[1] इस कदर प्यारा न हूजे एकदम न्यारा।
यही है आरजू मेरी कदम से मन न छिन खसके॥
तफज्जुल[2] जो किया मुझपै सिफत उसकी नहीं होती।
करो दिलजान अब ऐसी जुदाई उर में ना कसके॥
करी जो दस्तगीरी तो निबाहे ही बने प्यारे।
कहो जी किधर हम जावें मुहब्बत-जाल में फँसके॥
अब ए "ब्रजनिधि" मेरी सुनिए मेरे ऐबों को ना गिनिए।
दरस दीजे हमेशे ही दरस बिन जान-मन ससके॥४७॥

अब बात क्या कहूँ जी मुझमें न रही ताकत।
दीदार देके अपना छुड़ा बिरह की शराकत॥
छिन चैन नहीं मुझको बिन देखे वह नजाकत।
दे दरस अपना "ब्रजनिधि" जिससे मिटै हलाकत॥४८॥

बैठे हैं तख्त हीरे के प्यारी पिया निहार।
पोशाक बादले की हीरो के मुकट धार॥
जेवर सभी खुला है हमरंग चाँदिनी।

(१) तबस्सुम = मुसकान। (२) तफज्जुल = बड़ाई, उदारता।

क्या चमचमा रहे हैं गल मोतियों के हार ॥
बर फर्श चाँदनी के डाला कवर मुकेस।
कुछ अक्स माह के की सोभा भई अपार ॥
इस अक्स माह के को प्रतिबिंब नहीं जानो।
आया है कदम-बोसे को घर रूप बे-शुमार ॥
चल न सका थक रहा जहाँ था तहाँ।
नख-चंद्र देख करके नहीं सुधि रही सँभार ॥
इस छवि से दरस पाय सखी जन हरख कहैं।
यह "ब्रजनिधि" राधे की जोड़ी रहो बरकरार ॥४९॥

जिन करो भूलके कोई इश्क ने घर घने घाले।
कमावे इसको सोई जो पीवै खून के प्याले ॥
इश्क मे आय परवाना शमे ऊपर बदन जालै।
जिनों "ब्रजनिधि" को देखा है सही है इन्हों के ताले ॥५०॥

मैं हाय क्या कहूँ जी मुझे इश्क बे-शुमार।
उस जानी के दरस बिन आँसू चलै हैं जार ॥
अब जीव-दान दे तू सीने से लगके यार।
इक पलक भी कल नाहीं तड़फूँ पड़ी अपार ॥
मेरा हवाल देखो पिय प्रान के अधार।
अब कौन आय बूझै मेरे दरद की सार ॥
रसराज नाम पाकर नाहक लगाओ बार।
कुछ लाज दिल में कीजे अपने की अब विचार ॥
अब तो यही है लाजिम राखो चरन की लार।
बरजोर होके "ब्रजनिधि" गल्ल विच पड़ा है हार ॥५१॥

ऐ यार तेरे गम को शब-रोज ही सहौं।
इस इश्क के दरद को अब जा किसे कहौं ॥

सब हया-शर्म छाँड़ तेरे कदमों मे रहौं।
कभी वह भी दिन सु होगा "व्रजनिधि" सी निधि लहौं ॥५२॥

छंद भुजंगप्रयात (कल्याण, भूपाली)

जुबाँ एक सो मैं करौं क्या बड़ाई।
हजारों जुबाँ से न जाती सु गाई॥
उसी राधिका पास दूती पठाई।
सखी जाय उनको जु संकेत लाई॥
दुरी दूर ही सों जु दीनी दिखाई।
सु आमदनी देखि आँखें सिराई॥
झमंकेरु दौरे सु आए कन्हाई।
उते हीय में राधिका हू उम्हाई॥
छके मीत की प्रीति परतीत आई[1]।
उसी तर्फ को आप वेगी सिधाई॥
मिले दौरि दोऊ दिलों में सिहावें।
इन्हों की कहो ओपमा कौन पावें॥
दई ने यहै प्रीति आँखों दिखाई।
दुहूँ के दिलों की लगन पूर पाई॥
गई दूर दोऊन की ढीठसाई।
दिलों की भई है सु अच्छी सफाई॥
जुराफा सु ज्यों दिल दुहूँ एक कीना।
उसी औसरों चैन ले चैन दीना॥
सखी बोलती है वधाई वधाई।
जुबां से परे प्रेमगाथा न गाई॥

---

(१) पाठांतर—पाई।

लली राधिका खूब है कीर्त्तिजाई।
हुसन्नों समो सोभ काहू न पाई॥
उते कान्ह हैं खूब चाभैं हैं बीरा।
हुसन्नों लखे काम वारै सरीरा॥
जरी का जु चीरा झलकैं बतानां।
किलंगी लगी खूब मोती का दाना॥
मुरस्से[1] जु का हार बागा सुहाना।
छबीली छवी देख मो दिल लुभाना॥
छिपी मूर्त्ति ही सो प्रगट हो दिखाई।
जमीं सो सबै ही उसी रंग छाई॥
सिरी राधिका जान है सो उसी का।
सदा रंगभीना बना लाड़ली का॥
उसी की सभी बेद में कीर्त्ति गाई।
फिरै है जहाँ में उसी की दुहाई॥
जुबाँ से उसी की जु तारीफ गाऊँ।
उसी को भली भाँति खूबै रिझाऊँ॥
वही नंदजू का जु बेटा कहाया।
उसी ने सुघर नाम "ब्रजनिधि" जु पाया[2] ॥ ५३ ॥

रेखता

मैं तेरे मुख पै सदके रोशन हुसन दिखा रे।
तुझ देखने का इश्क मुझे गजब हो लगा रे॥
जब चश्मों भरके देखा सब दुनिया सों जुदा रे।
"ब्रजनिधि" तिहारे ऊपर यह जान है फिदा रे॥ ५४ ॥

---

(१) मुरस्से = जड़ाव किया गया। (२) पाठांतर—"ब्रजोनिद्धि" नामो उसी ने जु पाया।

बरजोर होके दिल को बहुतेरा थाम रक्खा।
अब दिल जो नहीं रहता है शराब इश्क चक्खा॥
जिन जिगर का कबाब किया आप ही जु भक्खा।
फिर और नहीं भाता "ब्रजनिधि" पियारा लक्खा॥ ५५॥

दरियाव इश्क[1] के में मैं जाता हूँ बुड़ा।
मिलता नहीं है थाह होश देखते उड़ा॥
है कौन दस्तगीर जुदाई से दे छुड़ा।
"ब्रजनिधि" के चरन माहिं मैं निस-दिन रहूँ लुड़ा॥५६॥

रेखता (भाव पंचाध्यायी का, आसावरी, परज, जोगिया)

विरह कि वेदन बढ़ी है तन में, आह का धूवाँ चढ़ा गगन में।
पिया का खोज कहूँ नहिं पाया, ढूँढ़ फिरी सब बन-उपवन में॥
देखे हैं सब तरु अरु वेली, नजर न आया सुनो सहेली।
छाँड़ अकेली मुझको हेली, कहाँ छिपा जा कुंज सघन में॥
व्याकुल हूँ छिन चैन नहीं है, मेरी दसा नहिं जाइ कही है।
दिल्ल हकीकत कही न जावे, आय फँसी हूँ कौन लगन मे॥
चित्र-लिखी सी रहि गई ठाढ़ो, गही सोच ने मति अति गाढ़ी।
दिया विरह उर अंतर बाढ़ो, कहूँ कहा नहिं बने कहन में॥
तपत जीव की तपन बुझाओ, सीतलता हिय मे उपजाओ।
"ब्रजनिधि" को कोई आन मिलाओ, तौ सुख उपजै मेरे मन में॥५७॥

तेरे हुस्न का बयान कोई क्या करेगा प्यारे।
तेरे मुख के आगे चंदा शर्मिंदा हो रहा रे॥
तेरी ऐंड़ भरी चाल मे मन चाल हो गया रे।
तेरे देखे बिन दिल को आराम नहिं जरा रे॥

---

(१) पाठांतर—दिरह।

देखा है तुझे जब से रहै चश्मो में भरा रे।
तेरे जुल्फ के फंदे बिच मैं बँधा हूँ खरा रे॥
तेरे इश्क बेशुमार बीच रहा हूँ घिरा रे।
अब मिहर करके "ब्रजनिधि" दीदार तो दिखा रे॥५८॥

तू है बड़ा खिलारी मैं हूँ खिलौना तेरा।
ज्यों बाजीगर की पुतली फिरता हूँ तेरा फेरा॥
है तार थार हाथ और भरम है बखेरा।
चाहो सो करो "ब्रजनिधि" कुछ बस नहीं है मेरा॥५९॥

उस साँवरे बिन मुझको कुछ भी नहीं सुहाता।
जित देखती हूँ तित ही वो ही नजर मे आता॥
इक पलक भर जुदाई मुझे सही ना परै।
मेरी नींद भी गई है नहिं खान-पान भाता॥
वह नंद का है छौना मन का है मोहना।
अब सबको छाँड़ मैंने उससे किया है नाता॥
यह दर्द है अनोखा अब जाय कैसे कहिए।
बेदर्द कौन समझै यह बावरी है बाता॥
छिन कल भी नहीं परती मुझे क्या हुआ री आली।
अब तो मिलन हुए बिन सब तन जला ही जाता॥
उसकी अदा ने मुझको घायल किया है दिल को।
उसके दरस का फाहा मरहम ही घा लगाता॥
रखती हूँ जो बिसात कोई दम की जिंदगी।
यह जान है निसार जो आवै अदा दिखाता॥
"ब्रजनिधि" जो बेवफा है अब हाय क्या करूँ।
यह हाल हैगा मेरा जिसपै मिहर न लाता॥६०॥

अब ते। जु आ फँसा है दिल जाने-इश्क माहीं।
कुछ वस नहीं है मेरा कर दिल में है नुमाहीं॥
गुस्ते से आ पड़ा हूँ तुझ यार की गली में।
तुझे नंद की कसम है मेरी पकड़ ले बाहीं॥
वह वृंदावन सगन में मुझको दिखाई दीनी।
जब ही से जादू डारा सब सुधि गई भुलाहीं॥
जमुना के तट पैं आता बंसी सरस बजाता।
रँगभीनी तान गाता छकि देखता है छाहीं॥
मनमोहना त्रिभंगी वह साँवरा सा साजन।
जब से नजर पड़ा है रहे चश्मों बीच झाँहीं॥
तुझ हुस्न का बयान कोई कर सके न प्यारे।
यह जान है निसार तू जल्दी से आ मिलाहीं॥
यह इश्क की जु आफत मुझ पर पड़ी है जालिम।
अब ते। जु मिहर करके मेरी पकड़ ले बाहीं॥
इक साँस की भी ताकत मुझमें रही नहीं है।
अब आह! क्या कहूँ मैं अच्छा जु यह सुहाहीं॥
जिस दिन लगन लगी है "व्रजनिधि" पियारे तुझसों।
तब से न कुछ सुहाता घरि छिन हू कल भी नाहीं॥८१॥

इश्क ते। आ पडा गल मे कहो क्या कठिन जीना है।
इसे करता अजब मुशकिल ख्वामखा जहर पीना है॥
जिन्हें मद इश्क पीना है तिन्हें सिर अपना दीना है।
इश्क को जान लीना है जिगर को टूक कीना है॥
लगा जो इश्क अब सच्चा दिखाना क्या करीना है।
निकासी तेग अब्रू की झलकता क्या पसीना है॥
लगाकर बाढ़ यह अच्छा जु हम पै वार कीना है।
इश्क खेत से ना जाय किया आगे को सीना है॥

लगा है घाव से तड़फै पड़ा जल विन जु मीना है।
अजब अहवाल है मेरा कहाँ लौं करौं बीना है॥
× × × × ×।
लगा है दिल जो "व्रजनिधि" सों उसी रँग में जु भीना है॥६२॥

ऐ सख्त दिल के सख्त सुखन हमे मत सुना।
लाया है ज्ञान पोथी कहाँ सेति रख छिपा॥
जो आय तुझे ज्ञान-जोग पूछै तो कहो।
विन पूछी कहिकै हमको नाहक मती सता॥
तू किससे कहता है तेरी कौन सुनता है।
हमे विरह-आग लग रही है सिर सेती ता पा॥
हैं जख्म वेशुमार नहीं ताब बात की।
तड़फैं हैं वेकरार विना देखे उस पिया॥
जो कहि सकै तो ऊधो एते सँदेस कहियो।
"व्रजनिधि" जो नाम है तो व्रज की खबर ले आ॥६३॥

तुझको मैं देखा जब से, तब ही से दिल फिदा है।
मोहा है मेरे मन को वह अजब धज अदा है॥
तू हैगा वेवफाई मैं हो गया तसद्दुक[1]।
तू ही नजर मे आया मेरा तो तू खुदा है॥
तुझ इश्क बीच तन तो जब जलके खाक हूआ।
किस वास्ते पियारे मुझसे जु तू जुदा है॥
रसभीनी तान लेकर जादू सा पटकै झाला।
अब हाय क्या करूँ मैं यह दाव किन बदा है॥
तुझ हुस्न का ही फंदा गल बीच मेरे हैगा।
फिर चश्म-तीर मारा सीने में आ भिदा है॥

---

(१) तसद्दक = निछावर।

हा ! आह ! पड़े तड़फैं घायल हैं बेशुमार ।
इस इश्क-खेत बिच में सब तन-बदन छिदा है ॥
यह नाहिं रही ताकत तुझ दर्स बिन जु जीवै ।
अब आरजू है "ब्रजनिधि" सुधि जल्द ले सदा है ॥६४॥

इश्क का नाम दुनिया मे न लीजे ।
इश्क की राह मे तन जान छीजे ॥
कदम इस राह में हर्गिज न रखिए ।
अगर रखिए तो सिर का कदम कीजे ॥
इश्क की राह में चलके न टलिए ।
ज्यों परवाना शमा में जान दीजे ॥
इश्क में आ किसी ने सुख न पाया ।
जहाँ भर जाम खून अपने को पीजे ॥
लगै है बात गुरजन की सनाँ[1] सी ।
बिना दीदार "ब्रजनिधि" क्योंके जीजे ॥६५॥

छिन में छला है दिल को उस मोहना पिया ने ।
उस देखे बिना अब तो मैं पल भी ना जियाने ॥
उस बेवफा ने मुझको टुक दिल भी ना दिया ने ।
देख उसे होश रखै कौन से सखा ने ॥
जिनके नजर पड़ा है उनमे कहाँ हया ने ।
हरचंद आरजू में सबके रहा मैं छाने ॥
इस तर्फ को गुजारा तो भी कभी किया ने ।
बंसी की रंगभीनी जब से सुनी थी ताने ॥
तब से न कुछ सुहाता प्रानन किए पयाने ।
यह दर्द हैगा जालिम जिसके लगै सो जाने ॥
अब तो खबर ले मेरी मति हो रहो अयाने ।

(१) सनाँ = भाला, नेजा ।

आफत करी है मुझ पर इस इश्क की खुदा ने ॥
तू सख्त है सलोने मेरा दरद लिया ने ।
हा हा करै है बंदी अब तक कदम छिया ने ॥
× × × × × ।
बजोर होके मिलना "ब्रजनिधि" जु ये नयाने ॥६६॥

हाय ! तेरे गम मे आह ! मैं तो मर गया ।
हुआ हूँ जग से न्यारा तू अँखियों में फिर गया ॥
तुझ इश्क की बलाय मेरे दिल में भर गया ।
"ब्रजनिधि" के कदमों वीच आय अब तो अर गया ॥६७॥

आशिक के मन की बातें महबूब नहीं मानै ।
इस जुल्म की फर्याद कहो किससे जा बखानैं ॥
बेदर्द बेवफा है माशूक हमारा ।
बेपीर पीर दीगर क्यों करके पिछानै ॥
हम खोया है आपे को उसकी जु राह में ।
वह हुस्न के गरूर में मेरी कछू न जानै ॥
ऐसी करै विधाता कहिं लागैं उसकी आँखैं ।
तब कद्र आशिकों की कुछ दिल के बीच आनै ॥
"ब्रजनिधि" पिया से जा कहै कोई मेरी हकीकत ।
शायद कि सुनके रहमदिली कुछ तो जी मे ठानै ॥६८॥

जु करना इश्क का खोटा रहै दिल जान का टोटा ।
लगी अब चश्म आ उनसे वही जो नंद दा ढोटा ॥
हा हा मिन्नत बहुत खाई पड़ा कदमों में जा लोटा ।
तऊ ना मिहर दिल आई करे इस पर चशम चोटा ॥
कहाँ तक इंतिजारी में रखूँ दिल के तईं ओटा ।
बिथा यह मैं नहीं जानी नहीं यह काम है छोटा ॥

चढ़ा तुझ हुस्न के झूले लगा है इश्क का झोटा।
मेरी मैं जान थी सादत[1] अबै दिल जान ना ओटा[2] ॥
× × × × × ।
रखो कदमों में अब "ब्रजनिधि" लिया है सरन मैं मोटा ॥६९॥

अरे इस इश्क को हर्गिज कभी तू भूलके ना कर।
परैगी भूल तन मन की भुलैयों का बड़ा चक्कर ॥
अजब वह लाग इसकी है तू उसमें जायकर मत पर।
किया है इश्क को जिसने हुआ है खाक सब तन जर ॥
पिया जिन इश्क का प्याला रहा है वह कभी का मर।
जिकर यह साँच ही जानो मैं कहता हूँ तुम्हें फिर फिर ॥
परे ना घाव नक्शों में लगा दिल चश्म का वो सर।
मरम उसकी वहाँ रहती जहाँ है नंद दा वो घर ॥
उसे कोई अबै लाओ अजब है साँवला सुंदर।
लगा है दिल जु उस माहाँ रँगीली राधिका का वर ॥
करो मेरी खबर उसको मेरे सब दुःख लेगा हर।
शरम सब नाखि "ब्रजनिधि" पै गुनाह दरगुजर मेरा कर ॥७०॥

दिल पै जु मेरे आके क्या क्या गुजरती है।
शाहिद खुदा है मेरा कल नाहि परती है ॥
शोला नहीं है तन में आतश उझलती है।
सब सखियाँ मिलके मेरे संदल जु मलती हैं ॥
उस इश्क के विरह से अब जान जलती है।
जो कुछ जतन करौ हौ सो सबै गलती है ॥
वह नंद का सलोना चाह उस पै चलती है।
"ब्रजनिधि" को नहीं जाना मुसक्यान छलती है ॥७१॥

---

(१) सादत = नेकी। (२) ओट = आड़।

तुझ बिना मुझको बेकरारी है।
मेरी अँखियों से झर सा जारी है॥
क्यों न हो चाक चाक मेरा दिल।
शोख का नाज तीर कारी है॥
यकू[1] निगह से किया है मस्त मुझे।
इसकी अँखियों में क्या खुमारी है॥
मंद मुसकान ने किया मदहोश।
क्या अजब अदा इसने धारी है॥
वही बड़भाग[2] इस जमाने मे।
जिनने "ब्रजनिधि" की छबि निहारी है॥७२॥

फरजंद नंदजी का वह साँवला सलोना।
सिर पर रँगीन फैंटा दिल का निपट लगोना॥
महबूब खूबसूरत अँखियाँ हैं पुर-खुमारी।
अबरू-कमाँ से जाँ पर करता है तीर कारी॥
गल सोहै तंग नीमा बूटों की छबि है न्यारी।
बाँधा कमर दुपट्टा तहाँ बाँसुरी सुधारी॥
सोंधे सनी अतर से छुटि पेचदार जुल्फैं।
आशिक चकोर अँखियाँ कहो कब लगावैं कुल्फैं॥
लटकीली चाल आवै गावै मजे की तानैं।
"ब्रजनिधि" की अदा भारी जानैं हैं सोही जानैं॥७३॥

सुंदर सुघर सलोना सोहन मनमोहन वह हुस्न उजारा।
खूबी खूब खुमार चश्म में अजब सजा दिलदार पियारा॥
सिर फबि फैंटा जर्द असेठा तुर्रा धर इक सजदा।

(१) पाठांतर=इस। (२) पाठांतर=बड़भागी।

जग जेवर जगमगदा जाहर बदन पड़ा इक धजदा ॥
नीमा अँग का तंग सुर्ख रँग मदन गर्द कर दीना।
दुपटा सबज गजब रँग मन को कबज अजब ढब कीना ॥
कंचन-बूटी चमक अनूठी सूथन सुथरी झमकै।
जिन उसदा दीदार लिया है और कहूँ नहिं रमकै ॥
उस बिन छिन कल नाहिन रहती कहो मैं कैसे जोया।
"चरन-कमल-मकरंद-मधुप हो परस-सरस-रस पोया ॥"
ताले बहाल उसीदे हैंगे कदम जिनों यह छीया।
"व्रजनिधि" पर मैं फिदा होयके नजराने सिर दीया ॥७४॥

शब जगे की खुमार सुबह नजरों आ पड़ी है।
दिलदार दिल में प्यारी कहो कौन सी खड़ी है ॥
फिर और ना सुहाती वो चश्मो में अड़ी है।
"व्रजनिधि" के मन भरी है वह टरति ना घड़ी है ॥ ७५ ॥

अरे प्यारे किया क्या तैंने मेरा दिल किया घायल।
उसी दिन रास के अंदर अजब धज से बजी पायल ॥
जभी से मैं हुआ फिदवी रहूँ दीदार का कायल।
है ख्वाहिश आरजू ये ही मिलै "व्रजनिधि" जु छंआयल ॥७६॥

रेखता (ईमन, मालश्री, परतो)

फाग में जो लाग को सब को जनाते हो।
क्या कहूँ मैं हाय तुम आलम दिखाते हो ॥
दिल बेकरार होके मुख से अबीर मलना।
बेसत्र की जु बातें हमको न भावै चलना ॥
जो देखता जहान है ये क्या कहैंगे तुमको।
घूँघट नहीं उघारो रुसवा करैंगे हमको ॥

"ब्रजनिधि" जु आप प्यारे एतो बरजोरि, क्या रे।
हम सब तेरे से हारे छूटी हैं हा हा खा रे ॥७७॥

रेखता (ईमन, पस्तो, ख्याल होली)

ब्रजराज कुँवर देखा जब से होश ना रहा है।
वह सज अजब अदा है मुँह से कहा न जा है॥
इश्क पूर हुस्न नूर साँवला सलोना।
जिसकी नजर पड़ा है गोया कर दिया है टोना॥
जर्द फेंटा सिर पर आलम गरद करै है।
नीमा जरद फबा है दिल पै करद धरै है॥
जर्द वह दुपट्टा मन को जले झपट्टा।
कर ले पिचकि पट्टा मन्मथ दिया है हट्टा॥
खुश तन वदन जो देख मदन का न रहै पन।
होरी के खेल बीच चल के आता बन के ठन॥
उसकी गुलाल मूठि जाय जिसपै जो परै है।
बेहाल हो परै है तन चटपटी करै है॥
लखि फाग के जु ख्याल को निहाल ह्वै खरी हैं।
ब्रजबाल मस्तहाल जाल लाल के परी हैं॥
धीरज धरम करम की हया दूर ले धरी हैं।
"ब्रजनिधि" की रंग-रस की मुसक्यान मे हरी हैं॥७८॥

रेखता (धनाश्री, पस्तो, ख्याल)

नंद के फर्जंद जू का मुखड़ा खूब चंद।
हसन मंद दसन फंद जिंद कीनी बंद॥
गत्का लेन अजब छंद देखे मिटे दुःख-दंद।
"ब्रजनिधि" आनंदकंद हुसन अति बुलंद॥७९॥

रेखता

जश्न का हुस्न है मोहन जहाँ ये जाय वसी हैं।
वरजोर होके मुझसे वहाँ चश्म फँसी हैं॥
दिलको फसाय के झुइ (?) स्याम रंग जसी हैं।
सव कब्ज करने को ही "व्रजनिधि" की हँसी है। ८०॥

दीदार की भी यार कभी दाद करो।
मुझे अपना जान जानी कभी याद करो॥
किरपा जु करके अब तो वंसी-नाद करो।
"व्रजनिधि" पियारे मिलिकै दिल आवाद करो॥८१॥

पियारे क्या किया तैंने नजर इक ही में दिल लीया।
खुमारी खूब चस्मों में पूर् मदहत-सरा[1] दीया॥
अदा पट की अजव झटकी जिगर पर जख्म तैं कीया।
हुस्न मगरूर देखे विन कहो जी क्योंकि जा जीया॥
तुजक[2] है नूर का वेहतर रहो जुल्फें अतर में तर।
जु लेता तान हो नटवर औ मुरली अधर पै धरकर॥
सदफ[3] है हुस्न हुसियारी नाज उसकी में है मन गर्क।
जभी सों देखा है उसको सभी दुनिया को कीनी वर्क॥
अनोखी मर्क है उसकी हिया धरकत जु रहती सर्क।
मिले "व्रजनिध" जु एही हर्ष कृपा को वर्षि के इत टर्क॥८२॥

कभी तो बोल रे प्यारे नहीं बोले मेरी क्या गत।
तेरे दीदार देखन की दिलों में लागि है ये लत॥
इता भी सख्त करना मन न लाजिम आहि तू करि मत।
अरे "व्रजनिधि" मेरी गलियों कभी तो आय भी, यहाँ खत॥८३॥

---

(१) मदहत-सरा = प्रशंसा करनेवाला। (२) तुजक = शान-शौकत।
(३) सदफ = सीपी।

सच कहे बनैगी हमसे कहाँ लगा जु दिल।
चस्म उसके बस में रस में तिस बिना नहि कल॥
शब जगे की खुमार हैगी चलने में हलचल।
कहना क्याऽरु करना क्या जी खूब सीखे छल॥
दूर हुए संग सख्त चश्मों आगे जल।
उसके संग अंग मलना हमसे झूठी लल॥
टल के हमसे गिल्ले उसकी झूठी जुबाँ बल।
बेकदर होना "ब्रजनिधि" आदत पड़ी अव्वल॥८४॥

सिर पर मुकट की क्या अजब सज से चटक है।
कपोल पर जु जुल्फों की क्या खूब लटक है॥
भौंहों की मटक सेती नैन मन की अटक है।
जिसको देखि ठठक रह्या काम का कटक है॥
निरत[1] करत अजब सज से चरन गति पटक है।
झटक लेना पीत पट का दिल की वहाँ भटक है॥
जमुना-तट पै नूर के जहूर की वटक है।
मुरली की तान रंग-रस का स्रवन में गटक है॥
धुनि सुनि के चलीं ब्रज की बाल सटक के झटक है।
लाल अंग संग रटक रही ना हटक है॥
छिटकाय के चली हैं सबको लाज गइ फटक है।
"ब्रजनिधि" बिना न टक है सबकी गई खटक है॥८५॥

है मन-मोहन स्याम सुघर वह चश्मों अंदर हरदम वसिया।
सब्ज हुस्न की अजब सजावट भौंह-कसन मे मन को कसिया॥
खूब खुमार चश्म आलूदह मुझ पर मिहर-निगह करि हँसिया।
मुकट-लटक कुंडल की झलकनि जुल्फें कुटिल भुवंगम डसिया॥
उसकी नजर जु इश्क-बजर सी रूप गजर सा सिर पर पड़िया।

(१) निरत = नृत्य।

वस जैसा वोही नादिर[1] है कादिर[2] ऐसा और न घड़िया ॥
उसकी आन तान लेने पर दिल फिदवी आजिज हो अड़िया।
जालिम जुलुम कहर आलम पर "ब्रजनिधि" अंग अदा से जड़िया ॥८६॥

वस नंद दे फरजंद माहिं दिल रहा है अटका।
चश्मों में पुर-खुमार उसके रूप-मद को गटका ॥
करता है निर्त नादिर वह अजब सज का लटका।
ताथेई थेई करके क्या खुश अदा से मटका ॥
नूपुर बजैं चरन में अरु लचकना हि कट[3] का।
बंसी की धुनि सुनी है जब से दिल कहूँ न भटका ॥
खुश हुस्न खूब हैगा नगधर नवीन नट का।
"ब्रजनिधि" वो रास झटके से मगरूरी वटका वटका ॥८७॥

बाँकी जु छवि है राधा जू की देखे बने जाकि झाँकी।
सुंदर भरी अदा की ताकी मूरति लखि कै मति थाकी ॥
विघनाहि जुहैगा सखि अब उपमा दीजै काकी ?
इसके जु आगे चंदकला लाजती सदा की ॥
रति रंभा उरबसी हू इनके ऊपर फिदा की।
"ब्रजनिधि" पै इनकी नजरों सदा रहती है दया की ॥
× × × × ×।
सच जानो यह हिया की इक आरजो मया की ॥ ८८ ॥

हुस्न का दिमाक अजब धाक से न निकसे वाक[4]।
चश्म-चोट-करता दिल को हरता है कजाक ॥
सुनि मुरलि की जु हाँक जान थकके हुई है चाक।
अदा छवि सों छाक ताक दिल में दे सुजाक ॥
पेशाक सब्ज धज की झुलती बुलाक नाक।
"ब्रजनिधि" की पाय-खाक होना येही हैगा पाक ॥ ८९ ॥

---

(१) नादिर = अद्भुत, विलक्षण। (२) कादिर = शक्तिमान्। (३) कट = कटि, कमर। (४) वाक = वाक्, बोली।

न मिलि के मुझे तैंने पाय-खाक किया।
तुझ देखे बिना यार फटता है हिया॥
इस उमर भर में नहीं कभी कदर छिया।
"ब्रजनिधि" जु मिहर करिके दीदार दिया॥९०॥

यह रेखता है यारो है रेखता।
यह देखता है दिलवर यह देखता॥
यह सच कहै पता है हैगा यह पता।
"ब्रजनिधि" मिलन-मता है सुनो यह मता॥९१॥

दिल देखते ही मेरा बेकरार हुआ।
वह नाज भरे चश्म जिगर पार हुआ॥
बजोर इश्क लाग गले का हार हुआ।
मन दौरि के गुलामी हो को त्यार हुआ॥
ये अवल का रफीक उनका यार हुआ।
उसकी फिराक में ही बेशुमार हुआ॥
सिर से पाँव तक ही उस रंग में इकसार हुआ।
देखने का "ब्रजनिधि" तो भी मैं इंतजार हुआ॥९२॥

अजब धज से आवता है सज सजे सुंदर।
चंद्रिका फहरात धुजा रूप के मंदर॥
चश्मों मारि गर्द करै खूब है हुंदर।
"ब्रजनिधि" अदा भरा है बाहर भी और अंदर॥९३॥

खेलूँगी खुश बहार से तुम संग रंग होली।
नाहक हया के अंदर अब तक रही मैं भोली॥
इस तेरी दोस्ती में सही सबकी बोली-ठोली।
चाहूँगी सोई करूँगी मैं खिलवत की खास खोली॥

अब तो मलूँगी मुख पर अनुराग भरी रोली।
"ब्रजनिधि" जू अंक लूँगी बिन संक प्रीति तोली ॥९४॥

जिस दिन की अदा फिदा हुआ नहीं भूलना।
अजब गजब देखि नूर मिटे हूल ना॥
तेरा दिमाक देख के आलम में मूल ना।
"ब्रजनिधि" की पाय-खाक होना ये कबूलना ॥९५॥

बीमार हो रहा था बेजान बेजवाब।
तेरी निगह से मुझ पर बरसा हयात-आब॥
जख्मी जिलाय जानों फिर क्यों न लो सवाब।
"ब्रजनिधि" मिलन के खातिर हूआ जिगर कबाब ॥९६॥

सरशार हो के शादी में ज्यादो न करना था।
रायजादी राधिका से टुक दिल में डरना था॥
अपने बदस्त बीच दस्त उसका धरना था।
गलबाँही डालि "ब्रजनिधि" क्या अंक भरना था ॥९७॥

शादी में रायजादी से तुमने किया है क्या।
नाजुकबदन की नाज का प्याला पिया है क्या॥
खुशरूह की खूबी का खजाना लिया है क्या।
"ब्रजनिधि" बदस्त उसके दिल को दिया है क्या ॥९८॥

सरशार हो सिंझारे की शादी में आना था।
जा दिन का राधिका का रूप अजब बाना था॥
सब उमर का सवाद जो चश्मों से पाना था।
"ब्रजनिधि" भी उस बहार में दिल का दिवाना था ॥९९॥

गजब तो आन सिर हूआ मेरे दिल को किया तैं कब्ज।
नहीं देखूँ तुझे इकदम रहै है चल-विचल यह नब्ज॥

खुमारी खूब चश्मों मे अजब यह हुस्न हैगा सब्ज ।
अरे "ब्रजनिधि"मैं हूँ फिदवी सुने शीरीं जुबाँ के लफ्ज ॥१००॥

शीरीं जुबाँ सुना के गोया जुलुम किया ।
बंसी की तानें टोना इकदम में दिल लिया ॥
बिन ही गुन्हा जो हमको तुमने दगा दिया ।
अब रखना हैगा "ब्रजनिधि" बिहतर कदम छिया ॥१०१॥

रेखता (भैरवी भूपाली या परजो)

दरद का भी दरद जरा दिल में तो धरो ।
वे-दरद होना नाहिं नजर मिहर की करो ॥
तुम बिनहु कल भी नाहीं अब तो इधर ढरो ।
येती नहीं है लाजिम टुक अल्लाह से डरो ॥
तुमरे नहीं है भावै कोई जीओ या मरो ।
अब तो रहम को कीजे मेरे दुख सबै हरो ॥
"ब्रजनिधि"जूमैं बजोर हो ए कदम आ परजो ।
इस रंग-रँगी मूरत के रँग में रहूँ नित भरजो ॥१०२॥

रेखता

दरद से दिल सरद होके जरद रंग हुआ ।
इश्क कहर जहर सेति अंग तंग हुआ ॥
अदा तेग सेती कातिल से जंग हुआ ।
"ब्रजनिधि" का हुस्न देखि दग मन जो संग हुआ ॥१०३॥
हुस्न मद खुमार सेति जाफ हुआ जालम ।
कैसे छिपाके रक्खूँ जाहिर हुआ है आलम ॥
इश्क लगा साफ जो ऊठी फिराक ज्वालम ।
सब अंग तंग हुआ "ब्रजनिधि" को नहीं मालम ॥१०४॥

आशिक जो देता सिर को माशूक ला मिलावै।
महबूब ऐसा मोहन मुरदे को आ जिलावै॥
खुशचीज अदा-गज्क मुझे हुस्न-मद पिलावै।
हैगा वो कदरदान जो "व्रजनिधिहि" मन मे भावै॥१०५॥

बाँकी नजर जिगर पर करते हो कीमियाँ।
तौ भी मिहर न आती दिलदार जी मियाँ॥
दीदार दे कलेजा रेजा को सी मियाँ।
फिदवी की खबर कुछ भी "व्रजनिधि" न ली मियाँ॥१०६॥

सख्त सुखन सुनकर सूना हुआ बदन।
खुश ख्वाब ना सुहाता उस सजन बिन सदन॥
ली है फकीरी उस पर सो मोहना मदन।
कैसे जु भूलैं "व्रजनिधि" मुसकनि चमक रदन॥१०७॥

उसकी नजर पड़ी है शमशेर ज्यों सिरोही।
इस वार से सु मार होके बचि रही सु को ही॥
सब जब्त हुई कब्ज होके अजब हुस्न मोही।
कातिल जो हैगा "व्रजनिधि" मुझको मिलाओ वोही॥१०८॥

सब्ज हुस्न हैगा आस्मानी सिर पै फेंटा।
हमरंग क्या फ़बा है आलम का दिल समेटा॥
तुर्रा जो धज से सजता मन जब्त करने केंटा।
मुझे गजब होके चिपटा "व्रजनिधि" का इश्क चेंटा॥१०९॥

प्यारे सजन हमारे आ रे तू इस तरफ।
फिरके जु वे सुना रे बंसी के खुश हरफ॥
तुझ हुस्न की झरफ से हूआ बदन बरफ।
"व्रजनिधि" जु जान मेरी सद के करी सरफ॥११०॥

कीया है बंध मुझको गल डाल इश्क-फंद।
वह साँवला सलोना हैगा जु ब्रज का चंद॥
जी चाहता है उसको कुरबान करूँ ज्यंद।
"ब्रजनिधि" जुलफ कमंद बँधा दिल जो दरदबंद॥१११॥

मुझको मिलाव प्यारा अली दम न करो न्यारा।
वो साँवला सुजान हैगा हुस्न का उज्यारा॥
उसकी है लाग मुझको जिस पर जु काम वारा।
जो फज्ल करै "ब्रजनिधि" कर राखूँ चश्म-तारा॥११२॥

छबि कही जात किससे राधा किसोरि की।
खुश जाफरानी रंग अंग झल सी होरि की॥
मुसिकाय चलत लटक सेती उमरि थेरि की।
परवी न कल जो मन को हरत बतियाँ भोरि की॥
सीखी है किस तरह से सब गिरह चोरि की।
देखते ही बसि बाँधे है प्रेम डोरि की॥
हुस्न का उजारा वो जिसपै ठगोरि की।
"ब्रजनिधि" की उसकि खूब सकल मिली जोरि की॥११३॥

कहर पर कहर क्या करना जरा तो मिहर भी करना।
मुकट-धर जान को हरना कहे से भी नहीं टरना॥
खुदा से नेक नहि डरना सबी पर कतल को परना।
हमें हर रोज यह भरना बिरह "ब्रजनिधि" के मे जरना॥११४॥

उस गूजरी ने मुझ पर आँखों का वार कीया।
तलवार सी चलाकर दिल बेकरार कीया॥
फिर फिर के नेजा नाज का सीने के पार कीया।
छेदा है तन-बदन को मन को सु मार कीया॥

फिरता हूँ सिटपटाता मुझे इंतजार कीया।
महरम-दिली से मुझसे टुक भी न प्यार कीया॥
जाहिर हवाल मेरा उसे बार बार कीया।
गिरफ्तार हुआ "ब्रजनिधि" वो भी न यार कीया॥११५॥

उठी लगन की अगन जु दिल बिच भभक रही सब तन माहीं।
जल बल खाक हुई अंदर ही वो भी नजर पड़ी नहि छाहीं॥
खाना ख्वाब आब नहिं भाता चश्मों झरी लगी बरसाहीं।
"ब्रजनिधि"कहर किया जी लीया ले चलि री अब मुझे वहाँ ही॥११६॥

दीदार यार हूआ जब का हूँ मैं फिदा।
तुझ नाज की जु नजरों से मेरा जु मन छिदा॥
तब से न कुछ सुहाता कीनी हया बिदा।
'ब्रजनिधि"की चुभि रही है जिस दिन की खुश अदा॥११७॥

कहि न सकौं कुछ भी दहती हौं शबहि रोज।
देखा है साँवले को दिल मे मिलने की है मौज॥
कहर करिके मुझपै चढ़ी मदन की जु फौज।
"ब्रजनिधि"को ला मिलाय मुझे येही चित्त में चोज॥११८॥

बंसी की सुनी हाँक आ जब से मैं गरद।
हया-शरम दूर करके हूआ बेपरद॥
जब ही से दुनिया सब को कीनी मैं दिल से रद।
दीदार दीजे "ब्रजनिधि" वह हद अदा के कद॥११९॥

गुले गुलाब धरे सिर तुर्रा जरद लपेटा फबा जु खूब।
नीमा तंग मिहीन अंग पर सोन-जुही रँग अजब अजूब।
सबज सजा काँधे पर दुपटा देखि फिदा मिलना मनसूब।
गाता तान मजे की धज से हैगा वो "ब्रजनिधि" महबूब॥१२०॥

देखो दिमाक मेरा मैं कुटनी कहाती हूँ।
जल्दी से जा अछूवी न्यामत ले आती हूँ॥
दिल में सबर ते रक्खो मैं कसम खाती हूँ।
तेरे दरद का दारू लाकर दिखाती हूँ॥
चश्मों से चश्म मिलते ही चेटक लगाती हूँ।
लाखों की आँखों मूँदि के उसही को लाती हूँ॥
उस राधिका रसीली सों अबही मिलाती हूँ।
तुमसे ऽरु उनसे "ब्रजनिधि" सब फैज पाती हूँ॥१२१॥

अब तो तू जाय उसको किस ही तरह से ल्या।
है साँवला सलोना उसकी सिफत कहैां क्या॥
उसके जु मद हुसन को मुझे चश्म होके प्या।
"ब्रजनिधि" मुझे मिलाय अली जीव-दान द्या॥१२२॥

वह हुस्न का जहूर देखा खूब वाह वाह।
उसकी मेरी मिली थी जब निगाह से निगाह॥
तिस दिन से नहिं सुहाता बढ़ी चाह ऊपर चाह।
"ब्रजनिधि" जो मिले मुझको मन उछाह पर उछाह॥१२३॥

वंसी की तान मान मेरे दिल के बिच फँसी।
गल दाम डाल जालिम जुल्फों कमँद कसी॥
जिस पर कटार मारा करि मंद खुश हँसी।
"ब्रजनिधि" की नजर बाँकी मन बाँक है धँसी॥१२४॥

अबरू-कमान खैंचि के जु मारा चश्म-तीर।
जान तो उझलिके चली रहति नहीं धीर॥
इश्क दर्द उमड़ा उठी अनोखी पीर।
मुझको मिलाय वीर तू "ब्रजनिधि" हुसन-अमीर॥१२५॥

बरसात के बहार की शब किस तरह कटेगी।
बीज चमक गाज सुनके छतिया फटेगी॥
बरसने का छमका देखि जान लटेगी।
फौजें चढ़ीं मनोज की "ब्रजनिधि" सों हटेंगी॥१२६॥

कोकिला की कूक सुने हीं मे उठी हूक।
कोयली कुहकावी करती जान पर जो चूक॥
पी पी करै पपीहा ये भी दिल को करै टूक।
मोर करै सोर जोर विरह की भभूक॥
दादुर औ झीली बोल दर्भैं लोन दे कछूक।
इस बख्त सख्त माही "ब्रजनिधि" करौ सलूक॥१२७॥

इस पावस रैन अँधारी अंदर मोहन घन शुभ संगी है।
ऊँची अजब अटारी ऊपर मैं अरु ललित त्रिभंगी है॥
गाजत मेघ फुहारन बरसत हरखि हिये लग रंगी है।
ताले भाल हुए अब मेरे ढँग "ब्रजनिधि" रसजंगी है॥१२८॥

तेरी नागिनि सी ये जुल्फें मेरे दिल को जु डसि गैयाँ।
अधर से जहर में तर थी लहर सब तन में बसि गैयाँ॥
खजाने-हुस्न के ऊपर जु मालिक होय रसि गैयाँ।
अरे "ब्रजनिधि" तेरी अलकों मेरे गलफद फँसि गैयाँ॥१२९॥

तुझको न देखा नजर भर के दिल में रहा सकता।
तुझ हुस्न के जहूर ताब सेती नहीं तकता॥
तुझ धज की अदा सेती मैं तो हो रहा हूँ छकता।
तुझ इश्क बीच "ब्रजनिधि" मैं सिसक सिसक थकता।१३०॥

नटवर की अदा लटपटी दिल चटपटी लगी।
मिलने की मिटी खटपटी मन झटपटी जगी॥

आती है मदन भटभटी औ सटपटी भगी।
"ब्रजनिधि" नटखटी पर मैं अटपटी पगी ॥१३१॥

चरनों मे पड़िके अड़ना यह दिल में तो विचारी।
आलम की हया छाँड़ि के जु मन में यही धारी ॥
ज्यों शमे पर पतंग की सी लागो तुझसे यारी।
हर भाँति कर कहाऊँगी "ब्रजनिधि" तिहारी प्यारी ॥१३२॥

तेरे कदम की खाक हैगी भिश्त[1] से भी विहतर।
है आरजू मुद्दत से राखूँ मैं अपने सिर पर ॥
तेरे मिलन की चाह मेरे दिल में रही भरकर।
जिस दिन की अदा खुभि रही "ब्रजनिधि" हुए थे गिरधर १३३

पान-चूना-कत्था मिलि रंग पाता है।
चूर चूर होकर ये अति चुवाता है ॥
प्यारा पान इश्क का था चूना मिल सुहावा है।
"ब्रजनिधि"की मैं सुप्यारी बीरा यही भाता है ॥१३४॥

कौन फिकर में फजर हि पाए गजर के बाजे नजर हि आए।
हिजर-हकीकत जुबाँहि लाए रूप बजर सा सजर दिखाए ॥
खूब तजर्बा घजलें ब्याए काम-जुजबा इधर दगाए।
गजरि उठे चश्मों दरसाए तो भी "ब्रजनिधि" दिल मे भाए ॥१३५॥

दिलदार दिल का जानी दिल को चुराय लीना।
इक दम में दोस्ती से मन को दबाय दीना ॥
× × × × × ।
अब तो लगै है दावन "ब्रजनिधि" के रँग मे भीना ॥१३६॥

---

(१) भिश्त = बिहिश्त, स्वर्ग।

जगमगि रही किनारी जर जेवरों सिगारी ॥
उमगी है ज्यों उँजारी फूली सी फूल-क्यारी।
बिजली है क्या बिचारी हूरों को वारि डारी ॥
अँखियों मे पुर खुमारी अनुराग की कटारी।
जख्मी किया मुरारी जाहिर हुसन हुस्यारी ॥
मुसकनि में नाज न्यारी वह हैगी जादूगारी।
होता है वारी वारी "ब्रजनिधि" किया बिहारी ॥१३९॥

बखत था अजब वो था रेशनम निकला था खुश हँसके।
बरसता नूर का झर था अदा दामिनि चमक रसके ॥
सब्ज धज का तुजक सज का गजब करता है मन बसके।
गरजना बंसी का सुनके रहा दिल फिदवी हो फँसके ॥
उझक के देखना उसका झझकनी नाज वो कसके।
जी चाहता हैगा मिलने को बिना जल मीन ज्यों सिसके ॥
वही मोहन मिला मुझको जुल्फ से जी लिया डसके।
खड़ा चश्मों मे वो"ब्रजनिधि" अड़ा इकदम भी ना खिसके ॥१४०॥

हुसन का जशन था वेहतर जुलम करता है वो जुलमी।
कतल होते थे तड़फन में अजब ढब का मजा हैगा ॥
निगाह के रूबरू गिरना सिसकना आह नहिं करना।
सनम के शोख चश्मों से यही मरना बजा हैगा ॥
अगर यह जान रहती ना कभी वे-अख्त भी जाती।
लगी माशूक की खातिर खुशी उसकी रजा हैगा ॥
तुजक उस नाज के डर से नजर भर के नहीं देखा।
इसी पर कहता क्यों झाँका जिबे करना[1] सजा हैगा ॥
गजब आदत जु अनखाही वही फरजंद नँद का है।
नहीं देखा गुन्हा[2] मेरा तो भी मुझपर खिजा होगा ॥

(१) जिबे करना = गला रेतकर मार डालना। (२) गुन्हा = गुनाह, पाप।

इसी कहने से मैं जीया भला मुख सुखन तो बोला।
हुआ बावनहजारी मैं जु "ब्रजनिधि" को मजा हैगा ॥१४१॥

बहार हैगि अब्र हैगा हैगी तीज सावन।
गरजता है बरसता है चमकती है दामन ॥
रमकती हैं झमकती हैं मिलके ब्रज की भामन।
झूलती हैं फूलती गाती मजे की तानन ॥
प्रेम हस्ति हूलती मनु जमुना कूल कामन।
मटकती है मजे सेती लटक वो सुहावन ॥
लहर पट को झटक लेना खुश अदा रिझावन।
मोहागार है "ब्रजनिधि" नहि छोड़ता है दावन ॥१४२॥

इश्क के अमल आगे अकल का क्या सम्हल हैगा।
खुमारी इसी की खूनी उमर तक का जलल हैगा ॥
न खाना है न पीना है न सुर्मा कछु लगाना है।
हुए दीदार दिलवर का चढ़ै दूना खिगाना है ॥
न मरना है न जीना है फटे सीने को सीना है।
हुआ दिल तो दिवाना है हुस्न मदमस्त पीना है ॥
कभी हुसियार होता है कभी बेहोश हो जाता।
रहूँ खामोश होकरके ठिकाना कुछ नहीं पाता ॥
दिया टुक नाज का प्याला जुलम जादू सा कर डाला।
वही "ब्रजनिधि" जु नँदवाला मिले सेती खुले ताला ॥१४३॥

माशूक की खुशबोय अजब तुझ बदन में आती ॥
चश्मों में पुरखुमार ले घूँघट में छिपी जाती।
घबराती जिस सबब से तिसही सेती सुहाती।
लागा तेरे बदन में वो ऐसी जु कहाँ पाती ॥

एक दफे फजल करके लग जा मेरी छाती।
मुझको करेगी पाक मेरी रहगी दम हयाती॥
एता भी सुखन सुनती नहीं है मदन की माती।
क्या भेंटा आज "व्रजनिधि" जो ही गुमर दिखाती॥१४४॥

रेखता (भैरवी, देस, झिझौटी, जंगला)

उस दिन रास मजे के माहीं लिए फौज रस छाका है।
उलट पलट गति ले रमऊत है करन लगा अब हाँका है॥
लोट-पोट करता चोटों से चश्म तीर ले ताका है।
अदा-सेल के तुजक तोड़ से किया खूब ही साका है॥
धरम करम सब औ शर्म का थोक थहर के थाका है।
उस जुलमी के जुलम करन का फैला घर घर वाका है॥
लेकर वंसी दस्त अधर धर रंजक फूक झमाका है।
छूटी तान आन के लागी आशिक जिगर धमाका है॥
सह रहना कहना न किसी से जखम अजब ही पाका है।
"व्रजनिधि" है दिलदार यार खुश उसका हुस्न धमाका है॥१४५॥

रेखता

सावनी तीज के माहीं वही मनभावनी आई।
हजारों हूर सी सखियाँ नूर बरसात भर ल्याई॥
चुहल से चोंप ले सजिके खुशी गाती बजाती हैं।
झमक के झूलती हैंगी मनों चपला सी चमकाई॥
खुले हैं बाल रमकन मे लहरिया लहरता सिर पर।
लचकता कमर का कसना मचकना अदा क्या पाई॥
उधर "व्रजनिधि" पियारा भी अकेला आय देखै है।
तसद्दुक हो रहा सद के हुई है खूब मनभाई॥१४६॥
मगज-गढ़ से ये है बेहतर अकल तुम अब निकल जाओ।
हुआ है इश्क सिर हाकिम अबै वो देगा तरकाओ॥

उसी की फौज दीवानी अभी सिर जोर चढ़ि आओ।
करैंगी होश सब बेहोश निकलना जब कहाँ पाओ॥
सनम हुस्नी है शाहनशाहना व उसका कहाँ खाओ।
जुजबाँ मुरली का हैगा तान बारूद मन ताओ॥
अबै बचना सलाह ये ही उसी के मन में दिल लाओ।
वही "ब्रजनिधि" जु नँदवाला जिसे कि रात-दिन ध्याओ॥१४७॥

उसी का बोलना हँसके मेरे भागों का खुलना है।
करी जब यार चश्मों शोख मेरा तब डावाँ डुलना है॥
जरा दीदार भी नाहों हिजर गज सेति घुलना है।
बिना "ब्रजनिधि" जु कल ना है बिरह अध बीच झुलना है॥१४८॥

करिके शोख चश्में सों झाँका अजब हुस्न का बाँका है।
जालिम जुलुम करा आलम पर लेवा दिल करि हाँका है॥
तान मजे की गाता धज से अदा तुजक में छाका है।
"ब्रजनिधि" सब्जरंग अँग खुस मुख लख के चंदहि थाका है॥१४९॥

रेखता (भैरवी)

चश्मों खूब खुमार भरी है सब रतियाँ कहाँ जागी थी।
मुख पर अलक बिथुरि रहि सुघरी रति रँग रस ह्वाँ पागी थी॥
हम जानी अब तू अनुरागी भुज भर छतियाँ लागी थी।
"ब्रजनिधि" छली छल्या बसि कीता तू सबमें बड़भागी थी॥१५०॥

दिलदारों दी दादि यही है जिंद करों क़ुरबानी।
दिल सों दवा देते हैं दिलबर यार नजर सिर ही मिझमानी[1]॥
अक्ल अधर दोउ नैन सुप्यारी पान कपोल लीजिए जानी।
लबों अँगूर पाइए "ब्रजनिधि" दीजे मुझको प्रानहिं दानी॥१५१॥

---

(१) मिझमानी = मेजबानी, आतिथ्य

उस नाजनी के नखरों से नौकर हुआ बिन दाम।
न्यामत से नैन देखे जब से उसी से काम॥
आठ पहर उसको जपना राधे प्यारी नाम।
"ब्रजनिधि" के दिल में अब तो उसके हुसन की खाम॥१५२॥

बेपरवाई करदा नंद दे ये लाजिम मुतलक नहिं तुझको।
पकरि दस्त कदमोंहि लगाया जब से फ़िकर नहीं है मुझको॥
तुम सरने आया सब पाया और तरफ टुक भी नहिं वझको।
करौ ऐब दरगुजरहि मेरे लाजहि "ब्रजनिधि" गिरधर-भुज को॥१५३॥

फरजंद हुआ नंद जू के ताले वो बुलंद।
अजब शकल सब्ज हुस्न नाम ब्रज का चंद॥
देख के महल में खुशी सखियाँ दिलपसंद।
गाती-बजाती आती हैं कर करके छवि का छंद॥
नृत्य करत अजब धज से ब्रज-बधू का वृंद।
नौबत घुरें हैं घुन सी सहनाय सुर समंद॥
जर जेवरों की बखशिश औ दीने हय-गयंद।
लाला की सिफत क्या करूँ मेरी अकल है मंद॥
तन-मन से रीझि भीजिके कुरबान कीतो ज्यंद।
होगा निदान "ब्रजनिधि" आशिक दिलों का फंद॥१५४॥

रेखता (ईमन, पस्तो)

नंद दे फरजंद की फाग किस तरह की है।
गुलाल डालि चश्मो में जीवन मुझे कहै॥
बेसतर होके मटकता है मेरे सनमुख।
भरिके पिचरकी कुमकुमे की आता है इस रुख॥
दे पिचरकी जिगर बीच आप ही मुसक्यावै।
राधे पियारी कहिके मेरा नाम ले ले गावै॥

हूआ निडर दिलों विच यह साँवरा सलोना।
जो इसके मन शरारत सो तो कभी न होना॥
गति लेता है लटकती गाता मजे की ताना।
करता है मन का माना नहिं मानता ग्रमाना॥
"ब्रजनिधि" का झाँकना है आली इश्क का ही फंद।
इस झगड़े माहिं झगड़ा हुआ जिंद कीती वंद॥१५५॥

रेखता

यह नंद दे नीगर से चार चश्म जब मिली है।
उस हुस्न के तुजक की तलवार सी चली है॥
जब ही से जान कतल हुई रहती दलमली है।
दिल बेकरार होके तड़फन उठी बली है॥
इसकी दवा दरस है मन मिलने की झली है।
ब्रजचद के बदन की खुश चाँदनी खिली है॥
अँखियाँ चकोर होके उसही के रँग रली हैं।
मेरा दरद न जानै बे-दरद यों छली है॥
ये भी कहुँ फरोब्ला जु होय यह भली है।
"ब्रजनिधि" की नजर ढलियो जहाँ भान की लली है॥१५६॥

स्याम हुसन पर सजा लपेटा रंग गुलाबी का धजदार।
सुरख चश्म में श्रंजन रंजन भंजन करता इश्क बहार॥
श्रौरत कौन फिदा नहि इस पर मार रखा देखा जब मार।
एरस खूब अजब ढब की है तेग-अदा दिल वारहि पार॥
मोती-हार पड़ा है गल बिच ह्वाँ सब श्रकल करी इनकार।
भौंहों के कसने हँसने में करता दिल को बेअखत्यार॥
जेवर चमक झुमक से चलना पल ना हलना रहना लार।
जिन दीदार लिया उहाँ थका "ब्रजनिधि" है कहकह दीवार[1]॥१५७॥

---

(१) कहकह दीवार = दीवार = कहकहा।

कीया है मुझको बेहया उसकी नजर जबर।
जब से पड़ी है चश्म मुझपै तन की ना खबर॥
उसके हुसन को देखि रखै कौन सा सबर।
नाम उसका सुनते ही बोलन लगै कबर॥
मुझपै चढ़ा है आयके उसका इश्क असर।
बुजरग जो बरजते हैं गाजै शेर ज्यों बबर॥
मैं तो मिलूँगो उससे बको लाख जो लबर।
"ब्रजनिधि" सा इस जहान में हूआ न होगा बर॥१५८॥

रेखता (सोरठ ख्याल तिताला)

निकला है नंदलाला पीले दुपट्टेवाला।
संगो रँगीन ग्वाला जिनके बुलंद ताला॥
तैसी हैं ब्रज की बाला बिजलीन की सी माला।
इकसेति एक आला गाने लगीं धमाला॥
उमड़ा है रंग ख्याला मुख पर मलैं गुलाला।
जिस पर अबीर डाला छबि का पिलाय प्याला॥
हो हो के मस्त हाला अब दिल सो ना निराला।
"ब्रजनिधि" यही गुपाला जीवो हजारों साला॥१५९॥

रेखता (ईमन, पस्तो)

फागन के मौज में अनुराग भरी दिल की लाग।
मैन तन में जाग करी लोक-लाज सबहि त्याग॥
रही प्रेम मगन पागी हैं सबके बुलंद भाग।
मोहन-मिलन का दाग जिगर आई कुंजबाग॥
चंद्रमा सी चपला सी चंपक चिराग सी हैं।
चाँदनी सी खिल रही खुशबोइ में सनी हैं॥

उत नंद-कुँवर आया मनमाना पीय पाया।
हुआ सब के मन का भाया अब रस का झर लगाया॥
होरी की गारी गावैं डफ धौंसा मृदंग बजावैं।
घाँघर चतुर रचावैं गति नाच की मचावैं॥
केसरि अरगजा डारैं कर लै पिचकी मारैं।
इस खेल से न हारैं अब किसके नहीं सारैं॥
उड़ती गुलाल घूमैं मोहन गले सों झूमैं।
अधरन के रस को चूमैं उनमत्त होके घूमैं॥
ब्रजराज घेरि लीना मन माना सोई कीना।
साबित हुआ है जीना "ब्रजनिधि" ने दिल को छीना॥१६०॥

रेखता

बेदर्द कदरदान होय भूल गया सबही।
अपनी तरफ जाना नहिं जाना और ढब ही॥
यह सुखन जो सुनके हम तो मर रहे कब के।
हैंने जु छोड़ी रहमदिली फिकर माहिं तब के॥
तुझ फिराक शोले बदन माहिं उठे भभके।
तेरे ही मुदत[1] के हैं नहीं हम गुलाम अब के॥
तू ही खबर जो लेगा नहीं अब तो जान रब के।
आनाकानि देता क्यों है तू किसी से दबके॥
अरजी हमारी सुनिके दिल को मिहर में लाया।
सब दुख-दरद गवाँया "ब्रजनिधि" पियारा पाया॥१६१॥

उठा था ख्वाब से प्यारा अजब था नूर का झमका।
दुपट्टा लटक से डाला खवे[2] पर खुश अदा चमका॥

---

(१) मुदत=मुद्दत, दीर्घ काल। (२) खवे=कंधे।

पलँग परसे कदम धरके खड़ा आलस को मोड़ा है।
जभी सेती सबज सुंदर मेरे दिल को मरोड़ा है॥
चमन को देखने रमका अजब उसके लबों लाली।
जबै मुसका मेरे सन्मुख गोया फाँसी समर डाली॥
मेरे दिल को कुलफ करके जुलफ-जंजीर से जकड़ा।
हिरन को दौरि ले चीता ज्यूँही मन को जु आ पकड़ा॥
सबै ब्रज-औरतों ऊपर यही जालम करै जुलमी।
मेरे गिरबान के नाई किया इक नजर में कलमी॥
मतालब जानता अपना उसी की है अजब मरजी।
किसी का नाम नहिं लेना कि फिर देखो अजब गरजी॥
वही नँद का जु ढोटा है अजब दिल का जु खोटा है।
कभी कदमों में लोटा है कभी दे प्रीत टोटा है॥
कभी हँसता है मुझसेती कभी अति शोख हो जाता।
जमूरा ज्यों लुहारों का घड़ी ठंढा घड़ी ताता॥
अबै तो बस गया चश्मों अदा की रस्म ना जाती।
मुझे है कस्म उसही की उसी के कहर में माती॥
अरी अब ला मिला उसको वही श्रीकृष्ण कहलावै।
वही "ब्रजनिधि" बिहारी है तान रस तुजक की गावै॥१६२॥

तेरी तड़फन अदा भारी करी दिल नाज की कारी।
तेरी अँखिया है अनियारी मनो यह प्रेम-कट्टारी॥
किया घायल जु गिरधारी जिगर से खून है जारी।
जुलफ-जंजीर गल डारी टरै नहिं किस तरे टारी॥
अजब तेरी वफादारी करन लागी है छँदगारी।
किया हुकमी जु बटपारी खड़ा तुझ कुंज की क्यारी॥
लगी तुझ ध्यान सों तारी रटै मुख राधिका प्यारी।

कहै निस-द्योस ही ला री हुआ नौकर जु कर यारी ॥
अजब तो भाग हुसियारी हुआ "ब्रजनिधि" जो बलिहारी॥१६३॥

लगा झर मेंह का झमका इश्क उस वखत ही चमका।
घटा घनश्याम सी देखी सवज मोहन दिलों रमका॥
अजब ये दामिनी कौंधी गोया वो पीतपट दमका।
सुना है मंद घनघोरा गोया उस मुरली के सम का॥
झनन्झन बोलती झिल्ली चरन उस घूँघरू घमका।
पपीहा बोलता पी पी इधर मुझ पर समर तम का॥
लगे हैं बोलने मुरवा नगारा का मजा लमका।
चली है पौन पुरवाई मदन का अस्फ आ खमका॥
अवै जल्दी मिला उसको नहीं धोखा पड़ा दम का।
खड़ा चश्मों में वो "ब्रजनिधि" काम से दाम ले धमका॥१६४॥

अजब ढब से गजब कीया जुदाई जहर सा दीया।
अवल में हुस्न-मद पीया उसी बिन जाय क्यों जीया॥
किया मोहन कठिन हीया गोया कब ही न था पीया।
हमारा लूटि सब लीया तऊ वे कदम ना छीया॥
कहो कोऊ अवै बीया मरौं हौं हाय मैं तीया।
किया सब कौल सो गीया सल्हा "ब्रजनिधि" को क्या धीया॥१६५॥

अवर तो आ चढ़े सिर पर जान होने लगी अरबर।
गरजता है जुलम कर कर जु जोना होयगा क्योंकर॥
बरसता हैगा लाकर झर किया सीने को वे अपसर।
चमक बिजली की तड़फन पर बदन होने लगा थर थर॥
हवा चलने लगी घर घर परसने सो उठा डर डर।
जु बोले मोर हे तरवर उद्दाई काम की घरघर॥
पपीहा पी कहै दे सर जिगर जखमी हुआ जरजर।

जिसी पर लोन दे दादर टरै नहि एकहू अकसर ॥
जु झिल्लो ना करै आदर फिरैं चहुँ मदन के बहादर।
लगा नहि गल सों आ गिरधर मिलै "ब्रजनिधि" तो है बेहतर॥१६६॥

अरी यह घटा घनघोरी जुजरबा काम ने दागा।
पलकी बीजली रंजक इशक बारूद है लागा॥
चली है बुंद छर्रा ज्यों जिगर में जखम सा लागा।
पवन बाड़ी सी झड़ती है सबै दिल का सबर भागा॥
खुले नीसान से धुरवा मोर तंबूर ज्यों बागा।
झाँझ झींगर है झननाती हुई बंसी कोइल गा गा॥
बजाते आरबी दादर खड़े पलटन के है आगा।
हुआ कबतान ज्यों पावस कहर करने के पन पागा॥
कुमेदानी करै जुगनू लिए कर में मनो खागा।
अजीटन हो रहा चातक करै जुलमान दमु नागा॥
दिया घेरा बदन-गढ़ पर करैंगे प्रान अब तागा।
करै हमराह "ब्रजनिधि" तो मिलै मुझसो जु अनुरागा॥१६७॥

सावन की तीज आई क्या खुश बहार लाई।
पावस करी चढ़ाई रिमझिम झरी लगाई॥
कोइल मलार गाई गरजन मृदंग घाई।
बिजली भी चमचमाई गोया नटी नचाई॥
सबजी जमीं पै छाई मखमल हरी बिछाई।
जिस पर खुली ललाई बूटन जो झलमलाई॥
सीतल पवन सुहाई घर घर हुई बधाई।
मिलि ब्रज की सब लुगाई झुरमुट से गति मचाई॥
झूले पै झमझमाई दामिनि सी जगमगाई।
"ब्रजनिधि" कुँवर कन्हाई मन की मुराद पाई॥१६८॥

करी तैं मुरली को हम पर बड़ा जालम य है दूती।
सुनाई बात तानों में जभी से ह्या सब सूती॥
पिलाया इश्क-मद-प्याला हुई अलमस्त ज्यों तूती।
आई सब उड़िके कदमों में लिए दिल प्यार मजबूती॥
अबै कहने हो क्यों आई दोऊ कुल की सरम ढाई।
कोऊ सुनिकै कहै कुलटा इहाँ यह फैज तुम पाई॥
रवन्ना हो सबै घरको यही मैं ठीक ठहराई।
कहो मतलब है क्या मुझसे सुखन सुनि सोच में छाई॥
चलाया बोल नेजा सा छिदा सबका करेजा सा।
सभी चुप हो रहीं इकदम हुआ तन-बदन रेजा सा॥
गरक अफसोस में हूई मनो निकला है भेजा सा।
चली चश्मों से जल-धारा गिरा है चाह चेजा सा॥
सँभलकर फेरि वे बोलीं भला वे नंद दे लाला।
सुखन ऐसा न कहना था चलाकर चोंप का चाला॥
बुलाने बीच बदकौली जुलम जादू सा पढ़ि डाला।
तुझे जाना था ऊपर से देखा दिल बीच भी काला॥
हुई बेजार जीने से जहर तेरी जुदाई से।
अजब ढब की तेरी आदत मिलै नहिं किस खुदाई से॥
तुही है हुस्न का हुसनी भिदा अब तक न किसही से।
करी बेपरद तैं सबको भरे इस इश्क मिस ही से॥
कहो यह क्या हँसी हैगी तैंने दिल बीच क्या घोली।
लगी हैं जिगर में घातें जु बातें हम नहीं खोली॥
हमारी प्रीति नहि तोली दई तैं उर में आ गोली।
पड़ी थी बीच यह बंसी भली निकली हिये पोली॥
करी परतीत हम इसकी गई सब बदन की लाली।
हुई हैं खल्क से खाली भली तेरी जबाँ हाली॥

रहे नहिं होश संकर का सुने से छुटि पड़ै ताली।
विचारी ब्रज-बधू जिनके बचन की गिरह गल डाली॥
लगी कहने कोई कपटी कोई ठग चोर कहती है।
लँगर लपट कहैं कोई कोई अनबोली रहती है॥
कोई अनखौंहि आँखिन से उसे डरपाया चहती है।
कोई करि भौंह तिरछौंहीं गुसे के बीच बहती है॥
हुआ है नरम गरमी से लगी उनकी अदा प्यारी।
सलोने शोख चश्मों से बहुत पाई वफ़ादारी॥
छका वह हुस्न-मस्ती से लगा कहने बारी बारी।
बड़ा रिझवार मन मोहन दिखाई खूब लाचारी॥
हँसै बोलै मिलै खेलै मिलाए साज तंबूरे।
रचाए राग छत्तीसों चतुर चौंसठि कला पूरे॥
सुलफ गति लेने लागे हैं सुघर सब बात में सूरे।
हुई हैं हर सबै हेरा मदन-रति चरन से चूरे॥
छबीला छैल है "ब्रजनिधि" करौं तारीफ क्या तिसकी।
सदासिव सहचरी हूआ इहाँ तक रमक है जिसकी॥
थका महताब अरु तारे पवन पानी की गति खिसकी।
पता इस शकल कहने को अकल एती कहो किसकी॥१६९॥
नहिं देखा नंद नागर जब सबहि खूब था।
सखियों के साथ जमुना के जाने में डूब था॥
उसके हुसन को दिल जो देखि झाब-झूब था।
तब ही से खाना पीना आब गाब-गूब था॥
दिल शोर जबर जेरदस्त इस सबूब था।
क्या नाज क्या निगाह हुस्न क्या अजूब था॥
उसकी फिराक इश्क से मन तो महजूब था।
"ब्रजनिधि" है नाम जिसका बाँका महबूब था॥१७०॥

रहै दिल बीच में नितही आहि तुझ मिलन का खटका ।
सुना आहट किसी ही की दरीचा दौरि के लटका ॥
नहीं देखा जभी तुझको तभी सिर ईस दे पटका ।
गए सब होश हुसियारी उसी ही बखत से छटका ॥
रही नहि ताब बातों की अबै आता है दम अटका ।
तेरे दीदार का मटका नजर पड़ते ही दिल बटका ॥
तेरी लाली लबों की को रखा इकदम को दम बटका ।
अरे "ब्रजनिधि" जुलम करके इते पर अब किधर सटका ॥१७१॥

लगन में ना मगन हूजे अगन में आहि जलना है ।
जु सिर देते हैं आशिक ह्वै नहीं पड़ता जु टलना है ॥
अदा के लगे तारों से किधर बचि के निकलना है ।
इश्क की राह बाँकी में बिना पैरों से चलना है ॥
हुआ माशूक मुखत्यारी हुकम उस बिन न हलना है ।
खुशी उसकी रजा होवै जिधर ही हमको टलना है ॥
अगर कचो विचारैं तो रहे हाथों का मलना है ।
अड़े "ब्रजनिधि" के कदमों में अबै उस बिन जु थलना है ॥१७२॥

अरे तैं क्या किया लाला तरक करना दरक दीया ।
तेरी अनखौहिं आदत ने मेरे दिल का अरक कीया ॥
तेरा वो मटकना लटका निरत में पट को झट लेना ।
हुई सब देखिकै फिदवी बची ना कौन सी तीया ॥
रचौं सब रंग सबजे में मुझे ही क्या गजब हूआ ।
जिधर देखा तिधर तूही तुही तूही रटे हीया ॥
मेरी इस जिंदगानी को तुझे रखना है जो प्यारे ।
वो तू सीने लगा मुझको अरे "ब्रजनिधि" मेरा पीया ॥१७३॥

दीदार देके यार वो चलता ही रहा।
चश्म भर न देखा इस सोच में जलता ही रहा॥
आहि लिया दिल को शोख मुझसे टलता ही रहा।
इक दम भी नहीं ठहरा मुझको तो वो छलता ही रहा॥
उस इश्क के फिराक में मुझको तो वो तलता ही रहा।
याद उसकी माहीं नैनों से उझलता ही रहा॥
उसकी सिफत को मेरी जुबाँ लब तो हिलता ही रहा।
करके ऊ जुल्मी जालिम हमको तो वो दलता ही रहा॥
छूट सब जहान से मन उसमें टलता ही रहा।
उसके कदम की खाक को सिर अपने को मलता ही रहा॥
कहता था वाह वाह सुखन मुख से निकलता ही रहा।
ऐसा भी गजब करके "ब्रजनिधि" तो मचलता ही रहा॥१७४॥

रही खामोश मैं कब की जुबाँ तुझ इश्क ने खोली।
गरजना मेह का सुनकर ज्यों दादुर की खुलै बोली॥
मेरा जीना है तुझही सों नहीं तैं बात यह तोली।
रहै मछली कहो क्योंकर जुदाई-जहर-जल-घोली॥
किया था कौल मिलने का भला निकला तू बदकोली।
हिरन को डालके चारा शिकारी ज्यों दई गोली॥
कहूँ क्या क्या तरह तेरी जुलम कर छतियाँ वैं छोली।
खिलारी तू बड़ा "ब्रजनिधि" विचारी मैं अरे भोली॥१७५॥

तेरे कदम की खाक में लुटता था हवा होकर।
तू खूब गति को लेकर देता था पाय-ठोकर॥
दिल तो हुआ है मेरा तेरा कदीम नौकर।
खाना व ख्वाब खिलवत खलकत का ख्याल खोकर॥

अब आहि कब मिलोगे दिल का गुबार धोकर।
तन मन से पन से "ब्रजनिधि" रख अपने रँग समोकर ॥१७६॥

उसी दिन रास में नाचा सोई अब खेल बिच आया।
सबज सुंदर अजब कुल्ली गजब गुबूरे में गरराया ॥
मटकके खुशअदा चमका लटक से दुपटा फहराया।
चरन गति सुलफ ले रमका सखिन सब बीच थहराया ॥
सबन के दिल को इक समूचे निगाह करते हि बहराया।
बजाता दस्त से डफ को मजे की तान ले गाया ॥
झुका जोबन की मस्ती में छकाछक रंग बरसाया।
हुई सरशार सब औरत पड़ी उस छैल की छाया ॥
भला इस तरफ आने में अमाने यार को पाया।
डरो जिन कोउ "ब्रजनिधि" से करो हिलमिल के मनभाया ॥१७७॥

सरशार ना हुए हैं मुहब्बत का भरके जाम।
वे दीन में न दुनिया में हूए सिरफ निकाम ॥
खलक सेऽरु मिल्लत से रहता वो जुदा।
मुहब्बत से नहीं दूर है बालाय अज खुदा ॥
आशिकी का फंद गल मे पाय हुआ बंद।
छूटे जहान बंद अकलमंद वो बुलंद ॥
उसकी अदाए-तेग से मरना यही बजा।
इस जीवने का यारो निहायत है बेमजा ॥
महताब सनम देखिके चुगते चकोर आग।
उनको यही हयात-आब इश्क दिल की लाग ॥
पंजे को चूमि लेना सग यार की गली का।
यह अजब देखो "ब्रजनिधि" इस इश्क का सलीका ॥१७८॥

हैगा मनो बहार में गुलजार खुश खिला।
सीतल सुगंध मंद पवन खूब ही चला॥
करते हैं भँवर गुंज मनो मदन के लला।
कोइल अवाज कर कर हम सबका दिल छला॥
खेलता जु नंद पौरि होरी साँवला।
जिस पर अबीर डाला उसका कुल-धरम टला॥
जिस पर पड़ी गुलाल गई लाज की कला।
जिस पर अरगजा डाला उसको मदन दलमला॥
जिसको पिचरकि मारी तिसका उस पै दिल ढला।
जिसके लगाया चोवा स्याम रँग मे मन रला॥
जिसके अतर लगाया उसकी प्रीत की सला।
जिसके लगाया संदल उसका विरह जला॥
तिसके मुसक लगाई उठी प्रेम तन झला।
केसरि लगाई जिसका अनुराग ना हला॥
डाला गुलाल जिसपै चमन इश्क का फला।
चहले पड़ा है मन जु कीच-हुस्न में डला॥
अब तो जु उसके पीतपट का पकड़ि लो पला।
"ब्रजनिधि" के हिलने-मिलने का यह बखत है भला॥१७९॥

देखा चमकता जुगनू उस शोख के गले में।
वो भी चमक रहा है हाय मेरे दिल जले मे॥
मुझको पटक दिया है भरि नाज के नले मे।
"ब्रजनिधि" लिया है मन को बाँधि पीतपट-पले मे॥१८०॥

तेरे कदम को छीना मेरे दिल में यह इरादा।
दीदार की भी दाद तू मुझको नहीं दिरादा॥
तुझ आगे दर्द मेरा दफे कोई ले फिरादा।
जिस पर भी शोख "ब्रजनिधि" तू चश्म ना भिरादा॥१८१॥

हुआ कुछ खेल के माई न जानौं क्या किया सोई।
परी इस छैल की छाई जभी से इश्क की झाई॥
चलाया कुमकुमा मुझपर हुआ दिल जब से वे अपतर।
लगा मनु काम दा वे सर[1] गई जबसे हया सब डर॥
दई जब जिगर पिचकारी गोया भुरकी अजब डारी।
टरै नहिं किस तरै टारी गजब है हुस्न-हुशियारी॥
दस्त ले डफ बजावै है अजब ही तान गावै है।
मेरे मन को चुरावै है वहो "ब्रजनिधि" जु भावै है॥१८२॥

रेखता (मारू, पस्तो)

गुलदावदी की फाग अजब खेल रहा है।
गेंद हजारे का फेंक झेल रहा है॥
सब ब्रज की औरतों की हया ठेल रहा है।
दलमलता हैगा दिल से दिल को भेल रहा है॥
नाज-भरी चश्म रस में मेल रहा है।
आसद जो इश्क खूब खुलके रेल रहा है॥
मनमथ का फील[2] मस्त मनो पेल रहा है।
गलबीच अदा लेकर हमेल रहा है॥
गति बीच झमक चमक थिरक छैल रहा है।
"ब्रजनिधि" का हुस्न-तुजक ब्रज में फैल रहा है॥१८३॥

करना लगनि का खूब नहिं येही सला है।
जिनने किई है तिसकी रहा कहा कना है॥
खाना ओ खुशी ख्वाब उसे सबहि टला है।
हया ओ हवास होश सबहि टला है॥
इसका इलाज फेरके किसे कुछ न चला है।

(१) काम दा वो सर = कामदेव का यह बाण। (२) फील = हाथी।

मरता न जीता उमर तक वो योंही छला है ॥
तेरा चवाव चाहने का चहूँ दिसि चला है।
कहती हैं भली भाँति भट्ट इसही में भला है ॥
दिल ऐंचि अकड़ राखि री क्या उसके रंग रला है।
अब तो जु क्या करों री "ब्रजनिधि" ने मन छला है ॥१८४॥

दिल तो फँसा दिवाना तरका मिजाज से।
पर टरै न उसकी आदत किस ही इलाज से ॥
रखता है दिल मतालब इक अपने काज से।
लेता है दिल झपटि के चौचंद बाज से ॥
करता जिगर को पुरजे पुरजे बंसी-गाज से।
तिसपै चलाता सैफ हैफ अपनी नाज से ॥
नित करता जंग औरतों की लाज-पाज से।
करता मुदति सों खून शोख नहीं आज से ॥
करता है जोर फेल इश्क हुस्न-बाज से।
कहलाया नाम "ब्रजनिधि" जुलमी समाज से ॥१८५॥

गति ले मटकता है अजूब खूब ढैगा सज का।
दे दामनों को ठोकर मुख पर घुँघट ले धज का ॥
वो थिरक फिरकि लेके चलता वोहि गजब झजका।
गरदन का ढोरा लेना क्या मुड़ना सनम सबज का ॥
रखता है फेल छैल वो मनमथ के मस्त गज का।
मुसकन में मन मरोड़ा है वोड़ा जँजीर लज का ॥
तानों किते गले के वार करता है उपज का।
गाता है राग "ब्रजनिधि" खुश रेखता परज का ॥१८६॥

अरे तैं क्या किया मुझ पर अचानक आ गजब कीया।
सुना कर तैं जु बंसी को खुले सीने को सी दीया ॥

अजब ले लटक से मटका चटक से चल-विचल होया।
तेरा खुश हुस्न-मद मैंने अदा-भट्टी से ले पीया॥
हुआ सरशार सौदा सा लिया तुझ कोश का ओहूदा।
करी जब से ही मैं बैठक चढ़ा तुझ इश्क-गज-होदा॥
निगह का तीर तैं मारा रखा हम जिगर कर तोदा।
जिसी पर ले छुरी मुसकन किया बरमा भी अरु खोदा॥
कहर क्या क्या करूँ तेरा मिहर कुछ ना नजर आया।
तेरा जालम जुलम जुलमी जहर की लहर सी छाया॥
दिए सिर कैद ना छूटै अरे तू तान क्या गाया।
तेरे इस खूब मुखड़े का सुखन तो भी न कुछ पाया॥
रहमदिल हो सनम बोला अभी तो कतल करना है।
हुआ खुश मैं तेरे सन्मुख जु मरने से न डरना है॥
अरज बेमरज होने पर लरजके अंक भरना है।
हँसी से यार "व्रजनिधि" के अबै कदमों में परना है॥१८७॥

उस गबरू के हुसन की राह देखो इक अजूब।
उसकी अदा जु अटपटी में मन है झाबझूब॥
अपने ही भावते को इक आप ही जु चाहै।
और नहीं चाहै उसे जग में ये ही राहै॥
इस सब्ज सनम के हैं आशिक जो बे-शुमार।
आशिक जो इसके मिलके सबहि होवे दिल से यार॥
सबके जिगर गुबार यहै मिलके कदम छीवैं।
अब तो बिहारी "व्रजनिधि" बिन छिन भी नहीं जीवैं॥१८८॥

करते हैं हवामहल हवा राधे श्री बिहारी।
सँग सखियाँ सुघर सुथरी बिथुरी सी फूल-क्यारी॥
मरजी को पाय दस्त लिए सबहि सौज न्यारी।

खाना-पीना अगर-चोवा अतरदान-झारी ॥
पानदान पीकदान ले रुमाल न्यारी ।
चँवर लिए मोरछल को ले अड़ानि धारी ॥
छतर लिए कांच और कलमदान वारी ।
लई पंखी फूल-माल आसा लिए नारी ॥
कोई लिए जर जेवर औ पुसाक भारी ।
केइ लिए शमेदान वहु गुना तियारी ॥
कोई धरे दुसाखे कहूँ औ चिराग लारी ।
महताव छोड़ै कोई चश्म खुशी को लगा री ॥
लीए हजार वान दूरबीन चित्रकारी ।
कोई लिए हैं ख्याल लाल तूती सुक सारी ॥
पैरों के कोश लीए खड़ी रैस की अगारी ।
करती हैं बाज गश्ती पंखा पौन की हुस्यारी ॥
लेके गुलाबदानी से करती हैं आब जारी ।
रखती हैं अगरबत्ती धूप रूप की उँजारी ॥
कुरसी पै अजब ले मरोड़ बैठा खुश मुरारी ।
क्या फबि रही है जेब से प्रीतम के पास प्यारी ॥
लटकन से मटक नाचती ज्यों जमकनी दिवारी ।
बाजे वजाती गाती हैं कोइल सी कुहक कारी ॥
कीनी मुराद पूरी मैं तो वारी वारी वारी ।
"ब्रजनिधि" पै फिदा होके जान कीनी है बलिहारी ॥१८८॥

भगज की बानि अनखौहीं तुझे किसने सिखाई है ।
अजब सुरखी लिए तलखी जु चश्मों में दिखाई है ॥
लिए घूँघट न बोलै है अबोलन कस्म खाई है ।
कोई नाकदर औरव ने गलत बातां भखाई है ॥

विहारी पर अरी प्यारी तैं क्या भुरकी नखाई है।
तेरे लब को जु शीरीं को अव्वल से तैं चखाई है॥
वही दिल यार "व्रजनिधि" को दिखाता क्या दिखाई है।
उसी को देखके जीना तेरी सूरति लिखाई है॥१९०॥

मनहरन है हमारा मन लेके कहाँ गया।
दिलदार था वो दिलवर दिल को दगा दया॥
अव्वल से यार जानी यारी से क्यों नया।
प्यारो हमारा प्रीतम किस प्यारि से फया॥
चश्मों के बीच रस्म उसकी कस्म वो छया।
खाना व ख्वाब उसके पीछे छोड़ी सब हया॥
उसके फिराक माहिं आहि रहता हूँ तया।
मुसक्यान करके नाज-भरी मेरा जी लया॥
उसका ही रंग-रूप मेरे रोम में रया।
"व्रजनिधि" को कहो जाय कोइ अब तो कर मया॥१९१॥

क्या कहिए प्यारे तुझे तू तो वेहया हुआ।
पहले लगाया कदमों अब तू क्यों करे जुआ[1]॥
तेरे फिराक माहिं आहि मत मुझे रुआ।
रहम करिए "व्रजनिधि" मैं तेरा अंग छुआ॥१९२॥

आता था नौ-बहार साज सज्ज हुस्न जालम।
उसकी अदा अनूठी अजब गजब सबपै मालम[2]॥
गाता था गारी बंसी में सुनि फिदवी[3] हुवा आलम।
सबके दिलों को खैंचने की लीनि कहाँ तालम[4]॥

---

(१) जुआ = जुदा, अलग। (२) मालम = मालूम, ज्ञात। (३) फिदवी = (किसी के लिये) प्राणोत्सर्ग करनेवाला। (४) तालम = तालीम, शिक्षा।

वो अपना खुद हो आशिक तब जानै मेरा हालम।
"ब्रजनिधि" बिना सखी री मुझे दम भर नहीं ठालम ॥१९३॥

उसकी सिफत सिनासा किससे न हो सकै।
बिन देखे उसे दम तो इकदम भी ना धकै॥
जोबन जहूर नूर लखिके पूर ह्वै छकै।
नाजुक दिमाग तोर सेती काम जक थकै॥
जिसके जाँ जिगर में जिकर वो ही वो बकै।
हरगिज नहीं हया को रखै इश्क न दड़कै॥
पाया है लाल ह्वै निहाल वो कहाँ टकै।
मोहब्बत सा झमझमाट उससे सो कहा टकै॥
मैं तो हुआ हूँ चूर चश्म उसको ही तकै।
"ब्रजनिधि" सों मिलना आली से प्रेम में पकै॥१९४॥

कीया कमाल इश्क को जिनको सवाब क्या है।
खिलकत से खुलक खोया तिनसों जवाब क्या है॥
कीना है चाक सीना उनको कबाब क्या है।
"ब्रजनिधि" के नूर मस्त हैं उनका जवाब क्या है॥१९५॥

चटक चटक से मटक भजे की लटक मुकट की दिल में अटकी।
भटक भटक से कटक सटक मन छटकि लाज से छवि जा गटकी॥
झटक झटक के खटक खटक गई वटक-रूप ब्रजबालन टटकी।
पटक पटक घर फटक फेल सब रटक रसन को नागर नट की॥
हटक हटक के कैाम कटक को सपटि दलमल्यौ निपट निकट की।
सुघट सुघट की नैन झपट की चिपटो "ब्रजनिधि" रंग लपट की॥१९६॥

छुटी अलकैं टी भौंहैं चुटीला ंग साँवल है।
अजब नैनों खुमारी यो गजब दिल-चोर रावल है॥

छका जोबन में सज-धज सों सलोना रूप-बावल है।
अकड़ चलके जु मन पकड़ा जकड़ लीया उतावल है॥
इश्क का है हजूमी सीधने चश्मों का घायल है।
लबों पर बंसी धर गावै सुघर तानों रसायल है॥
सखी निकला अभी ह्याँ है उसी बिन रूह कायल है।
उसी का नाम क्या बतला गोया मनमथ तरायल है॥
लगा छतियाँ मिला रतियाँ गया छलके वो छायल है।
अरी "ब्रजनिधि" मिलाऊँगी उसी पर ब्रज छकायल है॥१९७॥

गुलदावदी-बहार बीच यार खुश खड़ा था।
गुलजार गुल सनम की गुल से भी गुल पड़ा था॥
पोशाक रंग हवासि सज के धज का तड़तड़ा था।
पुखराज का भी जेवर नख-सिख अजब जड़ा था॥
वह नूर का जहूर अदा पूर लड़भड़ा था।
देखते ही मैंने जिसको ऐन अड़बड़ा था॥
दिल का दलेल दिलबर दिल चोरने अड़ा था।
"ब्रजनिधि" है वोही दधि पर छल-बल सों छक लड़ा था॥१९८॥

इति श्रीमन्महाराजाधिराज महाराज राजेंद्र श्री सवाई
प्रतापसिंहदेव-विरचितं रेखता-संग्रह
संपूर्णम् शुभम्।

परिशिष्ट

पद दृष्टकूट १—राग सारंग (ताल तिताला)

"षटमुखवाहन भच्छ भच्छ ता सुत को स्वामी ।
ता रिपु पुर के द्वार बसै इक नर सो नामी ॥
ता अंजलि में बास तासु सुत मोहिं न भावै ।
हरि बिन हर को द्रोहि सखी मोहि अधिक सतावै ॥
भनै **प्रताप** ब्रजनिधि-लगन-अनल-अनँग अँग अँग दहै ।
कृतिका सुँ अग्र-सुत-बंधु बिन प्राण निमेषहु ना रहै ॥"

टिप्पणी—वाहन = मयूर। भच्छ = सर्प। उसका भच्छ = पवन। उसके सुत = हनुमान्‌जी। उनके स्वामी = श्रीरामचंद्रजी। उनका रिपु = रावण। उसका पुर (देश) = लंका। उसके द्वार पर नामी नर = अगस्त्य मुनि। उनकी अंजलि में बसै = समुद्र। उनका सुत = चंद्रमा। (विरह के कारण चंद्रमा की शीतल किरण भी तन को जलाती है।) हर (महादेव) का द्रोही = कामदेव। कृत्तिका नचत्र से अगाड़ी = रोहिणी। उनके सुत = बलदेवजी। उनके बंधु (भाई) = श्रीकृष्णचंद्र।

पद दृष्टकूट २—राग भैरव (ताल चौताल, ध्रुपद)

"अष्ट त्रियदश सुत सुरभी-कुल प्रगट भए,
श्वान-रिपु-मित्र-बेद सुंदर सुहाए री।
दघ-सुता-भ्रात दल-रिपु जलसुत जाके,
पृथक पृथक दाग-उलट कर धराए री ॥

चंदर-पुरंदर-कर कर आश्विन लख लेत,
मंजारी मन हरष सु अघाए री।
विद्या-आदि मान संपूरण विचार मध्य,
आए त्रयोदश चढ़ 'ब्रजनिधि' गाए री ॥"

टिप्पणी—अष्ट=**वसु**। त्रियदश=देवता, **देव**; यों **वसुदेव**। तिनके सुत श्रीकृष्णचंद्र। सुरभी=**गो**। कुल=कुल। यों **गोकुल**। श्वान-रिपु=लाठी। उसका मित्र वह, जो सदा उसको धारण करे अर्थात् **हाथ** या **भुजा**। वेद=चार। यों चार-भुजावाला **चतुर्भुज** स्वरूपधारी। दध-सुता=लक्ष्मी। उसका भ्रात (भाई)=**शंख**। दल-रिपु=सुदर्शन चक्र। जलसुत=कमल। दाग का उलट=**गदा**। कर=हाथ मे। चंदर=१। पुरंदर=११। कर कर=दो, दो। यों १+११+२+२=१६ अर्थात् **षोडश कलाधारी**। मंजारी=बिलैया, अर्थात् **बलैया** लेत। विद्या का आदि अक्षर **वि**, उसमें **मान** जोड़ा तो **विमान** हुआ। उसमें बैठकर त्रयोदश (=देवता) वहाँ आए। अर्थात् गोकुल में भगवान् श्रीकृष्णचंद्र शंख-चक्र-गदा-पद्म धारण किए चतुर्भुज स्वरूप से बालक जनमे, तब बड़ा हर्ष हुआ, माता-पिता ने बलैया ली और इंद्र आदि देवता विमानों पर बैठकर वहाँ आनंद मनाने को आए। जन्म-बधाई है।

महाराज ब्रजनिधिजी प्रातःकाल उठते ही, नेत्र बंद किए हुए, अपने इष्टदेव की स्तुति करते थे। उस स्तुतिवाले पद का प्रथम चरण—

पद ३

"जयति कृष्न रसरूप जयति माधव मधुसूदन।
.... ॥"

(ठाकुर श्री ब्रजनिधिजी के पखावजी कीर्तनिया तिवारी जगन्नाथ से प्राप्त)

वजीरअली धोखे से पकड़ा गया, जिससे महाराज के चित्त को अत्यंत क्लेश हुआ और उनकी आत्मा को मर्मभेदी चोट पहुँची। उस समय का एक पद—

पद ४—बिहाग या सोरठ देश (ताल तिताला)

"अरे पापी जियरा तोहिके लाज न मूल । टेर।
हरि बिछुरत याके संग न मरहूँ यहाँ ही रह्यो अब भूल ॥
पहली मूढ़ बिचार्‌यो क्यों ना अब क्यों सोचत सूल।
'ब्रजनिधि'जी म्हे दास तिहारा अब जीवन में धूल ॥"

अपने इष्टदेव के प्रत्यक्ष दर्शन होने न होने के संबंध में—

पद ५—राग कलिंगड़ा वा परज (ताल तिताला)

"राज सुन लीज्यो जी म्हाँका हेला,
(होजी) नँदजी रा कँवर अलबेला। टेर।
घणाँजी दिना में म्हाँकी निजरयाँ थे आया,
कबा तो रह्या नैं राज बाँका रस छैला ॥
नींद न आवै म्हे अति अकुलावाँ,
बिरह सतावै राज छाँजी म्हे अकेला।
'ब्रजनिधि' छैल नवेलाजी रसिया,
जावा न देस्याँ राज रहस्याँ थाँसूँ भेला ॥"

पद ६—सोरठ (ताल तिताला)

"मोहन थारी बाँसुरी में रंग। टेर।
मोहि लई सब ब्रज की बनिता लै लै तान-तरंग ॥
बाज रही है सप्त सुरन सों गाज रही है सुढंग।
'ब्रजनिधि' अब भुज भर लीज्यो कीज्यो रंग से संग ॥"

ठाकुर श्री ब्रजनिधिजी के कीर्त्तनिया धन्ना हालूका से ये तीनों पद प्राप्त हुए।

पद ७—राग कलिंगड़ा (ताल तिताला)

लहरदार सिर चीरा सजके दिल को पेच मे डारा है वे ॥ टेर ॥
हुस्न उज्यारा है जग प्यारा दिल के अंदर कारा है वे।
"ब्रजनिधि" बंसी धर अधरन पै तान रसीला मारा है वे ॥

पद ८—राग विहाग

साँवरा वे महबूब प्यारा। टेर।
छैल छबीला नंद मेहर दा, जीवन-प्राण हमारा ॥
इश्क लगाके खबर न लैंदा, ढूँढ फिरी जग सारा।
कोई बतलाओ प्रेम-दिवाना "ब्रजनिधि" बंसीवारा ॥

पद ९—राग सिंध काफी

अरे टुक बंसी फेर बजाय, मनहु रिझाय, इश्क बढ़ाय। टेर।
सुन री सजीली राग रंग सुन, तान-तरंगहि गाय ॥
यह मूरत मो मन अति अद्भुत, देखन को जिय चाय।
"ब्रजनिधि" परम सनेही निरतत, अनत कटाच न भाय ॥

पद १०—राग बिलावल (तिलवाड़ा)

पीतपटवारो आली रंग को है साँवरो,
नाँव न जानूँ दइया कौन को है डावरो। टेर।
तट जमुना की धेनु चरावै,
बैन बजाय मोरो मन कीयो बावरो।
लोक-लाज गृह-काज तजे सब,
परयो मदन को प्रेम-उछावरो।

रूप सलोना "ब्रजनिधि" सोहै,
तिन परसन को मन है उतावरो ॥

पद ११—राग कलिंगड़ा (ताल तिलवाड़ा)

हो नंदलाल मोरी सहाय करो जू। टेर।
आरत होइ टेरत हूँ तुमको, मेरे जिय की पीर हरो जू ॥
कृपा तिहारी सुनि अति भारी, खोटो हूँ मैं, करो खरो जू।
हो "ब्रजनिधि" तुम अधम-उधारन, बिरद रावरो जिन बिसरो जू ॥

पद १२—राग परज

आली री मोये छैल गयो छलवार*। (नंद को कुमार)। टेर।
रूप दिखाय करी री बेबस नैंक न लगी अवार ॥
पीत पिछौरी कटि पर काछे गल गुंजन को हार।
वा "ब्रजनिधि" की दगन-कटाछन भई री अंग में पार ॥

पद १३—राग श्यामकल्याण

आनंदी अखंडी सर्व-व्यापक भवानी रानी।
त्रिभुवन जानी सुख-सानी सो महेस मानी ॥ टेर ॥
तुहि गुर ज्ञानी विद्या तुही वाक्-वानी।
तुही रिद्धि-सिद्धि भक्ति-मुक्ति की निशानी रानी ॥
तेरो नाम सुमरत सुर-नर, मुनि ज्ञानी।
तो समान कोई नाहीं तुही एक अभैदानी ॥
कीजिए कृपा मोपै साँची एक मेहरबानी।
राधा-"ब्रजनिधि"जू की राखौ पीकदानी रानी ॥

---

* "छल गयो री छलवार" पाठ-भेद है; "छल गयो नंदकुमार" ऐसा भी गाते हैं।

पद १४—राग जंगला (झिंझौटी)

बोलो सब जै जै जै चण्डी सिलामाईजू की,
ज्वालामुखी ज्वालमाल कृष्ना महाकालीजू की । टेर ।
भारती भवानी भुवनेश्वरी मातंगी मात,
हिंगलाज अंबा जगदंबा प्रतिपालीजू की ॥
कालिनी कृपालिनी जगपालिनी हिमाचल-कन्या,
जयति अपर्णा वृद्धा नित्या और बालीजू की ।
करहु निहाल नित "ब्रजनिधि" दास कों री,
साँची देवी अंबा दुर्गा मद-मतवालीजू की ॥

पद १५—राग जंगला (पीलू)

मुजरो म्हारो मानजो महाराज । टेर ।
.... ॥
यो जैपुर सूबस बसो, अटल रहो यो राज ।
ठाकुर श्री "ब्रजनिधि" रहो, नृप **प्रताप** की (थाँने) लाज ।

पद १६—राग काफी

श्यामसुँदर ने या होरी में ऊधम आन मचायो री । टेर ।
पकड़ लेत निकसत ब्रज-बाला ले दधि मुख लपटायो री ॥
डफहू बजावै गारी गावै फागन-गीत सुनायो री ।
"ब्रजनिधि" छैल भए होरी के लोक-लाज बिलगायो री ॥

पद १७—राग झिंझौटी

मगन रुत फागन की प्यारी ।
ग्वाल-बाल सँग सखा लिए होरी खेलैं गिरधारी ॥ टेर ॥
अबीर गुलाल थाल भर कर में कंचन पिचकारी ।
चोवा चंदन और अरगजा कीच मच्यो भारी ॥

फागन के फगुवा डफ ऊपर गावत हैं गारी।
"ब्रजनिधि" चेत करो चौकस हो आवत है वारी॥

पद १८—राग सारंग लूहर

ननद मोहे जाने दे री बेपीर होरी तो मैं खेलूँगी वीर। टेर।
सुन सुन बंसी मनमोहन की कैसे धरे मन धीर॥
लाख जतन कर राखो री सजनी फाड़त मदन सरीर।
"ब्रजनिधि"जी से प्रगट मिलूँगी तोड़ूँगी लाज-जँजीर॥

पद १९—राग काफी

रंग भर ल्याई होरी खेलन आई। टेर।
होरी के दिनन में सपनो ही आयो रंग पिय पिचकारी दे डराई॥
चोवा चंदन और अरगजा केसर घोर बहाई।
"ब्रजनिधि"जी ये छैल होरी के हो हो धूम मचाई॥

पद २०—राग काफी सिंध

आयो री सखी यो फाग महीनो, आज होरी की वात करैछो। टेर।
मैं जल जमुना भरन जात ही गाय गाय होरी याद करैछो॥
बनसी-बट जमना के तट पर नित प्रति रास विहार करैछो।
"ब्रजनिधि" बंसी की धुनि माँहीं राधे राधे नाँव रटैछो॥

पद २१—राग कामोद वा काफी

साँवरा से ना खेलाँ म्हे होरी, करत हमसे वरजोरी॥ टेर॥
हम दधि वेचन जात वृंदावन भरी गागर वा फोरी।
भर पिचकारी, मेरे सनमुख मारी, नाजुक वहियाँ मरोरी॥
जान लिए तुम छैल होरी के लोक-लाज सव तोरी।
फागन मे मतवारो डोलै, "ब्रजनिधि" सरनाँ तोरी॥

पद २२—राग भैरवी

खेलो हे श्याम से होरी, खेलो हे होरी, खेलो हे होरी ।
अब मत जाने दो बरजोरी ॥ टेर ॥
बहुत दिनन से भाग जात हो, अबके बार परी है मोरी ।
वृंदावन की कुंज-गलिन में ता सँग अँखिया लगी है मोरी ॥
भर पिचकारी दई श्याम पैं मुख मॉंडत रोरी है गोरी ।
अंजन ऑंज गुलाल उड़ावै "ब्रजनिधि" सुंदर राधा जोरी ॥

पद २३—राग परज वा कलिंगड़ा

आज रंगभीनी छै जी रात । टेर ।
सुघड़ सनेही म्हारै महल पधारजा, मिलस्यॉं भर भर गात ॥
रंग-महल में रंग सूँ रमस्याँ, करस्याँ रंग री बात ।
"ब्रजनिधि"जी ने जाबा न देस्याँ, होबाद्यो नैं परभात ॥

पद २४—राग बिहाग

बाजूबंध टूट गयो छै म्हारो, हँसत खेलत आधी रात । टेर ।
मैं सूती छी सेज पिया के याद आयो परभात ॥
नँणदलजी रो सुभाव बुरो छै मोसूँ सह्यो न जात ।
"ब्रजनिधि"जी म्हारा सासु लड़ैला देखैला सूनूँ हाथ ॥

पद २५—चैती गौरी वा बरवा पीलू

आज गौरल पूजन आई राधा प्यारी,
राधा प्यारी रे बाला राधा प्यारी । टेर ।
संग सखी सब साथ लियाँ है जमना-जल भर ल्याई झारी ॥

औचक आय गए नँद-नंदन साँवरी सूरत लागै प्यारी।
"ब्रजनिधि"जी री माधो री मूरत चरण-कमल जाऊँ बलिहारी ॥

(ये पद लाला ब्रजनंदबख्श ओहदेदार मंदिर ठाकुर श्री ब्रज-निधिजी ने दिए।)

चुने हुए पदों की प्रतीकानुक्रमणिका[1]

(१) श्रीब्रजनिधि-मुक्तावली

---

(१) इसमें ब्रजनिधिजी के केवल उन्हीं पदों के प्रतीक दिए गए हैं, जो अपनी उत्तमता के कारण जयपुर आदि के सगीत-विशारदों के समाज में प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके है। (२) महाराज की राजनीति का द्योतक है।

(२) व्रजनिधि-पद-संग्रह

(१) पुस्तक में इसकी जगह "बड़ेना" छपा है, जो ठीक नहीं है। (२) प्रत्यक्ष दर्शन का बहुत विख्यात पद है। (३) संकट के समय का है।

(१) बहुत प्रसिद्ध पद है। (२) विपत्काल का पद है। (३) प्रत्यक्ष दर्शन का पद है। (४) प्रसिद्ध हिंडोरे का पद है। (५) रुग्णावस्था में कहा गया पद है।

---

(१) विपत्काल का है। (२) संकट के समय का है। (३) पश्चात्ताप का पद है। (४) बहुत प्रसिद्ध पद है।

(३) हरिपद-संग्रह

---

(१) विख्यात रेखता है। (२) बहुत प्रसिद्ध पद है। (३) प्रसिद्ध ठुमरी है। (४) आपत्ति में स्मरण का पद है। (५) बहुत विख्यात रेखता है। (६) मशहूर रेखता है। (७) नागरीदासजी के मित्र को कहा था। (८) बहुत प्रसिद्ध पद है। (९) प्रसिद्ध पद है। (१०) प्रसिद्ध रेखता है। (११) विपत्काल का पद है।

(४) रेखता-संग्रह

(१) बहुत प्रसिद्ध पद है। (२) विख्यात ठुमरी है। (३) प्रसिद्ध पद है। (४) प्रसिद्ध पद है। (५) इष्ट का द्योतक है। (६) बहुत बढ़िया है।

(१) प्रसिद्ध है। (२) पाठांतर "०चाखा था"="०छाका है"। यह पद उत्तम है। (३) रास-पंचाध्यायी के भाव पर। (४) प्रसिद्ध है। (५) प्रत्यच दर्शन का है। (६) प्रसिद्ध रेखता है। (७) प्रसिद्ध है। (८) टकसाली पद है।

(१) प्रसिद्ध है। (२) प्रसिद्ध रेख़ता है। (३) प्रसिद्ध है। (४) इससे मिलता-जुलता 'रसरास' कवि का रेख़ता भी है। (५) इसका पाठ पुस्तक में अशुद्ध छपा है। (६) कीमिया, सीमिया, लीमिया और हीमिया, ये चार प्रकार की विद्याएँ (सनअतें) हैं। (७) मुद्रित पाठ 'उस साँवरे बिन०' है, परंतु छंद हमारे सुधारे पाठ से ठीक जँचता है। (८) विख्यात है। (९) आदि में 'यो' गायन-सौकर्य और छंद-पूर्ति के लिये लगाया गया है।

---

(१) बहुत प्रसिद्ध है। (२) 'से' के स्थान में 'मेरी' पढ़े जाने से छंद ठीक जँचता है। (३) प्रसिद्ध है। (४) विख्यात है।

ब्रजनिधिजी के पदों की प्रतीकानुक्रमणिका*

(श्रीब्रजनिधि-मुक्तावली = मु० । ब्रजनिधि-पद-संग्रह = ब्र० । हरि-पद-संग्रह = ह० । रेखता-संग्रह = रे० । परिशिष्ट = प०)

* इसमें केवल 'ब्रजनिधि' जी की छापवाले पदों, रेखतों और गायन की चीजों के प्रतीक, वर्णानुक्रम से, दिए गए हैं। प्रायः तीन वर्णों तक क्रम है। समान प्राथमिक शब्दों के आगे एक या दो वर्णों तक क्रम लिया गया है।

* मुद्रित प्रति में "छकि" पाठ है, जो ठीक नहीं है।

* मुद्रित प्रति में इस रेखते का क्रमांक नहीं छपा; अतः इसे "६ क" माना गया है।

* दोनों पदों का पाठ एक सा है; किंचित् पार्थक्य है।

* ये दोनों पद प्रायः एक से हैं; किंचित् पाठ-भेद है। † इन दोनों पदों में समानता है; पाठ-भेद अधिक है।

(झ)

---

* छपी प्रति में "०सिहारी साथ" पाठ है, जो ठीक नहीं है।

* पुस्तक में जो पाठ छपा है वह अशुद्ध है, उसकी जगह यह पाठ होना चाहिए—"बखत था वो अजब रोशन सनम निकला था खुश हँसके।"

* इन दोनों पदों में प्रायः समानता है; पाठ-भेद अधिक है।

नोट—व्रजनिधिजी की छाप के पदों या रेखतों आदि की संख्या २६४ है। इनमें कुछ दोबारा भी आ गए हैं। 'ह' अक्षर के अंतर्गत पदों में एक पद की क्रम-संख्या नहीं छपी थी। अतः अक्षरों की गणना में २६३ पद ही

आते हैं और 'सोरठ ख्याल' और 'राम का रेखता' भी इस अनुक्रमणिका के ही अंतर्गत हैं। इनके अतिरिक्त अन्य पद भी 'ब्रजनिधि'जी-रचित प्रतीत होते हैं, परन्तु संदिग्ध होने से उन्हें इस अनुक्रमणिका में स्थान नहीं दिया गया। इस अनुक्रमणिका के तैयार कराने में चौरे सूरजनारायणजी 'दिवाकर' ने बड़ी सहायता की है, तदर्थ उन्हें धन्यवाद।

अशुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५८	१	नाचते	नाचने
,,	,,	दिलहरा	दिल हरा
,,	४	रंग	संग
,,	८	सुजदर्द कहा कीमा	सुझ दर्द का हकीमा
,,	९	मनु मन के दई कमची	"दिल अरप लगी दुमची"
,,	१०	सतकोटि के इक समची	मनु मन के दई कमची
		अमृत अदा को पीवी	सत कोटि के इक समची
,,	१२	भरि भरि के नैन चमची	अमृत अदा को पीना
		× × × ×	भरि भरि के नैन चमची
५९	१०	छझे	छड़े
,,	१८	थिर रखि ररथि र	थिरर् थिरर् थिर
,,	१९	आँख झेहैं	आ खड़े हैं
,,	२५	उर झारी	उरझा री
६०	९	सुगंध	सुधंग
,,	१०	कटत कधिलंग	कट तकधिलंग
,,	११	हीनागड़दी	नागड़दी
,,	१२	तक्रु तक्रु	तध्कु तध्कुँ
६०	१२	कुड़ांकि	कुड़्वांकि
,,	१३	बजै	वजे
,,	१६	व जैहैं	बजैहैं
,,	२४	खोलं	खोलैं
६१	७	पूर्ण कला	पूर्ण चंदकला
१५७	११	न हे	नहीं

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१५७	१२	हे	है
१५८	८	मोर-पखा वा	मोर-पखावा
१५९	३	सुर-दुंदुभि	सुभ दुंदुभि
,,	८	हो हो	है हो
,,	९	,, ,,	,, ,,
,,	१०	,, ,,	,, ,,
,,	११	,, ,,	,, ,,
१६०	१६ और १७ के मध्य में	×	और न कबहूँ काहू जानैं बिके हाथ चितचोर के
१७४	७	ब्रज हो	ब्रजराज हो
,,	९	औ जक लगी	औचक लागी
१८३	२२	जनम	जु मन
१९६	५	हुम हुम	झुम झुम
२०३	२	दोत लगै है	होत लगौहैं
,,	३	भाजे	भोजे
२०४	२३	कर्न	कर्नन
२०५	४	कान्ह	काहू
,,	,,	मेरै	मरै
२०७	१९	वटि	बढ़ि
२०८	१८	ओर	कोर
,,	२१	सुगंध	सुढंग
२१०	२०	टरत न ढारे	टरत न टारे
२१६	[illegible]	[illegible]	थार राजत
२२३	९	है रे	हेरे
,,	[illegible]	पापाद्द के भजि भेरे	पापद्वंद भजि मेरे

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२८२	१८	उहाँ	वहाँ
,,	१६	नकशा जहाँ	नक्श सा यहाँ
,,	२१	ऐयार	है यार
,,	२४	तुम्हारा	तुम चोर
२८७	१८	लहा (?)	ले जा

छूटे हुए पाठांतरों का विवरणपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	पाठ	पाठांतर
५६	१२	उझक देखन	मुड़ि के देखने
,,	२०	विहारी	मुरारी
६०	८	मुनि मनुज	मुनीमन जु
,,	१७	मुरचंग	मुहचंग
२२३	५	जो करनी ही ऐसी "ब्रजनिधि" तो क्यों बढ़ई मो मन चाह	"ब्रजनिधि" ऐसी जो करनी ही अधिक करी क्यों चाह
२८२	२५	दर्द	दाद
२८७	१३	देखो पतंग शमे पै जो आप ही जलावे	देखो शमा के ऊपर परवाना जी जलावे
,,	२१	गुल जेवर कुल पहिरे दस्त फूल फिरावै	पहरे हैं अंग जेवर कर में कमल फिरावै